CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सहचिन्तन का अरुणोदय

(संपादकीय निवेदन)

फरवरी, १९७१ में जब विमलाजी के निर्देशन में का० हि० वि० में ध्यान शिविर का आयोजन हुआ था, तब उसमें जो इने-गिने छात्र सम्मिलित हुए थे, उन्होंने शिविर के अन्तिम दिन यह इच्छा प्रकट की कि भविष्य में कभी विशेष रूप से छात्रों के लिए एक शिविर का आयोजन होना चाहिए। उसके बाद १६ मार्च से २२ एप्रिल, १९७१ तक विमलाजी का, 'दुग्ध कल्प' के प्रसंग में, का. हि. वि. के प्रांगण में निवास हुआ। उसी बीच ३ एप्रिल को रामनवमी के अवसर पर गत ध्यान शिविर के अनेक शिविर के अनेक सदस्य विमलाजी के निवास पर आमन्त्रित थे। छात्र सदस्यों की इच्छानुसार इसी दिन आगामी छात्र शिविर की रूपरेखा की चर्चा का सूत्रपात हुआ। विमलाजी के प्रस्थान से पूर्व छात्रों ने चर्चा के पांच विषय निर्धारित किये और आगामी दुर्गापूजा अवकाश के अन्तर्गत २८ सितम्बर से ३ अक्तूबर तक की तिथियाँ निश्चित कीं। श्री सोमनाथ महेन्द्र ने छात्र-संयोजक का कार्य-भार भी उसी समय संभाल लिया।

मई ७१ से ही शिविर-संबन्धी सूचना के प्रसारण की योजना आरम्भ हो गई और १२ सितम्बर तक पूरे उत्साह से काम चलता रहा, किन्तु, १३ सितम्बर को उपद्रव के कारण अचानक विश्वविद्यालय बन्द हो गया। दिसम्बर ७१ के अन्त तक तो शिविर की पुनर्योजना का विचार करने की स्थिति ही नहीं आ पाई। फिर अन्त में जाकर १७ से २३ मार्च, ७२ को शिविर हो सका। किन्तु इन दिनों विश्वविद्यालय में प्रवेश... समय न होने के कारण आवासीय शिविर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(Residential Camp) के स्थान पर परिसंवाद (Seminar) का ही रूप रहा।

निर्धारित पाँच विषयों पर छात्र-सदस्यों से कुल चौबीस निबन्धों के सारांश प्राप्त हुए थे, जिनमें से १८ अंग्रेजी में और ६ हिन्दी में थे। इनमें से दो अंग्रेजी के और एक हिन्दी का निबन्ध प्रस्तुत नहीं हो सका। इस प्रकार कुल इक्कीस निबन्ध प्रस्तुत हुए, जिनमें से एक आशु भाषण (extempore speech) के रूप में था। तो, कुल बीस निबन्धों का प्राय: अविकल लिखित रूप सारांश सहित प्रस्तुत विवरण में दिया गया है। जिन निबन्धों का केवल सारांश प्राप्त हुआ है, वे भी सम्मिलित हैं। प्रत्येक विषय पर निबन्ध-वाचन के पश्चात् जो विचार-विमर्श (Discussion) हुआ था उसका अत्यन्त संक्षिप्त विवरण यथास्थान दिया गया है। उद्घाटन और उपसंहार को लेकर निर्धारित पाँच विषयों सहित विमलाजी के सात प्रवचन प्राय: अविकल रूप में संगृहीत हैं। परिसंवाद के दिनों में ही रविवार, १९ मार्च को का० हि० वि० की गीता समिति के तत्त्वावधान में विमलाजी का जो गीताप्रवचन हुआ था, उसका संक्षेप परिशिष्ट के रूप में रखा गया है, क्योंकि वह परिसंवाद का अंग नहीं था। उद्घाटन-सभा और गीता-प्रवचन की सभा सार्वजनिक थी, और शेष दस सभायें केवल सदस्यों और प्रेक्षकों के लिये थीं।

संख्या का कोई महत्त्व नहीं, फिर भी 'रिपोर्ट' की पूर्णता की दृष्टि से यह उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि ६३ छात्र सदस्य और १५ प्रेक्षक (Observer) जिनमें प्राध्यापक और कर्मचारी सम्मिलित हैं, पंजीकृत (Enrolled) हुए थे।

उपसंहार सभा के पश्चात् रामनवमी २३ मार्च को सायं सभी सदस्यों और प्रेक्षकों की एक प्रीतिगोष्ठी और संगीत कार्यक्रम का आयोजन था। आवासीय शिविर के अभा[illegible] यत्किञ्चित् अंश में दूर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने के उद्देश्य से कुलपति महोदय की ओर से विश्वविद्यालय के मैत्री-जलपान-गृह में सभी छात्र सदस्यों और प्रेक्षकों का सह-भोजन रविवार १९ मार्च को दोपहर में हुआ था।

कृतज्ञता-निवेदन पृथक् शीर्षक में प्रस्तुत है, किन्तु जिनके वरद हस्त के आशीर्वाद से ही यह आयोजन संभव हुआ, उन कुलपति महोदय डॉ० कालूलाल श्रीमाली के प्रति आन्तरिक कृतज्ञता अर्पित करने का यही अवसर उचित होगा। आयोजन-समिति के सदस्यों को धन्यवाद देना अपने-आप को धन्यवाद देने जैसा लगता है। उन सब के सह-परिश्रम, तत्परता, सुख-दुःख में सहभागिता, आशा-निराशा के क्षणों में परस्पर आश्वासन आदि का सप्रेम स्मरण ही हृदय-संवाद के अनुकूल है। समिति के सदस्यों के नामोल्लेख के विना यह 'रिपोर्ट' अधूरी रहेगी।

१. डा० यें० शिवरामकृष्ण शर्मा	४. डा० कु० पद्मा मिश्र
२. डा० उमेशप्रसाद	५. श्री स्वा० सोमस्कन्दन्
३. डा० वी० वी० चलम	६. श्री सोमनाथ महेन्द्र (छात्र संयोजक)

७. डा० कु० प्रेमलता शर्मा (सचिव)

विश्वविद्यालय की ओर से कुलपति महोदय द्वारा शिविर के लिए जो ३,५०० का आर्थिक अनुदान मिला था, उसके विनियोग में उदार सहयोग के लिए वित्ताधिकारी (Finance officer) श्री उ० रामचन्द्रराव हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। इस प्रसंग में एक नाम ऐसा है, जो औपचारिक रूप से आयोजन समिति से सम्बद्ध न होते हुए भी शिविर के बीजारोपण के प्रथम क्षण से ही हितैषी के रूप में सम्बद्ध रहा। वे हैं सुप्रसिद्ध चिन्तक और प्रवक्ता श्री रोहित मेहता। आप का उपसंहार प्रवचन इस शिविर के मूल्यांकन और भावी कार्य के दिक्सूचन को विलक्षण ढंग से प्रस्तुत करता है। आपके प्रति विनम्र कृतज्ञता-निवेदन की ... उचित स्थल है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तुत रिपोर्ट शिविर की कार्यवाही के अनुसार हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ग्रथित होने के कारण इसका शीर्षक भी दोनों भाषाओं में देना उचित लगा। किन्तु दोनों भाषाओं के शीर्षक परस्पर अनुवादात्मक न होकर शायद पूरक हैं। 'युग की माँग' तो 'युवावर्ग' के ही सामने 'चुनौती' उपस्थित कर सकती है न। विमलाजी के प्रवचनों का वादी स्वर इस युग के युवकों के सामने उपस्थित चुनौती का ही उद्घोष था। उसी का दोनों भाषाओं के शीर्षक में अनुघोष देने का यत्न किया गया है। संवादी और अनुवादी स्वर अनेक हैं यथा—सहचिन्तन, उत्तरदायी मानस, वर्तमान परिस्थिति से दर्द या विषाद, काम करने में सहभागिता, विधायक वृत्ति, युवा-वर्ग में से ही नेतृत्व खड़ा करने की आवश्यकता और प्रौढ़ों के मुखापेक्षी न होने की सलाह, विध्वंस और विद्रोह के स्थान पर आन्तरिक मूल्य-परिवर्तन और मानवचेतना की उत्क्रान्ति की प्रेरणा—इत्यादि।

सहचिन्तन का अरुणोदय इस परिसंवाद में अवश्य हुआ। अनुवर्ती (Follow-up) कार्य के लिये छात्रों में काफी उत्साह है, इससे हमें हर्ष है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के युवावर्ग में नये दृष्टिकोण का यह जन्म बड़ा शुभ है। इसमें जो भी सहभागी हुए, वे सब भाग्यशाली हैं। आशा है इस दृष्टिकोण के जन्म से दायित्व का भान जागेगा और समस्याओं को अति सरल समझने की मनोवृत्ति गम्भीर चिन्तन का रूप लेगी। भविष्य में सहजीवन शिविर का आयोजन हो सकेगा, ऐसी भी आशा है।

सम्पादन, मुद्रण का कार्य बहुत शीघ्रता में किया गया है; इसलिये अनेक त्रुटियाँ रह गई होंगी। इन सब के लिये सुज्ञ पाठकों के चरणों में क्षमा-प्रार्थना निवेदित है।

एकादशी	प्रेमलता शर्मा
सोमवार, २४ एप्रिल, १९७२	अध्यक्षा
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,	संगीतशास्त्र विभाग
वाराणसी—५.	संगीत एवं ललित कला संकाय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रमणिका

: १ :

पृ०

उद्‌घाटन सभा १-२४

स्वागत तथा शिविर का परिचय—श्रीसोमनाथ महेन्द्र (हिन्दी) ३-८

उद्‌घाटन भाषण—कुलपति डा० कालूलाल श्रीमाली (हिन्दी) ९-११

प्रारम्भिक प्रवचन—विमलाजी (हिन्दी) १२-२४

: २ :

शिक्षण में स्वतन्त्रता बनाम प्रामाण्य : प्रजातन्त्र के सन्दर्भ में २५-७४

अंग्रेजी निबन्ध—तीन २७-४६

विचार-विमर्श (हिन्दी, अंग्रेजी) १४७-५०

विमलाजी का अंग्रेजी प्रवचन १५१-१७४

: ३ :

आत्मसाक्षात्कार ७५-११९

अंग्रेजी निबन्ध—चार ७७-९४

हिन्दी निबन्ध—एक ९५,९६

विचार-विमर्श (हिन्दी, अंग्रेजी) ९७-९९

विमलाजी का अंग्रेजी प्रवचन १००-११९

: ४ :

युवा पीढ़ी की कुण्ठा कैसे दूर हो १२०-१९१

अंग्रेजी निबन्ध—पाँच १२२-१४६

हिन्दी निबन्ध—तीन १४७-१६५

विचार-विमर्श (हिन्दी) १६६-१६८

विमलाजी का हिन्दी प्रवचन १६९-१९१

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

: ५ :

संघर्ष, हिंसा और अव्यवस्था के कारण और उपाय १९२–२४०
अंग्रेजी निवन्ध–चार १९४–२१३
हिन्दी निवन्ध–एक २१४-२१८
विचार-विमर्श (हिन्दी, अंग्रेजी) २१९-२२१
विमलाजी का हिन्दी प्रवचन २२२-२४०

: ६ :

विज्ञान और यन्त्रविज्ञान के विकास के फलस्वरूप मानव को उपलब्ध सुविधाएं और उत्तरदायित्व २४१-२६५
अंग्रेजी निवन्ध–दो २४३-२४९
हिन्दी निवन्ध–एक २५०
विचार-विमर्श (हिन्दी, अंग्रेजी) २५१-२५२
विमलाजी का हिन्दी प्रवचन २५३-२६५

: ७ :

उपसंहार सभा २६७-३००
श्रीरोहित मेहता का उपसंहार प्रवचन (अंग्रेजी) २६९-२९१
विमलाजी का उपसंहार प्रवचन (हिन्दी) २९२-३००

: ८ :

परिशिष्ट ३०१-३०८
विमलाजी का गीता प्रवचन (हिन्दी) ३०३-३०८

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

TABLE OF CONTENTS

: 1 :

Page

INAUGURAL SESSION 1-24

Welcome and Introduction of the Camp—
Sri S. N. Mahendra (Hindi) 3-8

Inaugural address—Dr. K. L. Shrimali,
Vice-Chancellor, B.H.U. (Hindi) 9-11

Vimalaji's Initial Discourse (Hindi) 12-24

: 2 :

FREEDOM VERSUS AUTHORITY IN EDUCATION, WITH SPECIAL REFERENCE TO DEMOCRACY 25-74

English Papers—Three 27-46

Discussion (Hindi-English) 47-54

Vimalaji's discourse (English) 51-74

: 3 :

SELF REALISATION 75-119

English Papers—Four 77-94

Hindi Paper—One 95-96

Discussion (Hindi-English) 97-99

Vimalaji's Discourse (English) 100-119

: 4 :

HOW TO FIGHT FRUSTRATION WITH SPECIAL REFERENCE TO THE YOUTH OF TODAY 120-191

English Papers—Five 122-146

Hindi Papers—Three 147-165

Discussion (Hindi) 166-168

Vimalaji's Discourse (Hindi) 169-191

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

: 5 :

THE CAUSES OF CONFLICTS, VIOLENCE AND LAWLESSNESS AND THEIR REMEDIES 192-240

English Papers—Four 194-213
Hindi Paper—One 214-218
Discussion (Hindi-English) 219-221
Vimalaji's Discourse (Hindi) 222-240

: 6 :

PRIVILEGES AND RESPONSIBILITIES RESULTING FROM SCIENTIFIC AND TECHNOLOGICAL DEVELOPMENT 241-265

English Papers—Two 243-249
Hindi Paper—One 250
Discussion (Hindi-English) 251-252
Vimalaji's Discourse (Hindi) 253-265

: 7 :

CONCLUDING SESSION 267-300

Concluding Address by
Sri Rohit Mehta (English) 269-291
Concluding Remarks by
Vimalaji (Hindi) 292-300

: 8 :

APPENDIX 301-308

Vimalaji's Discourse on The Gita (Hindi) 303-308

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय छात्र स्वाध्याय शिविर

: १ :

उद्घाटन सभा

शुक्रवार, दिनांक १७ मार्च, १९७२, सायं ५॥ बजे
मालवीय भवन

(१) गम्भीर व्यक्तियों का, एक सुहृत् के सान्निध्य में, जागृति का प्रयास

(शिविर के छात्र-संयोजक श्री सोमनाथ महेन्द्र का स्वागत भाषण)

(२) रोग का निदान

(कुलपति डॉ० कालूलाल श्रीमाली का उद्घाटन भाषण)

(३) वटवृक्ष का बीज

(सुश्री विमला ठकार का प्रारम्भिक प्रवचन)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चयनिका

वटवृक्ष का बीज बहुत छोटा होता है। छोटा तो होता है, लेकिन यदि वह खण्डित न हो, दग्ध न हो तो उसी में से अनन्त वटवृक्ष निकल आते हैं।

× × × ×

हम कहाँ हैं, इसका पता जब तक नहीं चलता, तब तक किसी भी दिशा में कदम आगे नहीं उठ सकता।

× × × ×

जीवन में संख्या का मूल्य नहीं, गुणवत्ता का मूल्य है।

× × × ×

व्यक्तियों को प्रभु निमित्त बनाते हैं। जिस दिन व्यक्ति समझेगा कि यह सारा का सारा मेरा पुरुषार्थ है, तब वह इतिहास को पढ़ नहीं पाएगा। जीवन को वैश्विक जीवन के सन्दर्भ में देख नहीं पाएगा।

× × × ×

यदि आप वर्तमान में समग्रता से जी सकें तो भविष्य अपनी चिन्ता स्वयं कर लेगा।

× × × ×

आज संसार में उत्तरदायी मानस की बहुत जरूरत है।

× × × ×

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के जो स्वप्नद्रष्टा, रचयिता, निर्माता थे, उनके चरणों में यह परिसंवाद (शिविर) एक छोटी-सी श्रद्धांजलि होगा।

—विमलाजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वागत तथा शिविर का परिचय—

श्री सोमनाथ महेन्द्र

आप सभी लोगों का इस उद्घाटन सभा में स्वागत करने में हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। ज्यों ज्यों आज का युग खुद-ब-खुद मूल्यहीन होता जा रहा है, मनुष्य के समय की कीमत बढ़ती जा रही है—शायद 'आइंसटीन' का 'रिलेटिविटी' (सापेक्षता) का सिद्धान्त यहाँ भी लागू हो रहा हो। आप सभी लोगों ने अपने मूल्यवान् समय का कुछ-कुछ अनुदान देकर इस सभा को सफल बनाया है, उसके लिये हम आपको शुरू में ही धन्यवाद देते हैं।

पर धन्यवाद क्यों ? यहां तो प्रत्येक व्यक्ति उस शिविर के उद्घाटन के लिये एकत्र हुआ है जिसमें कि उन समस्याओं पर विचार किया जायगा जो या तो सीधे ही अथवा घुमाकर, उसी के अपने आपकी एवं उसी के खुद के समाज की समस्यायें है। न विश्वास हो तो लीजिये मैं एक-एक करके समस्याओं को सुनाता हूं और आप जरा गौर से सोचिये कि क्या वे आज-कल की सामाजिक व व्यक्तिगत समस्याओं की जड़ नहीं हैं ?

प्रथम समस्या है—शिक्षण में स्वतन्त्रता बनाम प्रामाण्य, प्रजातन्त्र के सन्दर्भ में।

(Freedom Versus Authority in Education with Special Reference to Democracy.)

दूसरी समस्या है—विज्ञान तथा यन्त्र-विज्ञान के विकास के फलस्वरूप मानव को उपलब्ध सुविधायें और उत्तरदायित्व।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(Privileges and Responsibilities resulting from Scientific & Technological Development.)

तीसरी समस्या है—युवा पीढ़ी की कुण्ठा कैसे दूर हो ?

(How to fight Frustration with Special Reference to the Youth of Today.)

चौथी समस्या है—संघर्ष, हिंसा और अव्यवस्था के कारण और उपाय।

(The Causes of Conflicts, Violence and Lawlessness and their Remedies.)

पांचवीं समस्या है—आत्मसाक्षात्कार।

(Self-realisation.)

ये हैं वे समस्यायें जिनपर विचार करने के लिये शिविर २८ सितंबर को ही लगने वाला था, परन्तु किन्हीं कारणों से ऐसा न हो सका। सभी जोर-शोर की तैयारियों के बाद अन्तिम समय पर एकाएक कुछ ऐसी घटनायें एवं समस्यायें पैदा हो गयीं कि फिर शिविर न लग सका। इस समय हम शिविर उस शान व ध्येय से तो नहीं कर पा रहे हैं जिस शान और ध्येय को लेकर हम सितम्बर—अक्तूबर में करते, परन्तु फिर भी कुछ ध्येय आपके सामने रखना हम आवश्यक समझेंगे।

(१) जैसा आप सभी जानते हैं कि शिविर सही माने में लगने वाला था। सभी शिविर में भाग लेने वालों को एक साथ विमला बहन के साथ रहना था। उन्हीं के साथ सुबह-शाम का भोजन भी था। यह सभी प्रवन्ध शिविर की ओर से होने वाला था।

(२) दिन में तीन सभायें होने वाली थीं। शाम को सदस्यों द्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निघन्ध-वाचन, अगले दिन सुबह विमला बहन द्वारा उस विषय पर प्रवचन और उसी दिन तीसरे पहर में निबन्ध-वाचन और प्रवचन में से उत्पन्न शंकाओं अथवा प्रश्नों पर विचार।

(३) इसी के साथ-साथ शिविर में उन सदस्यों के लिये जो योग में रुचि रखते हैं योग-आसन की कक्षाओं का भी प्रबन्ध किया गया था।

परन्तु अब समय का अभाव, गरमी का मौसम एवं परीक्षा निकट होने के कारण शिविर में भाग लेने वालों (सदस्यों और प्रेक्षकों) की संख्या केवल ८० के लगभग ही है। फिर भी संतोष की बात है कि इस संख्या में इतने संकायों (Faculties) या संस्थानों (Institutes) का प्रतिनिधित्व है।

१ : टेक्नालॉजी संस्थान—Institute of Technology.

२ : चिकित्सा विज्ञान संस्थान—Institute of Medical Sciences.

३ : विज्ञान संकाय—Faculty of Science.

४ : कृषि संकाय—Faculty of Agriculture.

५ : कला संकाय—Faculty of Arts.

६ : वाणिज्य संकाय—Faculty of Commerce & Business Management.

७ : संगीत एवं ललित कला संकाय—Faculty of Music and Fine Arts.

८ : प्राच्यविद्या संकाय (संस्कृत महाविद्यालय)—Faculty of Oriental Learning.

९ : सामाजिक विज्ञान संकाय—Faculty of Social Sciences.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिविर के कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन भी किया गया है। अब न ही एक साथ रहना तथा भोजन हो पा रहा है और न ही योग-आसन की कक्षाएँ ही लग पा रही हैं। यही नहीं, चर्चा वाली सभा को भी निबन्ध-वाचन या प्रवचन की सभा से मिला दिया गया है, और अब दिन में केवल दो सभायें होंगी। प्रातः निबन्ध-वाचन और सायं प्रवचन।

इस शिविर में छात्र-सदस्य निर्धारित विषयों पर निबन्ध पढ़ेंगे तथा प्राध्यापक अथवा कर्मचारी प्रेक्षक की तरह रहेंगे। वे निबन्ध-वाचन में भाग नहीं लेंगे।

इस प्रकार सही माने में इस समय शिविर न होकर एक सेमिनार (परिसंवाद) हो रहा है। परन्तु यह सेमिनार अन्य शैक्षणिक (Academic) सेमिनार से बिलकुल भिन्न है। यहाँ पर हम किसी शक्षणिक या आर्थिक या सामाजिक विषय को लेकर माथा-पच्ची करने नहीं जा रहे हैं। वरन् किसी मित्र के सहवास में अपनी समस्याओं की जड़ कैसे ढूंढी जाय, शिक्षण का प्रयोजन क्या हो, स्वतन्त्रता का आशय कैसे पहचाना जाय, और सबसे मुख्य महामना मालवीय जी के स्वप्न को कैसे साकार किया जाय, ये और इनसे सम्बन्ध रखते हुए बहुत सारे विषयों को छूने का ध्येय है इस शिविर का। इन्हीं प्रश्नों से मिलते-जुलते पाँच विषयों का चयन किया गया है।

जो बातें मैंने अभी कही हैं वे कोई ऐसी नहीं हैं जो न तो कभी कही गयी हों और न सोची गयी हों। किन्तु क्षमा कीजियेगा, सोचते समय अथवा कहते समय शब्दों के सही माने को अकसर नहीं समझा जाता है। यही कारण है कि हम सोचते कुछ हैं, कहना कुछ चाहते हैं, कहते कुछ हैं और समझने वाला उसका कुछ और ही भिन्न मतलब निकालता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् का शुक्र है कि हम लोग जो विश्वविद्यालय में पढ़ रहे हैं अथवा पढ़ा रहे हैं, वे इस शान्तिमय समय के हकदार हैं, जिसमें मनुष्य कुछ सोच-विचार कर सकता है। हममें से बहुत लोग अपना समय इस ओर देते भी हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश अधिकांश लोग दर्द अथवा पीड़ा को सही तौर पर समझ ही नहीं पाते हैं और केवल उसके विषय में रोया-धोया करते हैं।

हमें आशा ही नहीं वरन् दृढ़ विश्वास है कि जो छात्र इस शिविर में भाग ले रहे हैं, उन्हें खुद की एवं विश्व की समस्याओं को देखने की, समझने की और हल करने की नयी पद्धति का अनुभव होगा। जिस प्रकार मे हमारा विश्वविद्यालय भारत में पहला था जहां विमला बहन के निर्देशन में ध्यान शिविर लगा था, उसी प्रकार यह "छात्र स्वाध्याय शिविर" भारत में पहली बार हमारे विश्वविद्यालय में ही हो रहा है। और ऐसा होना भी चाहिये क्योंकि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का पूरे समाज के प्रति विशेष उत्तरदायित्व है और महामना मालवीयजी ने यहां के विद्यार्थियों के ऊपर इस सनातन देश की विरासत की रक्षा और पोषण का कर्तव्य सौंप रखा है। इस नाते इस शिविर का इस समय, इस विश्वविद्यालय में लगना केवल विश्वविद्यालय और उसके विद्यार्थियों के लिये नहीं, वरन् पूरे भारत राष्ट्र और विश्व के लिये महत्त्वपूर्ण है। हम समस्याओं को सुलझाने का वातावरण बनाने में एक महत्त्वपूर्ण कदम उठा रहे हैं। इस शिविर की पूरी कार्यवाही की ब्यौरेवार रिपोर्ट पुस्तक के आकार में प्रकाशित की जाएगी और इस प्रकार पूरे देश के विश्वविद्यालयों में हमारे विचार और सुझाव पहुँच सकेंगे। वैसे इस शिविर का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति में सही क्रान्ति लाना है और गंभीर व्यक्तियों को एक मित्र के निकट लाकर उनको जागृत करना है।

रहा सवाल विमला बहन का, तो वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिये नयी नहीं हैं। उनकी महत्ता को तो केवल अनुभव किया जा सकता है। हम लाख शब्दों का सहारा लेकर आपको रसगुल्ले का स्वाद बतायें, मगर आपको रसगुल्ले का स्वाद नहीं मिलेगा—भले ही कुछ और मिल जाय।

यही बात विमला बहनजी के साथ है। ऐसा हमने ही नहीं, वरन् बहुत सारे वरिष्ठ लोगों ने अनुभव किया है। इस कारण मैं विमला वहन के बारे में अधिक कहने के लिये असमर्थ हूं, क्षमा कीजियेगा। यही नहीं, विमला वहन हम लोगों के अनुरोध पर शिविर को संचालित करने के लिये पधारी हैं, इसलिये उनको धन्यवाद अभी दिये देता हूं, क्योंकि उनके प्रवचन के वाद शायद उन्हें धन्यवाद देने के लिये भी शब्द न निकलें। बड़े हर्ष की बात है कि विमलाजी के दो आत्मीय भी उनके साथ यहां पधारे हैं। गुजरात के प्रसिद्ध साहित्यिक और साधक श्री किशनसिंह चावड़ा और अहमदावाद की जानी-मानी समाजसेविका श्रीमती सुनन्दावेन वोहरा यहां उपस्थित हैं। मैं उनका भी हार्दिक स्वागत करता हूं। वरिष्ठ चिन्तक और प्रवक्ता श्री रोहित मेहता ने पूरे संवाद में अपनी उपस्थिति द्वारा और समापन सभा में प्रवचन के द्वारा जो अमूल्य सहयोग देने की स्वीकृति दी है, उसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

इस शिविर में भाग लेने वालों की ओर से और अपनी ओर से मैं कुलपति महोदय का आभार प्रकट करता हूं क्योंकि उन्हींकी इतनी गहरी रुचि और प्रोत्साहन की कृपा से यह शिविर हो पा रहा है।

इस शिविर को सही आकृति देने में सुश्री डा० प्रेमलता शर्मा, डा० यें. शिवरामकृष्ण शर्मा, डा० वी० वी० चलम्, सुश्री डा० पद्मा मित्र, श्री स्वा० सोमस्कन्नद, डा० उमेशप्रसाद तथा अन्य बहुतों का योगदान महत्त्वपूर्ण है। शिविर के सभी सदस्य उनके आभारी हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्‌घाटन भाषण—

कुलपति डॉ० कालूलाल श्रीमाली

हम विमला बहन के बहुत कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार की और यहां इस शिविर का आयोजन किया। जैसा कि हमारे भाई ने अभी बताया, यह शिविर सितंबर में होने वाला था। लेकिन दुर्भाग्य से कुछ उपद्रव हुए, और तब यह शिविर न हो सका। सही बात तो यह है कि इन शिविरों के आयोजन का मेरा मुख्य उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी विमला बहन के सम्पर्क में आयें और जीवन की समस्याओं का जो गहरा चिन्तन इन्होंने किया है उससे लाभ उठा सकें।

विद्यार्थियों में जो उपद्रव होते रहते हैं, उन्हें हमने बाहर से देखा, भीतर से देखा और विद्यार्थियों के जीवन में देखा तो ऐसा लगा कि जो उपद्रव होते हैं, वे कुछ आंतरिक विकारों के परिणाम हैं। जितने भी विद्यार्थी उपद्रव में शामिल होते हैं, उनके जीवन को गहराई से देखिये, पृष्ठभूमि को देखिये तो पता लगता है कि उनके पीछे कुछ न कुछ मानसिक द्वन्द्व होता है, कोई न कोई जीवन की समस्या उलझी हुई होती है और जब तक वह सुलझती नहीं है, तब तक विकार के रूप में प्रकट होती रहती है।

जब विश्वविद्यालय में उपद्रव होते हैं तो कुछ करना पड़ता है, कुछ विद्यार्थियों को सजा देनी पड़ती है। लेकिन वह रोग का निदान नहीं है। निदान तो यही है कि जो हमारे विद्यार्थी हैं, वे कुछ आत्म-निरीक्षण करें और अपनी समस्याओं को सुलझाने का, समझने का उन्हें अवसर मिले। यह तभी हो सकता है जबकि वे किसी ऐसे व्यक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के सम्पर्क में आयें जिसने स्वयं उन समस्याओं पर कुछ चिंतन किया हो, मनन किया हो।

इसलिये इस शिविर का आयोजन जब प्रेमलता बहन ने किया तो मुझे बड़ी खुशी हुई। मुझे लगा कि बड़ा अच्छा अवसर है कि विमला बहन, जिन्होंने इन समस्याओं पर गहरा चिन्तन किया है, उनके सम्पर्क में विद्यार्थी आयें तो उन्हें बहुत लाभ होगा और वे अपने जीवन की समस्याओं को सुलझाने में कुछ हद तक सफल हो सकेंगे। लेकिन, हमारी कुछ बदकिस्मती रही कि शिविर से पहले ही उपद्रव हो गया। फिर जब विश्वविद्यालय में शांति हुई तो मैं चाहता था कि शिविर पुनः हो।

बात यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी न कभी, कोई न कोई, कुछ न कुछ कठिनाई आती है, संकट आता है और वह कभी भी आ सकता है। कुछ व्यक्तियों के जीवन में जल्दी आता है, कुछ के जीवन में देर से आता है। उस संकट का सामना करने के लिये शक्ति होनी चाहिये। वह शक्ति बाहर से नहीं, अपने भीतर से आती है। मनुष्य जब सहारा लेता है तो वह कोई बाहर की शक्ति नहीं होती भीतर की कुछ शक्ति होती है। आंतरिक शक्ति को उसे संबल बनाना पड़ता है। हम लोग इस बात का प्रयत्न तो कर रहे हैं कि बाहर के साधनों से मनुष्य को कुछ सुख मिले। वह तो ठीक है, होना ही चाहिये। पर सच्चा सुख तो मनुष्य को तभी मिलता है जब उसके भीतर के साधनों का विकास हो। प्रत्येक व्यक्ति में वे साधन हैं।

हमारे यहां विमला बहन दो-तीन बार आ चुकी हैं। मुझे उनके प्रवचन सुनने का अवसर मिला और ऐसा लगा कि इन्होंने बहुत गहराई से चिंतन-मनन किया है, ध्यान करती हैं। मैं तो चाहता हूं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि ये यहीं पर अपना मुख्यालय (Headquarters) बना लें, और हमारे विद्यार्थियों तथा अध्यापकों के अधिक सम्पर्क में आयें जिससे हम समाज को नयी दिशा दे सकें।

हम विमला बहन के बहुत आभारी हैं कि इन्होंने हमारी प्रार्थना स्वीकार की और इस शिविर का श्रीगणेश करने के लिये हमारा निमंत्रण स्वीकार कर सकीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विमलाजी का प्रारम्भिक प्रवचन

दो तीन वर्ष पहले जो एक सपना इस विश्वविद्यालय के प्रांगण में बैठकर देखा था, हठात् उसके साकार होने की घड़ी आ गयी है, इसकी मुझे प्रसन्नता है। साठ या सत्तर छात्र अध्ययन-शिविर में या परिसंवाद में शामिल होंगे। कितने शामिल होते हैं, कितने नहीं शामिल होते, इस संख्या को देखना मेरी दृष्टि से बहुत गौण है। किस हेतु से, किस बुद्धि से यह परिसंवाद होने जा रहा है, इसका मौलिक महत्त्व है। शिक्षण के बारे में, विद्यार्थी जीवन के विषय में या सामाजिक समस्याओं के विषय में चिन्तन करने के लिये, सहचिन्तन करने के लिये, परिचर्चा करने के लिये युवक इकट्ठे होते हैं या होना चाहते हैं, बस इसीका मेरे निकट अत्यन्त मूल्य है।

भले ही पांच छात्र हों, लेकिन विधायक दृष्टि को लेकर, अपने भीतर जो शक्ति है, जो सर्जनात्मक प्रतिभा है, उसे बटोर कर विधायक दृष्टि से, विधायक वृत्ति को लेकर समस्याओं का विश्लेषण करेंगे। उस विश्लेषण से समझेंगे कि हम कहां हैं। हम कहां हैं, इसका पता जब तक नहीं चलता जब तक किसी भी दिशा में कदम आगे नहीं उठाया जा सकता।

पिछले वर्ष जब यहां ध्यान शिविर हुआ तो प्रेमलता ने कहा था कि भारतवर्ष में यह पहला विश्वविद्यालय है जहां इस प्रकार शिविर हो रहा है। मुझे प्रसन्नता है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जिसका श्रीगणेश हुआ उसका ऐसा विस्तार हुआ कि पिछले वर्ष मार्च में यहां से जाने के बाद सितम्बर में शिमला, फिर चण्डीगढ़, फिर डिब्रूगढ़, गोहाटी, बम्बई और गुजरात विश्वविद्यालय में वैसे शिविर हुए। हर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगह कुलपति (Vice-Chancellor) खुद ही आते और शुभारम्भ करते। शिक्षकों के शिविर हुए गुजरात में, बम्बई में। शिक्षण-विषयक समस्याओं पर विचार करने के लिये लगभग पिचहत्तर प्राध्यापक बम्बई विश्व-विद्यालय के, तीन दिन तक साथ रहे। वहां के कुलपति श्री टोपे सारा समय तो नहीं दे सके, फिर भी साथ रहे। गुजरात विश्वविद्यालय में उमाशंकर जोशी आये शिक्षक परिसंवाद का और अध्ययन सत्र का प्रारम्भ करने। पिचहत्तर से प्रारम्भ हुआ और एक सौ दस तक वहाँ शिक्षकों की संख्या गयी और उन लोगों ने शिक्षण में मन के अध्ययन को किस प्रकार दाखिल किया जा सकता है, इसका अध्ययन करने के लिये अनुवर्ती (Follow-up) काम शुरू किया है। अभी मेरे पास एप्रिल में सात दिनों के लिये वे शिक्षक आने वाले हैं। प्राथमिक (Primary) स्तर पर, उच्चतर माध्यमिक (Higher Secondary) स्तर पर और विश्वविद्यालय के स्तर पर उस अध्ययन का स्वरूप क्या हो—इस पर विचार करने वाले हैं।

यह रिपोर्ट इसलिये बता रही हूँ कि इस पवित्र भूमि में जिसका शुभारम्भ हुआ था, एक वर्ष पूरा होने से पहले ही उसका विस्तार देखकर मैं अवाक् रह गयी हूँ। और अभी मैं आ रही हूँ आस्ट्रेलिया से, कल ही दिल्ली पहुँची। वहां वेस्ट आस्ट्रेलिया की यूनिवर्सिटी में एशियन-स्टडीज् के विभाग ने बुलाया था। कैनबेरा यूनिवर्सिटी ने बुलाया था। वहां के छात्रों और प्राध्यापकों का सहयोग देखकर भी प्रसन्नता की एक ऐसी लहर उठी कि यह व्यक्तियों की इच्छा से नहीं हो रहा है, इसके पीछे जमाने की कोई आकांक्षा है, युग की मांग है।

इस युग की मांग को समझने में निमित्त कोई बनता है और उसका विश्लेषण करके कदम आगे बढ़ाने का पुरुषार्थ किसी को करना पड़ता है। "निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्"। तो, इस प्रकार निमित्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनने का सौभाग्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को मिला, मेरी दृष्टि से यह उचित ही नहीं, इसके पीछे भी एक संकेत है। आज इस विश्वविद्यालय का स्वरूप क्या है, वातावरण कैसा है, यहां क्या कठिनाइयां आती हैं, कैसे उपद्रव होते हैं. हिंसा कैसे धधक उठती है, इस सबको आप देखते होंगे, लेकिन मेरी दृष्टि तो पीछे चली जाती है।

महामना मालवीय जी, भगवती एनी बेसेण्ट जैसे मनीषियों ने इस भूमि में किसी हेतु से इस विश्वविद्यालय का बीजारोपण किया था। एनी बेसेण्ट के उस समय के प्रवचन यदि आप पढ़ेंगे तो आप देखेंगे कि उन्होंने यह ताड़ लिया था कि पश्चिमी शिक्षण के कारण भारतीय जनता के मानस में से अपनी सभ्यता, अपनी आध्यात्मिक विरासत, अपने जीवन के मूल्य और मूल्यांकन, व्यवहार के मधुर संकेत, उसका संगीत—यह सब हटा जा रहा है। इच्छा उनकी यह थी कि विज्ञान का तो उपयोग करना होगा, तकनीक तो सीखने पड़ेंगे, लेकिन जिनको अपनी जड़ों का पता नहीं है, उनके हाथ में यदि विज्ञान और तकनीक भी चला जाय तो उसका सदुपयोग होने के बजाय दुरुपयोग ही होगा। उन्होंने कहा था कि हमारा उद्देश्य भौतिक समृद्धि और धन-सम्पत्ति जो कि दूसरे राष्ट्रों के पास हैं, उनकी पौध लगाना नहीं है, बल्कि इस सनातन देश की संस्कृति और विरासत को समृद्ध करना है। यह १९०४ की बात कर रही हूँ।

शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा—चारों का समन्वित विकास यहां हो ऐसा सपना महामना मालवीयजी ने देखा था। उनकी बात तो मैं क्या कहूँ? उनके मैंने कभी दर्शन नहीं किये, ग्रन्थ देखे हैं। और, यह जो उनकी अक्षर-काया है यह विश्वविद्यालय, इसके प्रति मुझे बहुत प्रेम है। इस विश्वविद्यालय के प्रांगण में आज जो उपद्रव होते हैं या गत बीस-पच्चीस वर्षों में जो वातावरण बना होगा, उससे कहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिक मूल्य है उन सपनों का, उन विचारों का और उस बीजारोपण का। वे बीज कभी निष्फल नहीं जा सकते।

सारे देश में १९४७ के बाद जो एक हवा आयी, उससे बहुत कुछ अंधाधुंध घटित हुआ। धर्म निरपेक्षता (Secularism) का आशय तो समझ नहीं पाये, उसका सच्चा अर्थ तो जान नहीं पाये और धर्म-अध्यात्म की डोर हाथ से छूट गयी। अपना जो आपा है उसे तो पहचाना नहीं, देखा नहीं, परखा नहीं, निरखा नहीं और दूसरों की तड़क-भड़क पर हम रीझ गये। चाहे इस देश का आर्थिक संयोजन हो या राजनैतिक या शैक्षणिक संयोजन हो। सारा का सारा देश एक ऐसी हवा, ऐसी आंधी तूफान में उलझ गया था कि इस देश की जो पुरानी बातें हैं या जड़ें हैं, उन्हें आंख खोलकर हम देख नहीं पाते थे। जिन्होंने सुने सुनाये या अप्रत्यक्ष (Second-hand or Third-hand) ढंग से वेदों का या उपनिषदों का संस्कृत से जर्मन में, जर्मन से अंग्रेजी में या फ्रेंच भाषान्तर पढ़कर छिटपुट अध्ययन किया है, उनके ग्रन्थ हमारे लिये प्रमाण बनते थे। खैर, उसके इतिहास में आज नहीं जाऊँगी। ऐसे दुःखद पर्व हर देश के इतिहास में आते होंगे, भारत के इतिहास में भी वे पर्व आये। नुकसान काफ़ी हुआ।

आप कहेंगे "पर्व था" ऐसा क्यों कहा ? "पर्व है" ऐसा क्यों नहीं कहा ? क्योंकि मुझे लगता है कि इस देश का इतिहास एक मोड़ पर आया है, उसने एक पलटा खाया है। कब ? कैसे ? पिछले दो या तीन वर्षों की, इस देश की बाह्य या आन्तरिक घटनाओं का वर्णन करने का आज अवसर नहीं है। गलत हो सकती हूँ। गलत यदि कभी साबित होऊँगी तो प्रभु क्षमा करेंगे। लेकिन, लगता है कि पलटा खाया है। बंगला देश के निमित्त से मिली हुई विजय उसका बहुत नगण्य सा द्योतक है। भारत-पाकिस्तान के सम्बन्धों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi.

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिवर्तन, चीन का संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनना, इंगलैण्ड, फ्रांस, अमेरिका आदि देशों के नेताओं की कोई बात न चल पाये और इन्दिराजी का कदम बंगला देश के बारे में सफल हो जाय, शेख मुजीब को जिन्दा, साबुत अपने देश में एक नारी का महान् प्रयास लौटा पाय--इत्यादि संकेत हैं। उसमें केवल व्यक्ति का गौरव मत देखिये।

मैंने कहा था कि व्यक्तियों को प्रभु निमित्त बनाते हैं। जिस दिन व्यक्ति समझेगा कि यह सारा का सारा मेरा पुरुषार्थ है, तब वह इतिहास को पढ़ नहीं पायगा, जीवन को वैश्विक जीवन के सन्दर्भ में देख नहीं पायगा। वैश्विक जीवन से जो बिछुड़ चुकी हो ऐसी व्यक्तिगत जीवनधारा का कोई मूल्य नहीं। तो, इसमें कोई हेतु देख रही हूं। जो परिवर्तन आ रहा है उसकी कुछ आहट पा रही हूं। फिर वह अमेरिका में "कृष्ण चेतना" वाले हों या "हरे कृष्ण" आन्दोलन वाले हों या अमेरिका में उनके द्वारा चौबीस कृष्ण मन्दिर बनते हों, या आस्ट्रेलिया में कृष्ण मन्दिर बनते हों या अनेकों देशों में शहर-शहर में "महाप्रभु लौट रहे हैं धरती पर" इस भावना से संकीर्तन होते हों, होनोलूलू में, आस्ट्रेलिया में, अमेरिका में चार हजार ब्रह्मचारी कीर्तन करते हों--ये सब छिटपुट घटनायें अपने आप में निरर्थक लग सकती हैं। अपने में उनकी कोई संगति न भी बैठ पाये। चाहे बल्गेरिया में योग-सूत्रों का दोहन करके Suggestology या Suggestopaedia की संस्था चलती हो या रूस में, शरीर के भीतर जो विभिन्न सूक्ष्म शरीर हैं, उनका अध्ययन करके विज्ञान से उन्हें सिद्ध किया जाता हो, चाहे हॉलैण्ड बेलजियम में अष्टावक्र संहिता या भगवद्गीता के अध्ययन-सत्र चलते हों, योग संस्थायें चलती हों। हवा बदल रही है। उद्योगवाद, भौतिकवाद और व्यक्तिवाद का जो दौर १८ वीं सदी से चला, मालूम होता है, जैसे वह अब अस्ताचल पर आया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुनिया में जिसे घूमना ही पड़ता है, परिव्रज्या ही जिसका जीवन है, वह अपने आंचल में विभिन्न संकेत समेट कर अपने भाइयों के लिए ले आई है, कि भाई जमाना इस ढंग से दीखता है, इस प्रकार परिवर्तन हो रहे हैं। अब इस पार्श्वभूमि पर देखिए कि भले ५०-६० छात्र इस विश्वविद्यालय के प्रांगण में चार पांच दिन शान्ति से बैठ कर चिन्तन करने के लिये तैयार हो गये। बारह हजार में साठ हैं, इसकी गिनती आप लगाइये। जीवन में संख्या का मूल्य नहीं, गुणवत्ता का मूल्य है। संख्या और आकार ये भौतिकवाद के नारे हैं। ये भौतिकवाद के साथी संगाती हैं जो उसके साथ चलते हैं। अध्यात्म में परिशुद्ध वृत्ति, परिशुद्ध कार्य-पद्धति, गुणवत्ता का मूल्य है, आकार का नहीं। सत्य का, प्रेम का मूल्य है; उसका आकार नहीं देखा जा सकता क्योंकि सत्य का कोई आकार नहीं होता। वटवृक्ष का बीज बहुत छोटा होता है। छोटा तो होता है, लेकिन यदि खण्डित न हो, दग्ध न हो तो उसमें से अनन्त वटवृक्ष निकल आते हैं। क्योंकि उस बींज में कूट-कूट कर भरी होती है सर्जन की शक्ति।

यह आपको फुसलाने या बहलाने के लिये नहीं कह रही हूं। इस ढंग से जीती आयी हूं कि मूल्य इसी बात का है कि हम समझ जायं कि आज का जो वातावरण है, वह ग़लत है, अनुचित है। इतने सुन्दर विश्वविद्यालय में रहना और ऐसे वातावरण का निर्माण करना! इतना शानदार प्रांगण दुनियां के किसी भी विश्वविद्यालय का देखने में बहुत कम आया है। तो, यहां रहने का सौभाग्य मिलता है। जाने कितने व्यक्तियों का प्रेम से, श्रद्धा से दिया हुआ पैसा इसमें लगा है। भगवती एनी बेसेण्ट जैसे, महामना मालवीयजी जैसे, उनके साथियों जैसे, सर्व-पल्ली राधाकृष्णन् जैसे कितने ही महान् व्यक्तियों की प्राण-शक्ति इसमें लगी है। कितनों के नाम गिनाऊं? यहां रही नहीं हूं, लेकिन फिर भी रही हूं। कुछ आत्मा का संबन्ध इस विश्वविद्यालय से रहा है। कभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यहाँ आती भी नहीं थी, प्रेमलता से परिचय भी नहीं था, फिर भी सदैव यह लगता था कि पूरे भारत-वर्ष में कहीं एक पांव रखने की जगह है, जहां भारत की आत्मा कभी बोल उठेगी। मेरे विद्यार्थी-जीवन से यह सपना रहा है।

यह नहीं कह रही हूं कि पांच दिन हम लोगों के एक साथ बैठने से, निबंध पढ़ने या सुनने से, चर्चा करने से विश्व-विद्यालय के सारे सवाल हल हो जायेंगे। ऐसी भ्रान्ति न मेरे छोटे साथियों के मन में है, न मेरे। कुछ कर गुजरेंगे, ऐसा नहीं, लेकिन एक दूसरे के निकट आने की, एक-दूसरे को समझने की, एक दूसरे के पास अपना अन्तर खोलने की इच्छा हुई, यह अधिष्ठान बनेगा। हम नहीं कर पायेंगे तो कोई दूसरा करेगा। करने का आग्रह तो महत्त्वाकांक्षियों का खेल होता है।

जिनको परिस्थिति से चिन्ता होती है, जिन्हें दुःख है मानव के चित्त की अधोगति के कारण, या मानव की बुद्धि जो मूढ़ हो रही है, उसके लिये जिन्हें वेदना है, वे यह नहीं सोचते कि अपने ही हाथ से कुछ होना चाहिये। यह हो रहा है, बस इसी का मूल्य है। यदि आप वर्तमान में समग्रता से जी सकें तो भविष्य अपनी चिन्ता स्वयं कर लेगा। लेकिन भविष्य की तरफ़ नजर रखते हुए, भविष्य का हिसाब लगाकर गणित के अनुसार परिणाम लाने के लिए वर्तमान को जो चाहते हैं वे न इस क्षण में जी पाते हैं और भविष्य तो है नहीं कि उसमें वे कभी जी लेंगे। जो आज नहीं जिया और अभी नहीं जिया वह आगे कभी जियेगा यह तो मृगजल में नहाने जैसी भ्रान्तिमय कल्पना है।

तो बड़ी प्रसन्नता है कि हमारे आदरणीय श्रीमालीजी आज यहाँ उपस्थित रह सके। जितनी बार आयी हूँ, समय निकाल कर घण्टा-दो-घण्टा आये बिना और हम लोगों को प्रोत्साहन और आशीष दिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिना वे रहते नहीं हैं। आज उनकी उपस्थिति में एक नये दृष्टिकोण का जन्म विश्वविद्यालय के प्रांगण में होने जा रहा है। इसकी बड़ी प्रसन्नता है।

अभी कुछ समस्यायें आपके सामने पढ़ी गईं। इन समस्याओं पर आपको और हमको गम्भीरता से सोचना होगा। सोचने के दो ढंग हो सकते हैं। एक तो यह कि समस्या का अपने जीवन में जो स्वरूप है व्यक्तिगत और सामुदायिक, यानीं अपने आस-पास उसका जो स्वरूप हो, अपने जीवन में उसके कारण जो कठिनाई आई हो, उसके बारे में सोचना और हल ढूंढना। यह एक पद्धति हैं चिन्तन की और दूसरी पद्धति है कि समस्या का अपने सामने जो स्वरूप है, उसे देखकर यह समझने की कोशिश करना कि विश्व में ऐसी कौन सी परिस्थिति है जिसके कारण यह रूप सामने आया है। वैश्विक परिस्थिति में ऐसा कौन सा सन्दर्भ है कि हमारे जीवन में इस समस्या का यह स्वरूप आया। एक में विशिष्ट समस्या के तात्कालिक पहलुओं पर विचार होगा और दूसरी में जीवन की समग्रता के साथ समस्या को जोड़कर देखने का प्रयास होगा। इन दोनों पद्धतियों से कुछ चिन्तन, कुछ विश्लेषण हम लोग पाँच दिन में करेंगे—ऐसी आशा है।

एक उदाहरण दूँ—अभी आस्ट्रेलिया में डेढ़ महीने भ्रमण करके आयी हूँ। वहाँ मुश्किल से डेढ़ करोड़ की वस्ती होगी। बड़ा लम्बा चौड़ा देश है। वैभव और सम्पन्नता तो इतनी कि मनुष्य ऊब जाय। वहाँ एक समस्या सामने रक्खी गई कि युवावर्ग पढ़ना नहीं चाहता है। पूरे देश में अभिभावकों, प्राध्यापकों, सरकारी अफसरों की यह शिकायत है कि युवक पढ़ना नहीं चाहते हैं। उनका ध्यान जाता है मादक औषधों के प्रति जिनसे चेतना का विस्तार होता है, कोई हिप्पी बनते हैं, कोई बीटनिक बनते हैं, कोई 'कम्यून' बनाते हैं, कोई हठ-योग, तन्त्र, शक्तिपात आदि के पीछे दौड़ते हैं। लेकिन वहाँ के विश्व-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विद्यालयों में जान इसलिए नहीं है कि अच्छे से अच्छे मकान, अच्छे से अच्छे पढ़ाने वाले विद्वान् जो निया भर ले आये हुए हैं, अच्छे से अच्छे अन्य उपकरण हैं, लेकिन लड़के पढ़ना नहीं चाहते।

इस प्रकार एक समस्या रक्खी गई। समस्या रखने वालों का जो चिन्तन है, उसमें तो वे तात्कालिक हल चाहते हैं। मैंने कहा—कि यह बतलाइये कि देश आपका कितना पुराना है। दो ढाई सौ वर्ष से अधिक का आस्ट्रेलिया का इतिहास नहीं है। ग्रेटब्रिटेन में जो गुनाह करते थे, उन्हें जहाजों में भर कर आस्ट्रेलिया भेज दिया जाता था। ऐसा वहां के समाज का इतिहास है। पूरा देश समुद्र के किनारे पर बसा हुआ है। भीतर का प्रदेश तो बिलकुल निर्जन, अछूता पड़ा है। हजारों मील धरती यों ही पड़ी हैं। वे लोग जब वहां बसने गये तो इन्होंने देखा कि यह तो अछूता देश है, यहां पैसा खूब कमाया जा सकता है। इसलिए हॉलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली आदि अन्य देशों के लोग भी धीरे-धीरे वहां बसने लगे। सबने देखा कि वहां कच्चे माल की बहुलता है, और जापान जैसा देश जिसके पास कच्चा माल नहीं है उसके साथ व्यापार शुरू किया और इस प्रकार खूब पैसा कमाया। मांस का बहुत बड़ा व्यापार है। यह करने के लिए चालीस लाख से अधिक आदिवासियों को मौत के घाट उतारा गया। इसलिए मैंने उनसे कहा कि भाई आपका यह रक्त-लांछित वैभव है, नर-संहार पर आधारित है। आज भी वहां आदिवासी जमीन नहीं खरीद सकते। मालिक नहीं बन सकते। हालांकि देश उनका, जमीन उनकी। जो थोड़े कुछ बचे हैं, उन आदिवासियों के हाई कमिश्नर, मन्त्रिगण मुझसे मिलने आये तो पता चला कि उनकी बड़ी दुर्गति है। मैंने कहा कि यह रक्त-लांछित वैभव का, सम्पत्ति और सत्ता का मद सौ डेढ़ सौ वर्ष चला, लेकिन कब तक चलेगा? तुम्हारे ही बच्चे उसे ठुकरा देंगे। आपके सामने जो समस्या है उसकी जड़ कहां है? आज लड़के पढ़ाई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से जो विरत हो रहे हैं, उसका तात्कालिक इलाज आप भले ही ढूंढ लीजिए, लेकिन उसकी जड़ में जो नरसंहार था, जो लालसा थी, मानवता को भूलने का जो अपराध था उसका दण्ड कभी न कभी तो भुगतना ही पड़ेगा। कभी न कभी तो सजा भुगतनी ही पड़ती है।

किसी विशेष समस्या को समग्रता के साथ कैसे जोड़ा जाय यह चिन्तन का आधार है। इसका यह अर्थ नहीं कि विशिष्ट समस्या का विश्लेषण न करें या उसके उपाय न ढूंढें। उसके उपाय तो जरूर ढूंढने पड़ेंगे, लेकिन जबतक विशिष्ट समस्या के आशय और स्वरूप को जीवन की समग्रता के साथ जोड़ा नहीं जायगा, देखा और परखा नहीं जायगा और मानवीय बुद्धि में, चित्त में कहां ऐसी त्रुटि, कहां ऐसा दोष रह गया है जिसके कारण यह समस्या आई, यह जब तक देखा नहीं जायगा, तबतक समस्या का समाधान नहीं होगा।

तो, यहां हम विचार करेंगे। अभी बताया गया कि विज्ञान और यन्त्र-विज्ञान के विकास के फलस्वरूप मानव को जो सुविधायें मिली हैं और उस पर जो दायित्व आये हैं, यह एक विषय है जिस पर छात्र निबन्ध पढ़ेंगे। यह देखकर तो मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। जब १९७० में पहली बार यहाँ आई थी तब फ्रांस का १९६८ का विद्यार्थी-आन्दोलन, उनकी ग्रीष्म-क्रान्ति देखकर आई थी, तब कहा था कि अन्तर्राष्ट्रीय एकता संगठन के नेता से मिलना हुआ था। २२-२३ वर्ष का युवक था। अपने उद्देश्यों के घोषणा-पत्र में उन्होंने कहा था—"मनुष्य खो गया है। पूंजीवाद से लेकर साम्यवाद तक कोई उसका आविष्कार नहीं कर पाया है। हम उसका आविष्कार करना चाहते हैं, हमें उत्पादन के विराट् आसुरी संस्थान नहीं चाहिए, वहां मानव खो जाता है। हम तो विज्ञान और यन्त्र के उपयोग के नये मार्ग खोजना चाहते हैं।" १९७० में अमेरिका में, केलिफोर्निया में ५००

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लड़के-लड़कियों का कम्यून देखने गई थी। ७५ कम्यून हैं। १२०० एकड़ भूमि उन्होंने खरीद ली है, और वहीं रह रहे हैं। खेती आदि सब काम काज अपना खुद करते हैं। ऐसे प्रयोग वहां चल रहे हैं। यूरोप, अमेरिका में और रूस में भी विज्ञान और यन्त्र विज्ञान का जिस ढंग से उपयोग किया गया है, उससे मनुष्य के जीवन में शांति नहीं आयी। सुख-सुविधाओं के साधन तो मानव जुटा पाया, भौतिक विकास कर पाया लेकिन चित्तकी शांति और सन्तुलन बह नहीं जुटा पाया। तो क्या इसका कोई दूसरा रास्ता होगा? यन्त्र विज्ञान को तो कोई छोड़ नहीं सकेंगे। कोई व्यक्ति या देश उससे पीछे नहीं हट सकता, लेकिन भारत, या एशिया और अफ्रीका के सामने यह सवाल है कि इनका उपयोग कैसे करें। इनके साथ कौन सी मानसिक, बौद्धिक जिम्मेदारी आती है, इसका हम चिन्तन करें।

आप लोगों ने चौथी योजना के वारे में महानवीस रिपोर्ट देखी होगी। उसमें यह बतलाया गया है कि भारत में राष्ट्रीय आय तो बढ़ी लेकिन साथ ही गरीबी-अमीरी का अन्तर बढ़ गया। गरीबी भी बढ़ी। तो सोचना पड़ेगा नये ढंग से। आपने सवाल उठाया यह बड़ी खुशी की बात है। दूसरा सवाल उठाया आपने कि शैक्षणिक क्षेत्रों में अशान्ति, अनुशासन-हीनता, अव्यवस्था आदि के कारणों का भी चिन्तन करेंगे। तो इस प्रकार मानसिक दायित्व शुरू होगा, यह मेरी बड़ी आशा है। मनुष्य जब जीवन को, संसार को देखता है तो या तो अवसाद, आत्म-दया, कुण्ठा में चला जाता है या दायित्व की मनःस्थिति में जाता है। यानी समस्याओं को देखकर, परिस्थिति की कठिनाइयों की देखकर निराश हो जाता है कि सारे संसार में ऐसा ही है, व्यक्ति क्या कर सकेगा, उससे कुछ नहीं हो सकेगा, तो आत्म-दया, निराशा, या कटुता में चला जाता है। जीवन तो जीना ही है, निराशा में जिये या कटुता में, असहायता में, या शहादत की ग्रन्थि (Martyr Complex) में।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इससे समाज में बड़ी कठिन परिस्थिति आती है। एक रोगी, अस्वस्थ मानस पैदा होता है। इसके बदले यदि यह देखें कि ये सवाल हैं। इनको समझकर हम क्या कर सकते हैं अपने क्षेत्र में। अन्धकार की निन्दा करने से या गाली देने से तो प्रकाश नहीं मिलता हैं। अन्धकार घनेरा होने पर भी चाहे छोटा सा दीपक क्यों न हो, हाथ में लेकर एक कदम भी दिखे तो चलने वाला एक कदम तो आगे बढ़ा पाएगा।

आज संसार में उत्तरदायी मानस की बहुत जरूरत है। आपके छोटे से परिसंवाद को गलत आशा से नहीं देखती हूँ। दुनिया की यह जो परिस्थिति बताती हूँ वह इसलिए की पार्श्वभूमि आपको बता दूँ। इस छोटे से परिसंवाद को मैं एक वैज्ञानिक दृष्टि से देखती हूँ, ऐतिहासिक दृष्टि से देखती हूँ। काशी नगरी में लोग आते हैं श्रद्धा से। हमारे साथ आस्ट्रेलिया से एक बहन आयी हैं। तो क्या वे काशी की गलियां देखेंगी, गन्दगी देखेंगी या लड़ाई झगड़े देखेंगी? इस भूमि में कुछ इतिहास बना था, उसे देखने लोग आते हैं। अब हम यहां रहने वाले उसके लायक हैं या नहीं, यह हमको, आपको देखना है। उसी प्रकार काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के जो स्वप्न-द्रष्टा रचयिता, निर्माता थे, उनके चरणों में यह परिसंवाद एक छोटी सी श्रद्धा-ञ्जलि होगी।

इससे अधिक उद्घाटन के समय कहकर आपका अब समय लूँ यह उचित नहीं होगा। श्री सोमस्कन्दन् जी, श्री चलम्जी, श्री शर्माजी, प्रेमलताजी, और उनके जो अन्य साथी हैं, उन्होंने, और जिन छात्रों ने इस छोटे से आयोजन को यहां तक लाकर छात्रों के हाथों सौंप दिया है, वे सब धन्यवाद के पात्र हैं। पाँच दिन आप लोगों के साथ रहूँगी, बहुत श्रद्धा और अवधान से, जो निबन्ध पढ़े जायेंगे, उन्हें सुनूँगी और चर्चा में शामिल होऊँगी। फलश्रुति क्या होगी यह गणित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निकालने वाले निकालते रहें। हमें तो घटना में सहभागी होने में ही धन्यता और कृतार्थता की अनुभूति होती है। उद्घाटन में आप जो सब शामिल हुए, उन सबको बहुत नम्रतापूर्वक प्रणाम करके आज की सन्ध्या के लिए आज्ञा चाहती हूं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

FREEDOM VERSUS AUTHORITY IN EDUCATION, WITH SPECIAL REFERENCE TO DEMOCRACY

Saturday, 18th March, 1972.
8 A.M. and 5.30 P.M.

Morning Session

Number of Papers—Three

1. Sri Alok Misra—B. Sc. Pt. III (Hons.)
2. Sri Pradeep Kumar—M. Sc. Final (Mech. Eng.)
3. Sri S. P. Kumar—M. B. M. Final

Participants in Discussion

S. P. Kumar, S. N. Mahendra, Alok Misra, Pradeep Kumar, Rajiv Ranjan Singh, Prof. V.S. Subbarao, Prof. Y.S.R.K. Sarma.

Evening Session

Vimalaji's Discourse

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Highlights

Freedom is a state of inner order resulting in harmony in actual behaviour.

× × × ×

Freedom is not given by anyone to anybody ; it is a state of life into which we have to grow.

× × × ×

Authority is not an absolute value as freedom is. It is only a means, a make-shift arrangement.

× × × ×

Education does not begin within the institution, the school. It begins at home, it begins even before that. Education of the child begins at the time of conception.

× × × ×

To-day human beings have lost the sensitivity, the initiative to do things on their own and in education, the major portion is assimilated through sensitivity.

× × × ×

Institutionalised education curtails the freedom of the teacher and the student.

× × × ×

We look at educational problems with political approaches ; that curtails freedom.

× × × ×

Democracy implies awareness on the part of the members, a sense of responsibility among the people, and the capacity to fulfil the responsibility.

× × × ×

VIMALAJI—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Morning Session

Paper I

Alok Misra

ABSTRACT

1. The general trend in the field of education is against freedom and in favour of authority.
2. It is said that discipline, smoothness and maintainence of proper atmosphere is necessary for education and it can be achieved only by the presence of an authority.
3. With the inception of democracy the situation has now altogether changed. These old ideas cannot be simply carried on.
4. Potentialities and capabilities present in modern youth and young scholars should not be underestimated and their views and suggestions should not be neglected.
5. Individual liberty is the soul of democracy and hence it should not be kept aside.
6. Real education is not merely acquisition of knowledge but it is learning. For it, a free atmosphere is required and hence there is the need for freedom in education.
7. All the same, viewing education from worldly and materialistic point of view, we see that presence of authority in it cannot be totally rejected.
8. The net conclusion based on all considerations is that there should be greater freedom in the field of education and lesser authoritarianism.

Today, in this world, we notice that an urge for a revolution, for a total transformation is prevalent everywhere, rather it is getting stronger day by day. The

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

modern youth, the young blood of the new generation is fighting against totalitarianism and authoritarianism in every field. So, even in the field of educatian a demand has arisen for more freedom and greater autonomy.

At present we see that the field of education is a machinery completely controlled by authorities. Universities are supposed to be the biggest centres of education and we clearly see that the administration of these is being carried on by high-level authorities which have been appointed by the Government. Thus power is centralised and in other words, we can say that uptil now the trend has been in favour of authority in education.

It has been generally said that discipline is a must for education and to maintain it we need strong administration and hence there is a need of authority. Probably that is why the the saying is also popular that "Spare the rod and spoil the child.". Importance of discipline can never be ignored but how can we forget that times have changed now? A revolution is taking place everywhere. Now you cannot impart education in an atmosphere of pressure and force.

Modern students, everywhere in the world are demanding greater say in university administration. They are impatient to take up more and more responsibilities on their own shoulders. It has been a general trend to call them inefficient, immatured and incapable of taking up such high responsibilities. But

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

let us not forget that this is the age of domocracy, which in the words of H. E. Fosdick is being "based upon the conviction that there are extra-ordinary possibilities in ordinary people". Hence, I feel that even these enthusiastic youths which are heing discarded as inefficient, if they get a chance, they can bring wonders, they can run our universities in a magnificent way. Well, I do not mean that students can run the education centres more efficiently than authorities but what I mean to say is that we must not underestimate the potentials lying inside the highly spirited youths. Let us not be so pessimistic about them. Moreover, with the inception of democracy it has become extremely difficuit to have one-man control in any field. Democracy means a share of privileges and responsibilities by each and every individual. So, in my opinion, undoubtedly there should be controlling machinery in education-centres, but still students must also be allowed to take part in it. Discipline should be maintained but not at the cost of individual development. Suggestions from students ought not to be rejected as the products of immatured and underdeveloped minds.

It may be said that when I am talking of democracy why do I forget that even in democracy there are organisations and controls ? I do agree with it, that is why I have just said that I do not reject the idea of authority altogether. But here in this context I would like to mention that even C.E. Hughes has said that "While democracy must have its organization and controls, its vital breath is individual liberty". Hence the need is

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

not of wiping out administrative control but of providing due liberty to every member.

Moreover what is education ? What do we mean by education ? In fact education is not merely the acquisition of knowledge but it is learning. It is not an imposition of knowledge upon one's mind by hook or crook but rather a natural advancement of one's mind towards ultimate maturity. Hence education should be imparted in a very natural way and not in a mechanical way as is being generally done, now-a-days. So, we should better call education as a development of natural knowledge and the presence of any kind of authority in it cannot be justified. The great Huxley had also said that "Every great advance in natural knowledge has involved the absolute rejection of authority".

Let us now view education from the wordly point of view. We see that education given in modern universities is becoming more and more employment-oriented. But for this there is the need of a systematic way of giving education. Also, here there is a great need of discipline without which it will not be possible to design education as a means of achieving prosperity, honour, financial success and a good reputation in the present society. It may be asked that just now I have denounced this sort of mechanical education and again I have started talking about it. Well my answer is that, the whole structure of our society is such, that you cannot just separate education from employment and financial aspects of life. On the other hand, we see that there is an increasing demand for the linking of these two.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

That is why, I would like to make it clear that if we look at education, exclusively from this angle, leaving aside all other aspects, we will conclude that authority in education is after all very necessary.

Thus, we see that in the present materialistic world, abolition of authority in education may prove to be fatal in some respects. But still, in the changed situation of the world, with the inception of democracy, one cannot just think of suppressing freedom. There are always some shortcomings, some defects in democracy which can be easily pointed out but in the words of Alfred E. Smith, we know that "All the ills of democracy can be cured by more democracy". Hence, the demand in the modern times for greater freedom in education is totally justified and appropriate. Also, we have already seen that only in a free atmosphere education can be said to be given in a real sense. Hence, now the time has come when our present education system is badly needing a change, a reform, in the form of grater freedom and lesser authoritarianism.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper II *Pradeep Kumar*

ABSTRACT

The fundamental problem proposed for consideration is : "how can we combine that degree of freedom for individual initiative which is necessary for progress with that degree of authority that is necessary for survival and discipline"? The aim is to point out how far authority can serve a useful purpose which is the channelization of individual or corporate energy along constructive and socially useful lines and to deal with destructive trends in individuals or groups. What is to be carefully guarded against is the use of authority for the purpose of killing the initative and damping of the enthusiasm of the youth.

From this point of view the motives of the authorities that govern education will be dealt with. The nation, the religion, the educational institutions of which the teacher is a part, and the parents and their influence upon the raw material that is fed into them, all could be considered from that point of view.

I propose to speak here as to how we can combine that degree of freedom which is necessary for progress with the degree of authority that is necessory for disciplined survival. No philosopher on the earth has ever recommended much authority. Benard Shaw, the great thinker of the 20th century was of the opinion that bringing up of the children under authority by moulding them in accordance with a mechanical system amounts to abortion, indeed mental. But he did stand for a certain degree of authority.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Once I met a lady who maintained that no child should ever be forbidden to do anything, because a child ought to develop its nature from within. However, if its nature leads to swallow pins, I asked ? But I regret to say that her answer was mere vituperation. And yet every child, left to itself, will sooner or later swallow pins, or fall out of an upper window, or otherwise bring itself to a bad end. Therefore one who advocates freedom in education cannot mean that children should do exactly as they please all day long. An element of discipline and authority must exist. The question is as to what emount of it, and the way in which it is to be exercised Practically all progrees, artistic, moral, seientific and intellectual has depended unon such individuals that are not common. There is always a tendency in highly organized society for the activities of such individuals to be unduly hampered. But on the other hand, if the community exercises no control, the same kind of individual initiative which may produce a valuable innovator may also produce a criminal. The problem, like all those with which we are concerned, is one of balanee; too much authority brings stagnation and too much freedom brings chaos and anarchy.

Education may be viewed from many standpoints : that given by the nation, by the religion, by the school, by the parents or even (though this is usually forgotten) by the child itself. Each of these points of view is partial; each contributes semething to the ideal of education, but also contributes elements that are bad. Let us examine them successively and see what is to be

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

said for and against them.

We will begin with the nation as the most powerful force in deciding what modern education is to be. From the point of view of nation, education should be such as to produce patriotic young men and women. It teaches the young to respect existing institutions, to avoid all fundamental criticism of the powers that be, and to regard foreign nations with suspicion and contempt. It increases national solidarity at the expense of both internationalism and individual development. The damage it does to individual development comes through the undue stress upon authority. Collective rather than individual emotions are encouraged and disagreement with prevailing beliefs is severely repressed. Uniformity is desired because it is convenient to the administrator, regardless of the fact that it can only be secured by mental atrophy.

The teacher, in the modern world is seldom allowed a point of view of his own. He is appointed by an educational authority and is sacked if he is found to be educating in his own way. Apart from this economic motive, the teacher is exposed to temptations of which he is likely to be unconscious. Without some element of discipline and authority, it is definitely difficult to keep a class in order. It is easier to punish a boy for showing boredom than it is to be interesting. Moreover even the best teacher is likely to exaggerate his importance and to deem it possible and desirable to mould his pupils into the sort of human beings that he thinks they ought to be. Nevertheless the teacher is far the best of

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

the forces concerned in education, and it is primarily to him or her that we must look for progress.

Then again, school teachers want the credit of their school. This makes a teacher wish to have his boys distinguish themselves in athletic contests or scholarship examinations, which leads to special care for a certain section of superior boys to the exclusion of the others. For the rank and file, the result is bad. It is much better for a boy to play a game badly himself than to watch others playing it well. But the school cares more for its own credit than for the student. In a busy world spectacular success will always win credit out of proportion to its real importance so that some conflict between the two motives is hardly avoidable.

I come now to the point of view of the parents. In our present competitive society, what will be desired by the average parent is not an education which is good in itself, but an education which is better than that of other people. The fundamental defect of fathers is that they want their children to bring credit to them. This is rooted in instinct and can only be cured by efforts directed to that end. The defect exists also, though to a lesser degree, in mothers. The parents exercise their authority in the choice of profession, selection of subjects for study and what not. They impose their own will upon the immatured brains. From the dawn of civilization until our own time, parents have sacrificed their children's happiness in marriage by deciding whom they were to marry, choosing almost always the richest bride or bridegroom available. In the western world, children

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

have freed themselves from this slavery by rebellion, but parents' instincts have not changed. Here I do not mean at all that I support this rebellious attitude of children towards their parents ; I only want to emphasize upon parental instincts. Neither happiness nor virtue, but worldly success is what the average father desires for his children. He wants them to be such as he can boast of to his cronies, and this desire largely dominates his efforts for their education. Nobody ever tries to see the hidden virtues of the child. Education is not moulding of a child into a desired shape. but to bring out and develop the hidden virtues and qualities of theirs.

So we have seen the motives of authorities that govern education. Now let us see what can be said from the child's own point of view. It is obvious that most children, if they were left to themselves, would not learn to read or write, and would grow up less adapted than they might be to the circumstances of their lives. There must be educational institutions and children must be to some extent under authority. But in view of the fact that no authority can be wholly trusted, we must aim at having as little authority as possible, and try to think out ways by which young people's natural desires and impulses can be utilized in education. This is far more possible than is often thought, for after all the desire to acquire knowledge is natural to most of young people, provided it is imparted correctly. There is a charming tale about a man who tried to teach a kitten to catch mice. When it wouldn't

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

run after them. he beat it with the result that even as an adult cat it cowered with terror in the presence of a mouse. The cats teach their kittens to catch mice, but they wait till their instinct has awakened. Then the kittens agree with their mammas that the knowledge is worth acquiring, so that discipline is not required.

The first two or three years of life have hitherto escaped the domination of the pedagogue, and all authorities are agreed that these are the years in which we learn most. Every child learns to talk by its own efforts. Anyone who has watched an infant knows that the efforts required for articulation are very considerable. The child listens intently, watches movements of lips, practises sounds all day long, and concentrates with amazing ardour. Of course, grown-up people encourage it by praise, but it does not occur to them to punish it on days when it learns no new word. All that they provide is opportunity and praise. It is doubtful whether more is required at any stage.

What is necessary is to make the child feel that the knowledge is worth having. But sometimes this is difficult because some knowledge is not worth having. It is also difficult when only a considerable amount of knowledge in any direction is useful, so that at first the pupil tends to be merely bored. In such cases, however, the difficulty is not insuperable. Take for instance, the teaching of mathematics. If it is taught from the point of view that it is the most helpful tool for calculations which are necessary in different fields of science, technology. commerce, etc. with practical examples, it

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

would stimulate the child's mathematical powers amazingly. This method is expensive, and involves patient skill on the part of the teacher, but goes along the lines of the pupil's instinct, and is therefore likely to involve less boredom with more intellectual effort. A football mach involves more effort than the tread-mill, yet one is a pleasure and the other is a punishment. It is a mistake to suppose that mental effort can rarely be a pleasure; what is true is that certain conditions are required to make it pleasurable.

Freedom in education has many aspects. There is first of all freedom to learn or not to learn. Then there is freedom as to what to learn. And in higher education there is a freedom of opinion. Freedom to learn or not to learn can be only partially conceded in childhood. It is necessary to make sure that all those who are not imbeciles learn to read and write. However, this can be done by the provision of opportunity. But even if opportunity alone suffices, children must have the opportunity thrust upon them. Most of them would rather play out of doors where the necessary opportunities would be lacking. In later stages it might be left to the choice of young people whether, for instance, they should go to the university; some would wish to do so, others would not. This would make as good a way of selection as any other to be got from entrance examinations. Nobody, who does not work, should be allowed to stay at a university. The rich persons who do waste their time in college are demoralizing others and teaching themselves to be useless. If hard work

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

were enacted as a condition of residence, universities would cease to be attractive to people with a distaste for intellectual pursuits.

Freedom of opinion, on the part of both teachers and pupils, is the most important of various kinds of freedom, and the only one which requires no limitations whatsoever. But unfortunately this is seldom allowed, may be due to any factor. The fundamental argument for freedom of opinion is the doubtfulness about all our beliefs. If we certainly knew the truth, there would be something to be said for teaching it. But in that case it would be taught without invoking authority, by means of its inherent reasonableness. When the State intervenes to ensure the teaching of some doctrine, it does so because there is no conclusive evidence in favour of that doctrine. The result is that the teaching is not truthful, even if it should happen to be true.

The habit of teaching someone orthodoxy, political, religious or moral has all kinds of bad effects. To begin with, it excludes from the teaching profession men who combine honesty with intellectual vigour, who are just the men likely to have the best moral and psychological impact upon their pupils. Practically all men are unchaste at some time of their lives; clearly those who conceal this fact are worse than those who do not since they add the guild of hypocrisy. But it is only to the hypocrites that teaching positions are open. So much for the effects of orthodoxy upon choice and character of the teachers.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Regimentation is the source of many evils. Educational authorities do not look at children, as religion is supposed to do, as human beings with souls to be saved. They look upon them as materials for grandiose social schemes—future hands in factories or bayonets in war or what not. No man is fit to educate unless he feels each pupil to be an end in himself, with his own rights and his own personality. Revernce of human personality is the beginning of wisdom, in every social question, but above all in education.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper III *S. P. Kumar*

ABSTRACT

Academic freedom refcrs to the amount of independent judgement allowed to teachers and students in seeking knowledge about the world. Though scholars have sought academic freedom since ancient times, in India and abroad, the problem of academic freedom is a modern one, because it is the modern age which has set the dimensions of the problem.

The Age of Enlightenment, the modern age, believes that all aspects of life, even those of religion and civil rule, are subject to intellectual scrutiny, and universities are meant for unlimtted search of truth at all levels.

In the Indian context, we find that students, teachers and academicians are advocating fervently for academic freedom. For students academic freedom means the freedom to decide matters for themselves, to participate in all decisions regarding them. This particicipative role has got certain advantages and limitations. If academic freedom means academic lawlessness, such academic freedom should not be pursued.

For teachers, academic freedom means the right to teach anything they like to the students. But indoctrinating is not teaching. Students should be taught to learn things, and not to develop a biased view regarding a particular subject. In India, teachers speak with a high measure of authority, and do not encourage the student to be democratic in learning.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Administrators view academic freedom as lack of control on academic institutions, and a free rein to do whatever they wish. It is true that there should be no public pressure, but some sort of regulation and direction by the society is necessary. Hence a judicious balance between control and freedom has to be achieved. But academicians are right in advocating complete academic freedom when they have in their minds the political interference and pressure.

***

Academic freedom, as I understand, refers to the amount of independent judgement allowed to teachers and students in seeking knowledge about the world. Seme hold that academic freedom is restricted to the freedom of the scholar within the university to pursue knowledge, but a better approach would be to include all spheres of educational endeavour at different levels in it.

The problem of academic freedom is a modern one, because it is the modern age which has set the dimensions of the problem. Though eversince the time of Pythagoras and Plato scholars have tried te achieve academic freedom, the context in which they undestood freedom was different. For example, the classical Academy was free to a certain extent to explore a life of reason unhindered by the vicissitudes of ' mundane affairs", but the freedom was the freedom of a group to formulate

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

doctrines. Certain later schools like Stoic School and Epicurean School could preserve their academic freedom, but here again, a scholar's freedom to dissent within a school was not allowed. Even the universities of 12th Century in Middle Europe were just like other professional guilds. They had powers to establish rules concerning conduct, fees, curriculum and degrees. At this stage, professional edecation of the man was distinct from spiritual education, and academic freedom was not tolerated in spiritual matters.

Even in India, we find that in ancient times there was no absolute academic freedom. Anyone who wanted to learn enything was not allowed to do so. The teachers or 'Rishis' were vere very much authoritative, and though there were discussions, the teacher's words would prevail finally. Just as there were various schools of thought in other countries later, in India also there were several schools of thought, and the 'Guru' used to indoctrinate the disciple in his school of thought. There was no academic freedom in the modern sense, but neither was the need for it strongly felt, because the traditional and orthodox system of education prevented such a realisation on the part of the students or the teachers.

But, the Age of Enlightenment, the modern age, gave a new dimension to academic freedom. Today all aspects of life, even those of religion and civil rule, are subjeet to intellectual scrutiny, and universities are meant for unlimited search of truth on all levels.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

But then, where does the problem arise ? To restrict the considerations to the Indian context, we find that students, tcachers and academicians are advocating fervently for academic freedom. Students clamour for academic freedom—the freedom to decide matters for themselves, to participate in all decisions regarding them. This has got certain advantages no doubt, but it has certain limitations as well. By giving a participative role to a mature student, the process of education can be made faster and easier, but then the student allowed to porticipate in the decision-making may use his right to his own advantagc rather than promoting the overall interests of the student community, or may promote his group's vested interests. And then, regarding freedom to learn as and when they please, it is allright as long as students realise their responsibilities and obligations to the society. But, if academic freedom means academic lawlessness, such academic freedom should not be pursued.

To argue for the unlimited freedom of the teacher to teach is to deal in platitudes. Indoctrinting is not teaching, though teachers should have a right to teach freely. Students should be taught to learn things, and not to develop a biased view regarding a particular subject. In this context, like France and Germany, teachers speak in India with a high measure of authority, and often avoid presenting conflicting views to students. Students should not be subjugated but should be encouraged to be democratic in learning. Teachers should motivate students to learn, because though it is

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

in the students' interest, when a teacher imposes something on students perforce, it results in an adverse psychological reaction in students.

As regards academic administrators, academic freedom would mean lack of control on academic institutions, and a free rein to do whatever they wish. It is true that academic freedom cannot be attained in the face of increasing public pressure, nor when the government keeps a strict control over academic activities, but then, some sort of regulation and direction are necessary. Hence a judicious balance between complete freedom on one hand, and complete control on the other, has to be achieved. Including evolutionary theory in Biology might offend a certain religious group, presenting labour theory of value might not be favoured by the businessmen, and an examination of labour corruptions would perhaps irritate the labour unions. But then, all these are facts, and absolute freedom is necessary for academic institutions to teach them. On the other hand, a certain academic institution would like to indoctrinate its members in Communism or would pursue some sort of study which would be considered as detrimental to the existing social values. Should there be no control over such activities ? The society at large and the Government must regulate education, if it has to be oriented towards the attainment of specified objectives. But wherever authority to control public education is vested in the local community, a larger perspective of viewing things is necessary. Such a local community can have a say in the educational policy of the institution, but

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

cannot entirely restrict the educational activities to the local needs only.

But academicians are right in advocating complete academic freedom when they have in their minds the political interference and pressure. And though professional autonomy of an educational institution is tied with financial support from the society, financial considerations should not limit academic freedom, especially in matters promoting overall human welfare, even though in the long run.

Thus, I conclude that in a developing country like India, absolute freedom in education is impossible to attain, but strict control over education would hamper the growth of progressive knowledge and human happiness. Hence, a judicious balance should be maintained between the two.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

DISCUSSION

S. P. Kumar

Individual liberty on the one hand and discipline on the other hand seem to be poles apart. How can discipline be inculcated in a student when he has been granted full freedom ?

Alok Misra

Learning and acquisition of knowledge are two different things. In learning a student should have freedom, but from the materialistic point of view, discipline is needed because only an educational institution with discipline can command recognition in society.

Vimalaji (A brief intervention)

A very interesting question is being discussed. One friend says that education is not merely acquiring information. It is learning and for learning a student should have freedom where to go for study and what subjects to take up ; there should be no compulsion. Then he turns to another aspect. When you have an institution, unless there is discipline or organisation of behaviour, education will not be possible. He says this from the materialistic point of view, and to elaborate this point another friend asks what measums are you going to take to bring about this discipline ? So here is a challenge to the constructive and creative approach of the youth.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

This is a participative enquiry. This is collective education. If we have not thought about something beforehand, let us take time over it. All of us will think together.

Education in the present context needs an institution. For example, take a university, with so many Colleges, Faculties with thousands of students, teachers and administrative staff. The teaching section, the administrative section, the students and the parents, all have to co-operate. It will be necessary to have understanding between these groups. That is the first form of discipline. So discipline is a pattern of psychological and physiological behaviour brought into existence collectively by mutual agreement.

This is the real meaning of the word discipline ; it is not imposed by one upon the other. Either the Government lay down rules or the teachers create certain unwritten conventions or the students out of their immaturity, not conforming to any patterns at all or conforming to certain patterns, may also create certain unwritten conventions. To-day there is no clarity as to what should be the form of this pattern of behaviour, what should be the texture of relationship. We have certain written rules ; I wonder if you have gone into the B. H. U. Act. When the B.H.U. was brought into existence what was the legislation ? What was the purpose, what were the expectations ?

It will be interesting for a student section to go into the evolution of disciplinarian form in the B.H.U. as a

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

sample survey, since its foundation up to 1972. In those forms of discipline, how far is the student free, how far is the teacher free ? Where are the democratic principles taken care of, where are they vitiated ? This could be the subject for a kind of seminar for you in future. A study on this point can be interesting. First of all what do we mean by democracy ? And if you take up the whole evolution in the manner suggested, then you can came to the actual suggestions. For your future discusion why not divide the subject into three parts viz. the code of conduct for the students, the teachers and the executive ? Their responsibilities are different and their sets of values, their priorities and code of conduct will be different. In relation to democracy how can these three function harmoniously, this is a subject for serious consideration.

राजीव रंजन सिंह

प्रजातन्त्र का अर्थ दो वर्गों का संघर्ष नहीं, बल्कि सामंजस्य है। अधिकारी और विद्यार्थी कोई दो वर्ग नहीं हैं कि एक शासक हो और दूसरा शासित। स्वतन्त्रता के साथ बन्धन की बात आ ही जाती है, क्योंकि जीवन में कुछ भी निरपेक्ष नहीं है। अनन्त ज्ञान को भी हमें सीमा के भीतर बाँधना ही पड़ेगा। जहाँ बहुतों के स्वार्थ निहित है, वहाँ उन में परस्पर संघर्ष न हो जाए, इस लिए कुछ नियम चाहिए। स्वतन्त्रता को पुख्ता बनाने के लिए ही वे नियम हैं। प्रजातन्त्र तो 'करने दो' (Let act) का सिद्धान्त है। किसी की स्वतन्त्रता हनित होती हो और कोई उसका हन्ता हो, ऐसे दो वर्ग तो प्रजातन्त्र में अभिप्रेत नहीं हैं।

4

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

S. N. Mahendra

How can the parents discover the latent qualities of the child? Are they competent to judge them?

Pradeep Kumar

It is not difficult to find them out if the parents and teachers are sensitive to the behaviour of the child.

Prof. V. S. Subbarao

My own observation is that it is not correct to say that children do not study if they are left free. I have seen that if the interest for reading and learning is created, children are more attracted by books rather than toys; it is not possible to stop them from reading.

Prof. Y. S R. K. Sarma

Our own constitution provides for a balance between freedom and control or authority. The relationship of the President with the Parliament is a beautiful example of the operation of authority, giving the maximum freedom. Freedom in democracy implies that a certain amount of self-control is involved; not authority imposed by someone, but authority imposed by an individual upon himself, by a community upon itself.

The students, teachers and the administration are constituent units of an educational institution like the three legs of a tripod; a balance among them is essential. The three should decide for themselves what freedom they want. It is lack of understanding between these three units that leads to troubles.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

EVENING SESSION

Vimalaji's Discourse

Look at the wording of today's topic. Words like Freedom, Authority, Education, Democracy. These four words by themselves need clarity of understanding and elaboration of their implication. They are very controversial words, each one of them, and we have to look at them, understand them, in relation to one another in such a short time. We cannot use words lightly and casually if we would like to go into deep methods of solving some problems; but we will look at them in a very brief way. What do we understand by the word Freedom? Is it a quality of the mind? Is it an attitude of the mind? Is it freedom against something, freedom from something? What are the implications of the term Freedom? It seems to me that freedom is a state of consciousness. It is the state of the total being. It is a state with an inner order.

I wonder if we understand the meaning of the term inner order, an inner sense of order. 'Orderliness' comes from the word order. Order is different from discipline. In the state of order, if I have it within me, my relationship with things, with people, with myself, my body, my mind, everything becomes organized in a scientific way, in a sane and balanced way without exercising any pressure upon myself. If there is a sense of an inner order,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

the behavior of that person will be orderly, scientifically systematic, without anyone asking him, forcing him, compelling him to behave in a particular way. Freedom is a state of comsciousness, a state of inner order in which a person moves without any inhibition, without any compulsion, without any force, but he moves spontaneously in such a manner that the life of other people with whom he has to live is not harmed or damaged or mutilated physically, mentally, or otherwise. It is a beautiful word, this FREEDOM. A person who has arrived at an understanding of his whole life knows when to do, what to do, how to do it.

So freedom is a state of inner order resulting in harmony in actual behavior. I say this, because the word is misunderstood. If I say freedom for me means to do anything in any way that I like; to express my whims, my wishes, my fads, my obsession, to behave in any way as I like it, as I feel it, or as I want it, surely this is not Freedom. It is licentiousness. It is an indication of inner disorder, inner disharmony. It is not freedom. A free person will not be a slave of anything inside his body, inside his mind, as well as anything outside. So freedom is related very closely with orderliness in one's own life, and that orderliness results in the behavior of that person becoming balanced, sane, healthy, harmonious with himself and with others. All this is included in the word freedom.

Then we come to the word authority. We will

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

have to distinguish the term authority from the term power- Human beings want to live together and share one another's life. That is exactly what we are doing. We share one another's life. Somebody produces the food, Somebody tills the land, somebody grows the crop, somebody processes, somebody sells and then we get from a shop things that we need. The food, the clothes, the shelter, all these are shared by us. Leave aside at present the fact that we purchase and that we give money. But if there were no farmers, no industrialists, no weavers, no spinners, you can't eat the money. The purchasing power contained in the money is related to the production by the producer, If there are no producers, money cannot buy a thing. So we do share life with one another—physically we share it, psychologically we share it If there were no language then we could not express ourselves; through words, through languages, we share life.

So human beings come together and want to live in a society and share life. There is a difference between the herds of animals and groups of birds and human society. We can't go back to authors like Rousseau and his social contract theory. There are many theories as to how human society was formed—occidental and oriental. But we can't go into them. I am just saying that the essence of human life consists in sharing. Poverty does not allow sharing; therefore it makes the person unhappy. If affluence cannot allow the sharing of life to take place, if money isola-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

tes, then again man is not happy. Unless man shares life, he is not happy. So political sharing, economic sharing, cultural sharing, there are ways and ways of sharing.

For sharing one needs management and arrangement of relationship. That is how human beings created the concept of society and vested some authority, gave power to those who were entrusted with managing the relationship, making the arrangement. Even in a family you have to make some arrangement. So some power, some authority, (we will discriminate between authority and power) is needed for arrangement. If there is no power invested in the mother or the father, even in a family, life cannot be conducted harmoniously for the benefit of all, for the welfare of all. So in society authority is invested in some group that manages, as in a University, in an educational institution. Authority is not an absolute value as freedom is. It is only a means. Investing power in a unit is a means to an end. Power is invested in the government. You accept the concept of state and you invest the government with power through legislature. So power is given by the people to those who exercise authority. Freedom is not given by anyone to anybody. Freedom is a state of life into which we have to grow. It is the ultimate fact of life. It is the ultimate, (not even a fact), reality of life. It is not created by man. We have to grow into freedom.

Nowhere in the world is man free today. In

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

democratic countries or socialist or communist countries, absolute freedom of man is not arrived at. The initiative of the individual, the individual liberty that you talked about this morning, is nowhere to be seen. How and why in democratic countries man is not free? What is the nature of the economic life that curtails his freedom, takes away chunk by chunk, piece by piece in every possible manner? How the political life also takes away the freedom and the initiative is a very sad story, If you go into the evolution of economic and political thought in Europe, America or in Asia, you will see the truth in this statement that man has not yet arrived at a political, eoonomic structure where the individual could be free to exercise his initiative, nor has the individual grown into an inner sense of responsibility, an inner order of life to be capable of exercising the freedom. These are the facts. Authority is not an absolute value as freedom is. It is a make-shift arrangement and is a means.

Now we come to the term education. I am pressed hard for time as we all are. I will go into it very briefly. Education through institutions, education in an organized way, education at home, education by the individual himself—these are all different things. Education does not begin with the institution, the school, it begins at home. It begins even before that. Unfortunately the family system is such and man handles his mind and body in such a way that children are not brought up in an atmosphere of

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

spontaneity, affection and love. The imposition, the force upon the children begins even before the child is five. We have taken up a very comprehensive subject. If a child is not educated properly before he is five, his mind gets twisted and is disordered in so many ways that after the age of five when he goes to school he cannot take advantage of the means and facilities given to him. The freedom of the child, the student, the pupil begins when the child is born. He has to be brought up in such a way that no unnecessary compulsions, coercions are exercised upon him. When parents neglect their children, beat their children, scold, intimidate them, all such children when they grow up and go to school, somehow their minds are stunted and benumbed and their sensitivity is stunted. And then they get into the habit of only doing things when they are forced to do, otherwise they don't act.

We do not find initiative in the people today, whether they are students, or teachers, or administrators. We do not find the initiative today in human beings in India or other countries. There are many factors, but please do remember that the most important factor is the habit of doing things under authoritarian manners, the habit of doing things under compulsion, when frightened or when tempted. Parents say if you do this you will get sweets, if you do this you will go to the cinema next week. There are so many ways in which the children are tempted, frightened or compelled. Those who are brought

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

under compulsion or fear shall never be free. This morning somebody was saying that there are libraries, they are open from morning till evening, but nobody reads there because there is no initiative. There are teachers and they have their classes and there are the students but there may not be initiative on the part of the teacher to impart knowledge. I do hope you see the significance of the point that the circumstances in which children are brought up determine their initiative. If violence is used, if force is used, fear is used, they do not become proper citizens of democracy. (We have to come to the word democracy a little later.)

They lose the capacity to educate themselves. Animals have to be tamed. You heve to take a staff in your hand and drive them, you have to guide them and regulate their movements. And today human beings—politically, economically have become dependent upon the authoritarian manner. They do not even feel humiliation in being told what to do or being compelled about what to do or not to do. They have lost the sensitivity, the initiative to do things on their own and in education, the major portion is assimilated through sensitivity. Much of education is absorbed and assimilated by the student through this sensitivity. So education will have to begin at home. And perhaps we will have to educate the parents first before we come to the students and teachers. The problem-parents of modern society will have to deal with themselves, the parents, the

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

teachers. Education of the child beings at the time of conception. The attitude of man and woman when they meet determines the quality of the child's consciousness to a great extent. This is one part of the subject, at home.

We come to the school or college. I think that in the primary schools and high schools, or higher secondary schools, as they are called, the minimum authority should be exercised, the authority for conducting an institution. Education has been institutionalized and for conducting an institution a certain amount of authority is necessary. They say that in ancient India education was imparted in a different way in Gurkuls, Ashrams or in the forest universities, where the pupils and the teachers used to live together, work together and share life with one another. The relationship was so very different. There was not the outer form of an institution. As soon as you think of an institution you need money, which means either begging money from the rich people or borrowing money from the government, or receiving grants. You need money, you need buildings, you need staff, you need furniture, you need servants. We cannot take them for granted as we take sunlight, air and water for granted. All these things have to be created.

Institutionalized education curtails the freedom of the teacher and the student. This is the first point that has to be taken into consideration. It is nice to

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

come to this campus. But think of those who had to take their hats around all over India, begging money for building these magnificent buildings. I wonder how hard they must have worked. You need technicians, you need workers, all these have to be put together by human beings. When you accept the idea of education through institutions you need all these things and that means accepting limitations on the freedom of the individual, of the students and teachers together. Those who do not accept these limitations of freedom, cannot go to institutions because something has already been created there by others. So one is with all humility, under the obligation of those who have created the institution.

We must understand this and then we can appreciate what could be done to bring about more and more freedom. The second factor which limits the freedom of the student and the teacher is the size of the institution, just imagine twelve thousand students in a university, six thousand on a campus. It becomes a society, it becomes a community with all the instricacies of economic relations. When thousands come together, the political brain begins to function. The desire for power, the lust for power, the desire for domination, social recognition, all these come into play. The larger the size of the unit the more the scope for power-mongers to come to the lime-light, So the size of the institution is the second factor that limits freedom and in India we cannot have smaller size. The numbers are going to increase.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

The larger the number, the lesser the scope for democratic values to be effective.

When you have such a big number living intimately in so many hostels, so many boarding houses, so many faculties, what happens is that you need the educating authorities, the executive councils, the senate, and the representatives from the teachers, from the students in them. And if the political instinct begins to function there, then the atmosphere of an educational institution is vitiated by the political approach. The moment you have the desire and the ambition to exercise power over other human beings, you use the political approach—the elections, the campaigning, buying the votes, frightening the voters, using the elements that can frighten others, the goondas, all these come into play. The teachers might use, the students might use, the authorities might use, we don't know who will use them. And in a vast country like this, in big institutions, students and teachers come from all over India. they will belong to different languages, they will belong to different states, different religions. Unfortunately, we have not outgrown the tribal tendency of feeling superior to one another in the name of religion, in the name of language, in the name of states, So we will divide outselves into groups; all this happens in big institutions, not only in Banaras, everywhere. So with the political approaches, we look at the educational problems. That curtails the freedom. Not that the stud-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ents are bad or the teachers or the authorities are bad, but the political approach divides the teachers, the students, the authorities into different classes. The political approach develops a class mind.

An educational institution needs all these groups—the staff, the executive, the students, the servants, but they are not different classes with contradictory or mutually exclusive self-interests like the trade unions, the labour-class and the owner, the businessman, the industrialist. In fact, in reality, their interests also are not conflicting, but take for example, the relationship between the teachers and the students. It cannot be based on class-conflicts, class-war, class-hatred, But the political approach reduces the atmosphere of the educational institutions to class-consciousness, caste-consciousness, language.consciousness. Those who feel concerned about an atmospheere of freedom in an educational institution, whether they are students or whether they are teachers, will have to resolve, decide, and determine that the institution will be purged of such approaches. Unless an atmosphere congenial to education is awakened in the institution, nothing can be done.

We will come to the Constitution—the rights of the students, of the teachers, and if those rights are not given to them how they can obtain freedom to exercise them. All that can come. But these extraneous factors have got to be eliminated first: And it is very vitally necessary that when we

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

talk about democracy, when we talk about education, and questions like freedom and authority, we should not neglect tnis. And here, sitting on the campus of Benares University, you and I know or might have watched this (at least I have watched the happenings in this university for not less than seventcen to eightcen years from a distance). As a lover of education, I have been watching and also because of my special feeling for this university. The factors I have mentioned upto now, have vitiated the atmosphere. And I do think something constructive will have to be done by the majority, that is the students, to eliminate these factors and purge the atmosphere, create the atmosphere congenial for education. The attitudes and approaches of the executive authorities, the teachers, and the pupils, unless those attitudes and approaches are disinfected, unless they are purged, we can't talk of authority and freedom in relation to education.

I am yearning to see students at the universities coming together and finding ways and means of saying that these teachers, these administrators, or be it the students, will not be allowed to contaminate, pollute and poison the atmosphere. It has many implications, the students and the teachers together will have to decide and determine that no political leaders and no political institutions will ever exploit the facilities given for education. No political leaders or organizations and individuals will exploit the student's unions, the teachers' unions, If we feel concerned about the

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

situation, this will have to be done. Not that the teachers and students will not have political leanings, that they will not be able to discuss them freely. But the interest of the teachers, the administrators, thc students are the same viz, promoting education through growing together, by sharing together the money, the privileges given to them by the whole country, the whole society. So, unless the unity of interest is felt by these three sections, I do not think there can be any education. There will be beautiful buildings, and beautiful laboratories, and magnificent libraries, and most highly paid teachers and highly competent individuals, and most magnificent and charming young people, all these things will be co-existant side by side. There cannot be any relationseip as the other approaches become overwhelming and predominat, So I say that education needs an atmosphere that has to be created. And that is not existent today, one doesn't find it anywhere. Why? Who is responsible for it, is a different issue. I cannot go into it.

We come to democracy, because the word has been used here. Somebody talked about the modern age, somebody talked about democracy, importance of democratic methods, conventions, traditions. And I think all of you meant democracy based on party system, Parliamentary democracy must have been the implication of your discussion. Now 'goverment of the people, for the people, by the people', i, e, administration of the educational institution with the consent of the pupils and the teachers, that is how we

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

will have to translate democracy in the context of education.

My first suggestion would be that when the students enter the univeriities in the first year, it should be the responsibility of the authorities to assemble the students together, give them information through the senior students. There can be an assembly going on for seven days, where the senior students and the members of the staff give talks on the constitution, the conventions, the traditions of the university, the present atmosphere, so that the students become conversant with at least the Constitution. They will become aware of their rights, the responsibilites, the privileges; all that can be given to them as a hand-out. They have to become acquainted with this theoretically. There should be in the very beginning of the session a huge assembly of students. They must be acquainted with the written constitution and the unwritten conventions and traditions. They will thereby become very much aware of their responsibilities, their privileges, their rights and also the rights and privileges and responsibilities of the teachers, and so on. All this can be done as an educational process; I don't konw if any university ever gives this acquaintance, not leaving the students to discover it for themselves. Either this can be taken up by the studets' union, or it can be taken up by the teachers' union, or it can be an official activity of the university. The students will feel that they have been taken into confidence, they will feel that they

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

have come into a family, a community, with a sense of belonging. So no student will ever get a chance of saying to himself 'I don't know what it is'.

The second thing would be that after or even within the proceedings of the assembly, it would be good if the students could acquaint themselves or the teachers could acquaint the students with the desirable ways and means, methods and techniques of bringing about changes in the existing ways of teaching, in curriculum and other matters. They must be given an orientation for bringing about changes in curriculum, in methods of teaching, for stopping unwanted elements from getting into the staff and so on. All these changes are to be brought about. How are the students entitled to express their opinions? How will their voice be heard? What are the peaceful methods? How can they exercise a non-violent coercion? Bringing about changes in the ways of education, in the methods and techniques of education is not to be done with political methods. If the pressure-techniques used in political life, economic life are used in the educational sphere, either by the teachers, or if the authorities use the same authoritarian ways of the police, the army, the frightening, the taking of one group into confidence against another, they are going to spoil the atmosphere of education. And if the students also use agitation, demonstration, violence, the smashing of buildings what will happen? All this is common national property. It doesn't belong to the Vice-Chancellor or any autho-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

rity. This is national property. The money of the poor people, the rich people, has gone into all this.

I am not talking specifically of Banaras; before me are many universities, where individuals can be burned alive, whether it is a headmaster or a vice-chancellor or a student; children can be shot down on the premises. Whether it is Banaras or Calcutta or Bengalore University, it is just the same. For me, all these places are like rooms in a big house, in a big family, the Indian community. So an orientation is needed; the students must know, they must be introduced to the desirable ways and means, methods and techniques of expressing their discontent. The youth is bound to be robust, bound to be impatient, bound to be overactive, bound to be restless, this is the glory of youth. So, I think if that is done, then the teachers and the students can settle down in a relaxed atmosphere to learn. I am using the word 'learn' because the teachers have to learn as much as the students do. If the teachers feel they are teaching here, they are the superior clan, and if they don't grow with the students, I think they will become stale in no time. And the impatience and arrogance of youth will ignore them and become indifferent. It does not mean indifference to the human being, but they will become indifferent to the staleness. They will start humiliating, jeering, laughing, insulting. So the impatience of the youth and the slowness, sluggishness of the elders, will clash. As it happens in the home, so it might also happen in the educational institutions. So

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

I feel that this orientation and a psychological relaxation is absolutely necessary. We must be very clear in our minds about what to do and how to do it.

Some speakers here have brought up the topic of freedom to choose the subject of study. I think that is a matter between the parents and the children. I say parents and the children, but the third looming factor is there, the economic life. Many times the boys and the girls do not want to study a subject but that subject brings a lucrative job, so they take it up, not because they are interested in it, but the economic compulsions determine so much. So I do not think that can be really taken up as a matter to be discussed here. The lack of co-ordination between the economic planning of the country and the educational planning of the country creates such problems. But we cannot deal with all the aspects of a problem. If you had taken up the topic only of freedom in education, then it would have been a different matter. We have taken up a very vast and comprehensive subject viz. freedom and authority in education with reference to democracy. That institutions should be democratic, there are no two opinions about it.

Democracy implies the awareness on the part of the members, a sense of responsibility among the people, and the capacity to fulfil the responsibility and to express their discontent. All this is included in the spirit of democracy. So if there are any clauses in the Constitution, if there are any patterns

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

of behaviour in the unwritten traditions and conventions which are against this spirit, I do think that the students have every right to express their disagreement, their discontent, express it verbally, write about it, come together on that issue, and organize an opinion in a decent way, organlze it in such a way that the authorities can no more ignore it or neglect it.

If I have been able to analyze for you the term freedom, the significance and the implications of the word authority, education and democracy, I will feel satisfied. I come now to the last point. A person who has not arrived at an understanding of himself, a person who has not arrived at an understanding of his mind, understanding of what he wants to do in life, who has not arrived at an inner harmony and inner discipline can never be a capable member of any democratic unit. I wonder if you appreciate the grave implications of this. Those who have no inner control, inner discipline in their own life, cannot bring it about in the lives of other people. So for enjoying freedom, one must grow into an inner order. What do I mean by inner order? I come to a college, a university, a school, an institution, I must find out whether I want to join, I must find out all about that institution, what kind of staff works there and if I decide to join then I become a responsible member. I had mentioned responsibility, the psychology of responsibility and the psychology of helplessness. If I join an institution. I

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

join it voluntarily. I become a responsible member and I have to feel responsible for everything that happens there.

I am not talking about students, I am implying the same thing about the teachers. And how many teachers and how many students know about what is going on in the campus? I know the teachers will say—"We have so much to do, so much to read, so many classes to take, we have no time". As if they are paid only for taking those classes, and not for looking after the health of the whole atmosphere. As if they are not there for the welfare of the whole institution. The job of teaching is not like any other economic profession. But who is careful about this? There will be very few teachers who take the trouble of keeping themselves informed about the trends, the explicit and implicit trends prevalent in the students. But the teachers are content: "I have a job, I am a Lecturer, how will I become a Reader? I am a Reader, how will I become a Professor? I am a Professor, how will I become a Dean? How can I please the Vice-Chancellor, how can I do this, how can I do that? I must find out the powerful groups, get into touch with them, have some liason." They are so much worried with climbing of ladder of power there. That becomes very much important, not the institution. And the students come, they also have their group interests. So I do feel that democracy cannot function in the atmosphere of universal indifference to the welfare of the collective. This is the malady today.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

You will be surprised, I won't mention the name of the university, but I was with very responsible people. There might have been at least twenty—five Principals of different colleges, Deans of the faculties and so on. And we were talking about corruption in the universities. Corruption was an issue taken up by the teachers themselves. And when I gave a talk, one after another said—"Who do you talk about moral values to us ? The political leaders are corrupt, so are the industrialists, and the businessmen, and you want the teachers to have integrity, and you want them to have values and you talk about all this to us ?" So they were comparing themselves with the businessmen, the industrialists as if teaching is a profession. They don't feel that "for a livelihood we have to take up a job; we have taken it up, but we are handling the human consciousness. We are moulding the trends of nations". They don't feel responsible. And students don't feel grateful that they have been given the opportunity and the facilities. They have not done a thing to create the whole institution. All the facilities are given to them. So students don't feel grateful, and the teachers don't feel responsible. That is why democracy doesn't function.

When it comes to some self-interest, then we talk about democracy, the teachers will talk about it, the students will talk about it, perhaps the authorities will talk about it. So I say (it may displease you all) with all the humility at my command that nobody loves

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

democracy. If the place is dirty it is the other fellow's responsibility. We make the places dirty. The beautiful buildings, we make them dirty. We smash the windows, we pollute the atmosphere, the teachers and the students togethers. In one place when I visited the staff-room. where the teachers meet and sit down, the dirt, the squalor there! Not to talk about the students' rooms. There is no inner order, nobody feels responsible. The language that is used, the activities that are indulged in, all these things make democracy. Democracy is not in the paper. You might write beautiful values, and order of priorities, you might write all the rules and regulations in the most wonderful way. And yet, if the individual is chaotic, if there is emotional chaos and intellectual anarchy in him, if he is a slave of habits, that paper democracy cannot come to life itself. You and I have to bring it about. So my dear friends, it is a very big problem. In India, on the national level, the paper democracy has to be brought to life and within the universities also the context for democracy has to be created.

So I am with you when you talk about resistance to injustice, to pressures. As one friend has said, education cannot be given if pressures are exercised, I fully agree. Someone said that the qualities of the students, the younger generation do not get an opportunity to be expressed; they must be given the scope. I am with you. But I would emphasize the point of this inner discipline and order, the importance of using the facilities given to us properly with grate-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

fulness, with a sense of responsibility. And I am sad at heart. This applies to all the teachers, the students, the servants. Universities are like the old landlords and the feudal elements. Excuse me, the students indulging in academic, theoretical discussions, the teachers having their salaries compared to the poverty and starvation outside! They have all the security whether they teach in the class or don't. If there is a strike and the University is closed for two months, will anyone feel guilty for drawing the salary? Nobody will feel it. Will the students feel sad if they have not studied and fail in the examination? They'll find out some reason of the failure and dump it. The teachers will dump. They won't feel responsible, they will dump all the responsibility on the students, and the students will try to dump it on the teachers. That's how we live very shoddily, and then you can imagine the sorrow and sadness at the heart of a person who is not attached to any university. I have no interest and I have no ambition about universities. I am not economically, financially related to any universities. But it pains me very much.

So talk about freedom becomes meaningful when we become responsible. Democracy needs a people. not a mass of human beings. India has not arrived at democracy becouse for twenty five years nobody bothered to create a people out of a mass of human beings. In the same way democratic forms have been prepared for universities and yet the spirit of demo-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

cracy is not there. The employee and employer relationship is there.

So you and I have to work a lot. I do not know if at all young people feel a great concern. All that you and I have been talking about to-day is very serious. Much work can be done upon it systematically in a decent peaceful way, not taking a vow of non-violence, (I am not saying all this) but in a way harmonious with the end and purpose of education. Such ways can be discovered. The atmosphere can be purged of contaminating factors and then constitutionally if there are any barriers they can be removed. But the barriers are not constitutional; the barriers are related to the human element. The human element has become very poor. It is the behaviour of the authorities, the teachers and the students—our behaviour, our approaches, our attitudes—that have become corrupt. And nobody can eliminate that corruption by any law, by any rules and regulations. Perhaps there will be a small group who will first be responsible, talk about it, others will laugh at them. Those who are interested in keeping some fermentation going on in institutions will create difficulties. But if a constructive approach and attitude is set in motion, then the chain reaction of a constructive approach will take us very far.

I am happy that those who have attended in the morning did come to the evening session after having studied the whole day. I do hope that when we meet tomorrow for the next issue, we will exert ourselves

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

as we have done today. As you must be feeling, we cannot do justice to such comprehenssive issues in an hour and a half. If we had taken up only one topic for five days, then we could have gone into all the details. But if we get a rough idea and if we feel inspired to take up these themes, to go into elaborate thinking and deeper contemplation about them, the purpose of this seminar will have been fulfilled.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

SELF-REALISATION

Sunday, 19th March, 1972.

10 A.M. and 5.30 P.M.

Morning Session

Number of Papers—Five

1. Sri Harikesh Bahadur—M. Sc. Prev. (Chem. Eng.)
2. Sri Debojit Bora—I Yr. I. T.
3. Sri S. K. Kak—Research, Electronics.
4. Sri S. M. Agarwal—M. Sc. Final, Elect. Eng.
5. श्री श्रीकान्त तिवारी—हिन्दी विभाग में शोध छात्र

Evening Session

Participants in Discussion

Rajiv Ranjan Singh, Mahendra B. Gabhawala, S. K. Kak, Chacko Valiaveetil, M. J. Ramiah, Prof. Y. S. R. K. Sarma.

Vimalaji's Discourse

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Highlights

To be religious is to understand directly what one is, the nature of the physical and the psychological and that which is beyond them.

× × ×

Truth and Love are the ultimate realities for which the word 'self' is used in self-realisation ; it does not imply ego or I-consciousness.

× × ×

The crisis of ignorance is in the human psyche; the darkness of ignorance has to be dispelled from there.

× × ×

Sensitivity is a dimension of life; one has to grow into it. Self-realisation begins there.

× × ×

There is a romance of inner life, an adventure of inner space.

× × ×

The individual is not free to move unless he comes face to face with the slavery in which we live, the slavery of patterns of behaviour.

× × ×

Enquiry is a dimension of consciousness and a true and genuine enquirer is never lonely.

× × ×

There is nothing stronger in this world than humility and receptivity.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper I *Harikesh Bahadur*

ABSTRACT

The best achievement in man's life is the knowledge of the significance and the sovereignty of his soul. One who recognizes the Supremacy of his soul, does not require to get or to know anything else because the knowledge of the existence of the soul; which in other words, can be said as self-realization, is the prime acquisition for self-satisfaction and one who reaches such a level of contentment, does not need any worldly thing. But the knowledge of the soul can be achieved only when a person is fully dedicated to Truth. Truth followed by other virtues, is the only means for self realization.

Self-realisation is not an ordinary but a very profound and philosophical theme of human life. A man achieves the main object of his life when he becomes able to understand himself. The paramountcy and greatness of self-realization cannot be understood by a prejudiced and untruthful man. Only a very just, fair and prudent person can know in real sense what self-realization is.

Truth is a great virtue and power which becomes a medium for knowing self-existence. Therefore a person is required to follow truth to achieve the goal of self-realisation. Truth is not only the base of religion but it is such a practicable instrument which helps a man in making his life smooth, vivid and useful. A life becomes meaningless in absence of truth and one cannot

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

understand himself without recognising the value and significance of Truth. The best way to realise the self is to follow truth honestly. A life which is devotedly dedicated for Truth aad justice is a real life and a person who leads such a life is the only person who can understand himself and the existence of his soul.

Self-realization means to understand himself by recognising the existence, status and sovereignty of the soul. This understanding is the actual means to reach the goal of life. Spiritual development in one's personality puts him to a level of self-realization where he can get full satisfaction which is required for the highest happiness of life. Satisfaction is a wealth of thc greatest and the highest importance and when that is fully obtained, nothing remains to be got to make life prosperous and happier.

There are a few very great virtues which raise the human life to a very significant level when they are present in one's personality along with Truth. When Lord Rama was going to fight against Ravana, Vibhishana advised Rama to go with a strong chariot, otherwise it would be difficult for him to win Ravana, who was a very powerful demon. But Lord Rama, after listening to Vibhishan's advice, replied very submissively with confidence and he dealt with those virtues of highest magnitude which provide one with a stronger chariot than any other type of chariot. Those virtues and other requirements which were described by him are Truth, amiability, vigour, prudence, self control, helping nature, sense of clemency and tolerance, mercy, sense of equality,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

meditation of God, renunciation, satisfaction, donation with charity, sharpness of brain, knewledge of illuminative science, valour, patience clean and undeviating heart, penance and worship of the teacher. By assembling and inculcating these virtues together in the personality one can get the strongest chariot with tremendous power and can become an invincible force in the world. Only the persons with aforesaid virtues can know the supremacy of soul and consequently reach to the destination of self-realisation.

The person who understands the gravity of soul, his life becomes a life of devotion and dedication. He does work without any desire of gain and self-interest and such a life can be said to be a real life. The person who leads such a life involves himself in the service of mankind. The peopie who are in distress and adversity require our help but unless we have a sense of charity and mercy for suffering people, we cannot help them. If a man is really interested in the service of the poor and suffering humanity, he should leave corporal affection for his own body. If he does not follow :—

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णानि नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।"

he cannot work for oppressed people but his idea can be inculcated only when a person realises himself and understands the paramountcy of his soul.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Renunciation is the key of self-realisation. If a person himself gets cowed down by worldly things, he cannot be successful in achieving the highest goal of life that is self-realisation. If anybody runs hehind the attractive materials of the delusive world, he will never be able to understand the truth and reality of soul because the endless desires to get the worldly things ultimately lead a person to a dangerous disaster and consequently to the grave. we can ensily understand this fact from these lines of Gita :—

"ध्यायतो विषयान् पुंसः संङ्गस्तेषूपजायते ।
सङ्गात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ।।
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ।।"

Dr. Radhakrishanan has written in Bhagavad Gita that the truth of the Soul can be understood by only those persons who prepare themselves to grasp that by following the hardest rules of discipline. We have to keep our hearts entirely away from all types of deflections which generally occur towards the beauty of this deceptive world. Dedicated, sincere, honest and sustained efforts to remove the misery of mankind without any desire of self-interest, are the means to rise to the highest level of satisfaction where it is very easy to realize the existence of soul. Lord Buddha, Jesus Christ and Mahatma Gandhi did the same thing and they reached a stage where they recognised the beauty of the soul and therefore it can be said very easily that self-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

realization is possible only by inculcating the supreme human virtues in ourselves. Having achieved the knowledge of reality of world, soul and self, Lord Buddha said : 'There is no fire like passion, no shark like hatred. no snare like folly and no torrent like greed.' In fact if we keep ourselves away from those evils definitely we can realize ourselves.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper II *-Debojit Bora*

ABSTRACT

Man is a rational animal. This rational superiority of man underlies his 'self' which manifests ever-luminous effulgence of Truth, Beauty and Virtue. Wisdom is the sole gate-way to realize this self. In ancient times students attained their self-realization through devoted enterprise of learning under 'gurus', but today's socio-political climate does not allow anyone to pursue such contemplative devotion for self-realization. In modern terms it would mean to attain the true and pure self that one realizes by actualization of latent faculties and potentialities that one possesses. Every human being is endowed with certain faculties which lie, at first, dormant in his mental constitution, but, he can, through interaction with environment and self-realization articulate the innate capacities for creative purposes.

Student life is the preparatory period for the establishment of an ensured future-life. That is why it is a crucial moment for a young-man to unfold his latent talent and thus indentify himself with his true 'Self'. Failing to do so, man (albeit he fulfils his material needs), is still unquenched in a respect which vitally affects his conscience and this results in frustration and perplexity.

In a human mind there is a conflict between his true egoless mind and the illusory ego-mind. The latter contracts the mind to oneself, while the former abstains from such selfish motives and believes in 'We-ness' or universality rather than 'I-ness' or individuality. Only through self-realization can one attain such a noble and solemn stage of perfection. Thus it brings the subjugation of the ego-mind by egoless

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

mind and predominance of universality over individuality.

Now to realize our actual self we need not extend ourselves to any distance, but, rather come close to our own supreme innerself and realize its formless effulgence of perfection.

Aristotle's ageless definition that 'Man is a rational animal', itself indicates the superiority of the human being over all other living creatures. This rational superiority of man underlies what is called 'Self', the unique individuality. According to Indian philosophy, the individual self is a real portion and a limited manifestation of God. Thus this 'self' in its pure and true condition manifests ever-luminous effulgence of Truth, Beauty and Virtue.

Now the question that arises is how may the human agent realize this true and pure self? The sole gate-way to attain or realize 'self' is Wisdom. Like Socrates and Plato, the Greek philosophers, our ancient Indian seers and saints also pointed out the same path and even showed it practically through their life. Indeed, self-realization was the goal for which they dedicated themselves to the severe pursuit of wisdom. During that period the disciples under the able guidance of their 'gurus' attained their self-realization through practical meditation. Consequently, there prevailed social peace and intellectual progress. Of course, such contemplative devotion for the realization of one's true self does not count much in today's student-community. The socio-political climate and the prevailing environment

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

of to-day has created an entirely different atmosphere for realizing the 'self'.

I will discuss the subject in a more modern sense. What self-realization ordinarily means is the actualization of potentialities. In fact, every human being is endowed with certain faculties, which lie, at first, dormant in his mental constitution, but when it is given the necessary circumstances and required facilities, he can, through interaction with his environment, articulate the innate capacities for creative purposes. Therefore, the development of his personality is his progress towards the attainment of self-realization.

Student-life is the preparatory period for the establishment of an ensured future life ; what he does to-day will determine the status of the 'him' tomorrow. Therefore, the future depends upon how he gradually actualizes and unfolds his latent talents.

Whenever a person becomes conscious of his unique individuality, then whatever he does or feels is concerned with his individual self. In fact, it is the consciousness which is responsible for shaping the total personality of a man. Everytime he tries to transcend himself by indulging in the mad rush in different kinds of activities, he forgets to realize the presence of other individuals. This self-exaltation makes him unable to realize and understand the path of self-realization and thus he fails to see the self in true nature. Again, there are occasions when he only finds fault with others and thinks the associated environment to be contrary to his suitability.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Consequently he suffers from discontent and unhappiness ending in frustration and perplexity. Really speaking, many instances of such character happen to create psychological agitation in our mind and then we are tempted to exclaim "Oh ! life is tasteless and a monotonous journey !" We grumble over ourselves in utter helplessness. The cause of all this dissatisfaction and dis-order is a maladjustment of our small 'I-ness' with the greater 'We-ness' and the given circumstances. The lack of neutrality in judging our 'self' and others as related to us results in the chaos of mind.

Till now I have only been speaking negatively. Positively speaking a number of questions arise such as— (1) How to understand the self in its true nature ? (2) What is the best adjustment of such a 'self' with the temporal life and above all (3) how to realize or obtain the self ?

Now, before going in search of the solution of these preblems we have to first consider what is called 'egoism', which is the distinguishing characteristic of human personality and the greatest hindrance in the way of self-realization. Too much of engrossment with sensual desires and material fulfilment in disregard of selfless dedicative action, produces the ego-self in mind. It tries to contract the mind to 'oneself' or a single fleshy body. But, when through the development of proper understanding he realizes the true nature of the self, then the self is freed and understood and becomes the egoless self. This egoless self keeps itself aloof from selfish determinations. It is only the symbol of non-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

material or spiritual pursuit for attaining peace of heart. It can be called a plan, which has gradually shaped itself into an organic unity. Now if a man mistakes the lower egoistic self to be the true self, then he fails to understand himself and although he can fulfil his material needs he still finds himself unquenched in a respect which vitally affects his conscience. His lower egoistic self dominates over the true, noble and higher egoless self. Consequently, this results in frustration and perplexity.

Self-realization is the ultimate goal of human life. Self-discipline and proper knowledge about the self is the first step towards self-realization. The individual sinks down in sorrow and grief so long as he believes that his body is his self, no matter how knowledgeable he might be. But as soon as he realizes that he is one with the self, his grief ceases. Therefore, we can never realize the essence of our true self unless we completely forget about our temporal existence and distinguish between the bodily and true 'selves'. Here we can quote a few lines from the great poet Galib.

> Every drop of water can proclaim
> "I am the ocean".

> True, when one completely surrenders to another,
> One's identity gets merged in the others.

Therefore, before we try to realize the true 'self' we have to sursender our smaller 'I-ness' or individuality. This will bring the subjugation of the lower ego by the higher

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

egoless self and predominance of universality over individuality.

Thinking ourselves to be a speck of dust in the infinite multitude we ought to judge and realize ourselves first and then try to mix up with other souls in harmony. It is imperative for the self not to find any fault in others and that is why we need to be tolerant and patient. It is characteristic of the true self to rest content with little in hand. Unquenchable thirst for more and more of anything is a sign of a selfishness of the self.

The important thing in our life is, how to make the best use of our stay here, and not trying to ignore or escape from it. But to make the best use of our life the self should be pure and true and free from all the limiting conditions of mind like impatience, anger, selfishness, restlessness and all types of temptations and false beliefs, because a cup is useful only when it is empty.

We must be able to resist our outward temptations and realize the inward purity of the self. Indeed it is the inward purity of thoughts that decides our actions and guides every step of our life.

Now mere study and realization of self would give us no satisfaction unless our intelletual understanding is materialized in concrete experience of life. Then only we shall be able to reveal the pure illuminated 'self', the realization of which is the question at present. Self-realization demands a dynamic and broad-minded character and an active way of life. It implies the

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

actualization of all potentialities, whether in the form of profound reflection or active participation in the affairs going around us. Now the question that arises is where to find such a true, pure and higher self ? It is easy, because, such a self is already within us. It is the inner-most core of our heart, the heart of our heart. What one has to do to realize it, is to look within and concentrate one's whole attention upon it. Realizing self means realizing Truth and Beauty in our life. And the beauty of self lies in its inward purity, not in outward dccoration.

In conclusion I would like to emphasise upon the point that if Aristotle's ageless definition of man is not to lose its significance, we have to embark on our 'self-realization' as if it were a 'categorical imperative' of our very rational nature. And in this we the students have the greatest role to play.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper III *S. K. Kak*

ABSTRACT

What is Self ? An attempt at its definition. Realisation of the necesity of faith in self. Effect of knowledge of Self on human behaviour. Answering of questions on self in the quest of self-knowledge; Such as what I am ?, Why I am ?, Why I am, what I am? Definition of realization of self and difference of the same with self-realisation. Relation of the self with the universe. Answering the critics of self-realization. Negation of Individualism and explanation of social cohesion on the basis self-realisation.

[The text of this paper was not submitted; it was an extempore speech. — Editor]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper IV *S. M. Agrawal*

ABSTRACT

"Who am I" ? "Why do I exist" ?. and "What is my relationship to the objective world that I face everyday" ?, these are a few pertinent questions that lead us to self-enquiry.

If we go for self-realisation we can get some satisfaction with respect to these questions.

When trying to get at the facts of a situation I should think that I am collecting this information not only for myself, but for every other person. This helps me to take a cold, impartial view of the evidence just to see the facts in a clear, objective manner.

In the words of Rudyard Kipling, "I keep six honest serving men (they taught me all I know), their names are-What, Why, When, How, Where and Who."

Almost every one at some time or the other, has experienced a desire to know more about himself. "Who am I" ? "Why do I exist" ? and "What is my relationship to this objective world that I face every-day?" Before speaking about "self-realization" I would like to say some-thing about "Antahkarana" (अन्तःकरण).

According to Indian Psychologists, it is the mind that reaches out to the objective world through the sense-organs and nervous system, drawing its sensation and impression through them and unifying the experiences gathered into co-herent information or knowledge.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

The word "*Mind*" corresponds to the Vedantic word "Antahkarana" (it means inner instrument) which has four aspects :—

(1) **Manas** :—The oscillating or indecisive faculty, the Mind.

(2) **Buddhi** :—The decisive state which determines that "this is a tree, not a man."

(3) **Ahankara** :—The state which ascertains that "I Know".

(4) **Chitta** :—The store-house of mental states which makes remembrance acd reference possible. We can call this the Mind stuff.

According to Hindu Psychology (Vedanta) Antaḥkaraṇa stands between the self and the object and receives the objects of perception.

Antaḥkaraṇa is the inner instrument through which the subject knows the object by identification, but it is not the self.

Self is consciousness and not the product of the relationship between subject and object. Self or Atma is called Sakshi (साक्षी) the unchangeable reality. It remains only as a witness. Mind gets its power by association with the self or Ātmā, which is the same as the Absolute.

Hindu Psychologists conceive the internal instrument for perception as the *Indriya*, which is independent of the outer sense-organs and nervous system although it

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

operates through them. The Indriya is not the mind though the mind uses it as an implement.

Mr. Rudyard Kipling suggested a formula to analyse anything, which is "I keep six honest serving men (They taught me all I know). Their names are what, why, when, how, where and who".

One should accept whatever comes from life as its grace, which gives contentment, peace and complete freedom from worry. I would also like to say that man is only an instrument in the scheme of God for the universe, and so he should surrender himself to God, and not be worried or disturbed by anything.

And forgetting our own existence also helps us in not getting attracted towards worldly things. So one should maintain his independence as a human being and have the strength to be fearless.

Religion consists fundamentally in serving others whenever one gets a chance to do so. in not doing any harm to others, not acquiring anything at the cost of others and if necessary, in suffering harm or loss one-self in order to prevent others from suffering loss or harm. I would like to say that this can be practised only if one becomes fearless, and one cannot become fearless and cannot serve others unless one is self-reliant and is not dependent on any human being or circumstances so far as one's actions in pursuit of Truth are concerned.

And even if you are not a religious person by nature or training, even if you don't believe in prayer, in practi-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

cal life prayer can help you much more than you believe. Prayer fulfils these three basic psychological needs which all people have, whether they believe in God or not :—

(1) Prayer helps us to put into words exactly what is troubling us. We see that it is almost impossible to deal with a problem while it remains vague and nebulous. Praying in a way, is very much like writing our problems down on paper.

(2) Prayer gives us a sense of sharing our burdens, of not being alone. Few of us are so strong that we can bear our heaviest burdens, our most agonizing troubles all by ourselves. Sometimes our worries are such that we cannot discuss them even with our closest relatives or friends; then prayer is the answer. According to psychologists when we are spent up and tense and in agony, it is therapuetically good to tell someone about our troubles. When we cannot tell anyone else, we can always tell God.

(3) Prayer puts into force an active principle of doing. It's thc first step towards action. I doubt if anyone can pray for some fulfilment day after day, without benefiting from it.

In Gandhi's words—"Prayer is the most powerful form of energy one can generate". So why not make use of it ?

And if some-body tries to make his future with evil means, I would only say that future is to-day, there is no to-morrow. Does it mean that we should not make any

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

effort to prepare for to-morrow ? Not at all, But the best possible way to prepare for to-morrow is to concentrate with all your intelligence, all your enthusiasm, on doing to-day's work superbly to-day; that is the only possible way you can prepare for the future.

One should surrender oneself to God and should accept whatever comes from life as His grace, as is said in the Gita—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

That is the way to self-realisation.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निबन्ध सं० ५ श्री कान्त तिवारी

सारांश

आत्म-साक्षात्कार की परिभाषा, उसके साधन की आवश्यकता, उससे ही कल्याण, उसके बाधक एवं साधक तत्त्व, आत्मानुभूति, उपसंहार।

गीता में आत्मसाक्षात्कार साधन के उस काल को कहा गया है, जिस काल में मन न तो इन्द्रियों के भोगों में आसक्त होता है, न कर्मों में। वह सभी संकल्पों का त्याग कर देता है। उस अवस्था में सुख-दुःखादि तथा मान-अपमान में उसके अन्त-करण की वृत्तियाँ शान्त रहती हैं। वह व्यक्ति स्वयं को आत्मरूप से सब प्राणियों में देखता है।

मनुष्यमात्र की सभी इच्छायें दो प्रकार की होती हैं—श्रेयमूलक तथा प्रेयमूलक। किन्तु ये दोनों विपरीत जाने वाले मार्ग हैं। एक का चयन आवश्यक है। श्रेय का चयन शुद्ध चित्त से ही हो सकता है।

आज बालक-युवा-वृद्ध सभी कुण्ठा-ग्रस्त हैं। सभी में इतना अधिक असन्तोष है कि कितनी भी सुख-सामग्री जुटा लें, सुख का अनुभव नहीं होता और वह अबूझ कुण्ठा बहुत बार आत्महत्या तक का रूप लिया करती है। इस असन्तोष एवं निराशा का मूल कारण आत्मचिन्तन का अभाव है। आत्मचिन्तन से ही यह बोध होता है कि वास्तव में जिसे पाने के लिये मनुष्य इधर-उधर सुख-साधनों के पीछे भटकता रहता है किन्तु कहीं भी पूरी तरह जिसे न पाकर हताश, कुण्ठित हो जाता है, वह उसका अपना आत्मा ही है। जब तक मनुष्य अपने आपको नहीं समझ लेगा तब तक आनन्द उसके लिये मृगमरीचिका जैसा बना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहेगा। उस आनन्द को पाने के लिये विषय-भोग के सुख के पीछे दौड़ते रहने से तो अन्ततः मृत्यु सदृश कष्ट ही प्राप्त होगा।

उस आत्मा के साक्षात्कार के लिये भौतिक दौड़ से लौटना होगा। बाहर का त्याग किये बिना भीतरी आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। और अपने आ। को पूरी तरह समझे बिना जीना तो पशुवत् जीना है। मनुष्य के लिये जीवन का सबसे बड़ा कार्य होना चाहिये अपने को जानना यानी—आत्मसाक्षात्कार।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

DISCUSSION

राजीवरंजन सिंह

केवल दुःखवोध आत्मसाक्षात्कार का प्रेरक नहीं हो सकता। दुःख होता क्यों है ? मनुष्य का मूलतत्त्व आनन्दमय है। उस स्वरूप को खो देने की पीड़ा ही दुःख का मूल है।

आत्मवोध के वाद कोई संसार में लौटता नहीं, यह वात अटपटी लगती है। यदि जीवन की धारा से कट गये तो मुक्ति क्या हुई ? वास्तव में सब में अपने को और अपने में सब को देखना है, फिर सेवा जैसी वात ही नहीं रहती। न कोई सेवक है, न सेव्य। राह वताना मन के माध्यम के विना संभव नहीं। रास्ते के वारे में इशारा किया जा सकता है, लेकिन चलना तो स्वयं को ही होगा। खेलना खिलाड़ी को स्वयं होता है, सिखाने वाला वता भर सकता है। 'पिया के घर में प्रवेश' होने तक मार्ग-दर्शक या गुरु साथ जाता है, किन्तु द्वार के भीतर जा कर तो स्वयं ही सम्वन्ध स्थापित करना होता है।

आत्मसाक्षात्कार के वाद व्यक्ति संसार का हित करेगा या नहीं यह प्रश्न ही निरर्थक है। वह विश्वसत्ता से अलग कहाँ रह जाता है ? यदि वह अपने आपका अहित कर सकता हो तो संसार का भी कर सकेगा।

Chacko Valiaveetil.

The ancient Hindu scriptures speak of renunciation or Sanyāsa as the necessary condition for self-realization. One must renounce the world with its pleasures, one's family and possessions and retire into the forest to

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

meditate and realize the self. In the context of the modern university such renunciation is not possible, nor desirable. In what sense, then, can we speak of self-realization for a university student or, for that matter, for anyone who does not want to take up Sanyāsa?

Again, the realized person was supposed to have escaped from the world and its problems and most often was not concerned with it. Will self-realization make us escapists from the world having little concern with its problems?

Self-realization is possible without taking up Sanyāsa. The way to it lies through purification of the heart and self-surrender to God. One must abstain from all that is evil and impure and narrow and selfish not only in one's words and actions but in one's thoughts and affections also. But self-realization cannot come by any amount of mere self-effort. We cannot lift ourselves up by our own boot-straps. Without the grace of God all our efforts at self-realization will be of no avail. This grace comes through prayer and surrender to God. Only when we are empty of our little ego will God be able to fill us with His grace and transform us into His likeness. This transformation, I tbink, is true self-realization.

Will such a person be an escapist ? No. On the contrary he will share the problems and sufferings of the world more than anyone else and help to rebuild it, removing from it all injustice, hatred, cruelty and greed. Such a person's life will be beautiful because it will be reflecting the beauty of his soul where God dwells. His life will radiate the joy and peace which come from God.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Prof. Y. S. R. K. Sarma.

I am reminded of a sloka in this discussion—

देहो देवालयः प्रोक्तो जीवो देवः सनातनः ।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहंभावेन पूजयेत् ।।

The body is the temple, Atman is the eternal deity ; one should shed the 'Nirmālya' (floral offerings that have become stale) of ignorance and worship with the feeling of 'He is I'.

S. K. Kak.

Speaking of Gurus, there are very few persons who have attained self-realisation and are still prepared to come out of the 'Ānanda' that envelopes them and provide guidance to seekers. Generally they do not want to go back to society ; so one has to find them out.

Mahendra B. Gabhawala.

The number of those who have attained self-realisation viz. (Sadgurus) is not small. They are anxious to guide the seekers. A self-realised person is more powerful than an atom bomb.

सद्गुरु खोजने से नहीं मिलते, पूर्वजन्म के फल से या सद्गुरु की कृपा से ही मिलते हैं।

M. J. Ramiah.

If the mothers give the right type of education to the children, only then an atmosphere congenial to self-realisation can be created in society.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Vimslaji's Discourse

First of all, I would like to express a bit of disappointment. I have been listening to the discussions, and I have listened to the papers this morning. We are in a Study Camp and the subjects were selected by the students themselves, not by all, but by some of them, last year when I was here in March, 1971. So I did hope that papers would relate to self-realization and education, self-realization and the life of the student, self-realization and the problems confronting the human race today. I wouldn't say that what has been said is wrong. I am not implying that at all. What has been said is significant; the way it has been put is remarkable; and the clarity with which certain issues have been taken is also pleasing. And yet in a Study Camp it would be desirable if we could look at the subject and its relevance to our life as we live it and the challenges we have to face.

Self-realization, why is it necessary at all? To realize one's ultimate reality, to realize the totality of one's person, to realize the individual in to realize the world. To understand the nature of the minutest molecule of atom is to understand the nature of the cosmos. And it seems that man has not understood what he is right from the days of Socrates who had expressed it very beautifully in the words "self-knowledge is virtue: know thyself.'. Man doesn't seem to have understood himself and therefore the

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

misery, the sorrow; the misery, the sorrow in all the countries, poor and rich alike, the educated and the uneducated. How is it necessary and how is it relevant to the students and the lives that they live? They study Physics, Chemistry, Biology, and nowhere do they get an opportunity to study the mind, the brain, the whole cerebral structure, to study that silence is a dimension of life. Nowhere do they get an opportunity to explore what lies beyond the cerebral activity, what lies beyond that silence, what lies beyond the conditioned brain. They do study Psychology, Philosophy. Logic, Ethics, but it is rather an abstraction. And a person who has not understood himself is not capable of using the body, the mind, and other instruments at his disposal correctly, sanely, and in a healthy way. Half the misery and the sorrow of the world is due to the misuse of the physical and the psychological structure that is at their disposal. To be religious is to understand directly what one is, the nature of the physical and the psychological and that which is beyond the psychological, the inter-relation between the psychological and the physical and so on.

To be religious is to understand the so-called known. There is enough information about the body, the mind, but acquiring information is not realization. Acquisition of information and knowledge does not enable us to get into touch directly with the body, to get into communion with the body and the mind, see the beauty of it, live it. Acquisition of information creates an illusion that we have under-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

stood and I would like to point out that self-realization is the way of understanding things and not of acquring information about things or facts of life; first hand acquaintance with what one is, with what God is, with what Truth is, with what Love is. After all man lives by Truth and Love, not by bread alone. Truth and Love are the substance and sustainers of life, call them God if you like. We may use any names. Now this truth or this Love, these are the ultimate realities for which the word 'self' is used. The word self, when we use the term self-realization does not imply the ego, the I-consciousness. I know that in psychology the term self is used for the ego-consciousness, the I-consciousness. And they talk about the ego, the super-ego and the sense of the 'me' and the 'not me'. That I-consciousness is an invention of the human brain; it is a symbol used by man. We are not dealing with it.

In self-realization, I do hope that we are referring to the realization, the understanding the first hand personal encounter with the ultimate reality of human life, the ultimate reality of universal life, So realization and knowledge must be distinct. To realize a thing you must come face to face with it. Denuding the consciousness of all ideas and theories, one has to come face to face with that ultimate reality. So as man has not discovered the ultimate reality, as he has not discovered Truth and Love as a way of life, he has not arrived at love and peace and truth. All these are only words he plays around with. They are ideas, he decorates his brain with them; they are

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

concepts for him. They will not become real unless he comes face to face with the essence of life. So the challenge of self-realization is for each and all. Where does he face the challenge? In his own life, how does he face it? He turns to the body, the tangible, the visible. And tries to learn about the ways of the body, pushing aside the acquisition of information.

He has the humility to see how the body behaves, moves, the patterns of behaviour through which the body moves, the sensitivity if the body has any, the intelligence if the body has any. If an atom contains energy, surely this body which moves around, which receives impressions from outside, gets stimulated by those stimulations, reacts to them, has its own intelligence.

We are not acquainted with the intelligence of the body. We are not acquainted with the miracle that the human physical organism is, the 'Gātra Vīṇā', the beautiful, the most complex and a very rich instrument, perfect, not only in its make-up but in all the constituents that go organically to make it. So self-realization begins there. And I do hope you will realize that we (I mean especially those born and brought up in India) never bother to get acquainted with the body, the appetite, the relationship with food, the diet that we take in; the diet we take in with our eyes, and ears and with our nose and touch, all that is diet. All that I consume from outside, becomes the substance of my being. Divinity is not somewhere outside

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

me; the grace of God is not somewhere away from me, to be borrowed, to be bought and to be begged around for. One who does not understand the physical, one who does not penetrate through the known, will never arrive at the unknown and the unknowable. One who does not understand the measurable things, will not arrive at the immeasurable, immense, vast.

So the foundation of self-realization is in the first-hand acquaintance with the ways of the physical being. Leave aside sleep and dreams and diet, even just watch how the body moves. When it touches the earth, when you walk around, what does the law of gravity do to the soles of your feet, the touch of the earth, the hard, the soft, the hot, the cold, what does it do to you? The touch of the sky, what does it do to the skin? The touch of the air, the smell, not only that the smell is good or bad, not only that the weather is hot or cool, what does it do to me inside? So the body in relation to the outside and the body in relation to what is happening inside has to be seen. The beauty, the tenderness, the pliability, the intelligence of the body, may be there we'll find the fragrance of the divine. Because the divine and what you call material are not two separate categories. There is no place which you can cut with space and time where divinity does not permeate. The purest form of energy, the totality of existence that divinity is. We have to come in touch with it, feel it, live it so that it radiates from the whole being in each movement of the body, the mind, the speech. When individuals

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

become living cells of the awareness of that divinity, the texture of human relationships will be changed.

The texture of human relationships has not been changed through the bullet and even through the ballot box. And the changes in the outer structures may be necessary, but they are not the essence. The individual has to begin ; the crisis of ignorance is in the human psyche, the individual psyche. the darkness of ignorance has to be dispelled from there and when the illumination is there in each individual, when this bulb gets illuminated from within, then only the collective will be enlightened, not otherwise. So the foundation is laid in understanding the physical. Please do not confuse knowledge about the body as understanding. When we begin understanding, there will be love and respect for the physical. Not only my own body, but everything physical around me. No contempt for the so-called material, the matter. There's no such thing as matter devoid of spirit ; no molecule of matter which cannot be converted into a quantum of energy. So we have a relationship of love and respect. Do we have any respect, any love for our physical structure ? We stuff it with anything and everything, whether we feel the appetite or not, the way we eat haphazardly, absent-mindedly, distractedly. The food, the diet which is going to constitute my inner being is taken in a very unscientific way, a very insensitive way. And if every action of mine is going to be insensitive throughout the day, how am I going to arrive at sensitivity

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

suddenly, sitting cross-legged and closing the eyes and chanting certain words ?

Sensitivity is a dimension of life. One has to grow into it. So self-realisation begins there. When I understand the relationship, I arrive at the rhythm. I don't need a code of conduct prepared by others to be followed by me. I do not need disciplines imposed by others or imposed by myself. We don't need anything second hand. We arrive at an understanding. That understanding sets in motion a rhythm. And one lives in that rhythm. When one feels the appetite one eats, and one eats with sensitivity. When one feels thirsty, one drinks something which will not include foreign elements for the body, will not create fermentation, will not create any chemical or neurological complication. You respect and you love. If the body needs six or seven or eight hour's sleep, we do give it ; no excitement will keep us away from that divine, profound rest that innocent sleep gives. Nothing will keep us away. The best of the movies, and the best of the musicians, will not keep me away because providing the body, the mind, the speech with the necessary rest implied in the sleep becomes an act of worship for me.

Reverence for life is not an abstraction; You might have read about Albert Schweitzer, and the reverence for life of which he has spoken. So that reverence has to begin with oneself ; if there is no reverence for oneself, I do not think there can be reverence for others, because others are only the

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

extensions of yourself. They are not separate from me. Self-realization is necessary because you and I have not arrived at this. Please let us probe, let us go home and find out how we live, how we kick the shoes in the corner of the room, how we throw the clothes and how they wait and cry for being washed and we go on postponing; how we drag the chairs, how they leave a scratch on the floor and the sound that they make! Does it ever hurt you? The way you push and pull your furniture, the way you use your crockery, the way you switch the light on and off!

The relaxation, the tenderness of love, the communion with Truth which converts the whole life into music is not easy to come by. Unless you understand, unless you have first hand aequaintance with and respect, concern and consideration for the minutest thing, self-realisation as a dimension does not come to life. If one lives in this sensitivity then one turns to see the miracle of speech. How do we speak? We have not understood it If we had understood what speech is we would not have misused it. The capacity to speak, to allow the sound-vibrations and the sound-waves to come to life at the naval point in the body, are we acquainted with it? Have we seen the upward journey of sound-vibrations coming through the inhaling and exhaling breath, the various nerve-centres and changing the chemical balance of the body? How do the thoughts get clothed into sound and how does the sound travel upwards to the throat, to the mouth and get expressed?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Do we know what is involved when we speak, how the fire element is consumed when we utter a word? Utterance and verbalisation changes the neurological and chemical poise of the body. Just watch what happens to yourself when you verbalise audibly or inaudibly, what does the verbalisation do to the chemistry of the body, to the neurological tensions in the body? After all student-life is for such explorations. There is a romance of inner life, this is an adventure of inner space and one has to take the journey. If we understand what is involved in verbalisation, the neurological and chemical impact implied therein, then we will never verbalise if verbalisation is not warranted. We will not indulge in shallow, hollow, unwarranted, cheap talk, gossip, slandering, black-mailing, praising, flattering, condemning. Unless verbalisation is warranted we will not be insensitive to ourselves to misuse that energy. Speaking consumes more energy than physical, manual labour and the extra heat that is generated in the body by speaking upsets the balance in the brain, disturbs the digestive process.

The students and teachers have to watch what happens to the appetite, the tension, the contraction of the narvous system due to excessive cerebral activity, excessive verbalisation and that can be avoided Then the examination will not become a nightmare. Unnecessary, thoughtless, reckless verbalisation leads to many problems in collective life. We feel sorry for the word we have spoken in a fit of

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

anger, in a mood of jealousy or depression. If a person understands all that, then his relationship with speech will get a new harmony. A scientific, healthy and sane use of speech is what you call Truth Truth is not an abstract idea ; it is the correct use of speech where there is no exaggeration, no under-statement, no over-statement, no indulgence into vague, diplomatic, non-committing ways. Speech, in that case, will be just precise, accurate and the use of sound-waves and sound-vibrations, the pitch of the voice, the volume—all that will create a harmony and music. Nobody will like to use harsh tones.

This is for me the process of self-discovery and self-realisation. I want to remove all the sense of mystery around it which makes it look like an emotional thing abstracted from life. If one has done this and has arrived at a rhythm in speech, one turns to the brain, the mind and comes face to face with the working of the mind, the pattern of behaviour through which the mind moves. One will realise very soon that mind is not free to move of its own and on its own. The mind has to move in certain patterns, because the patterns have been fed into us in the name of culture, ethics, religion. The economic and the political context has led to crystallisation of ways of behaviour. Just for the fun of it watch for a week and you will see that the body and the mind moves in certain ways day after day, year after year.

Then we will see that anger, jealousy, ambition are patterns of behaviour. We will see and under-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

stand for ourselves that thoughts and feelings, sentiments and conditioned reflexes, involuntary, voluntary reflexes are all cerebral patterns of bahaviour. They are products of collective activity ; they do not belong to the individual. So there is no warrant for feeling proud of certain thoughts and ideas, theories and ideologies, getting attached to them, identifying oneself with them and fighting for these patterns. Man has been fighting over these patterns of behaviour. Hindus have one pattern of physical, psychological, cerebral behaviour and Islam has another. So the individual is not free to move unless one comes face to face with the slavery in which we live, the slavery of patterns of behaviour.

How can there be spontaneity as long as we respond out of the crystallised patterns and ways? The mind needs patterns and ways of behaviour, it needs memory, it needs acquisition of information when it comes to using technology, when it comes to scientific study. All this becomes necessary there. But in human relationships there is no freedom as long as we respond out of crystallised, rigid, stiff patterns. The human problems are due to our slavery to these patterns.

Thus the students, the youth have to realise that on the mental level there is no freedom. The hunger, the thirst the yearning for freedom gets intensified when one comes face to face with this slavery. So one says—"What is beyond?" Not that all this beauty, all this poetry of life will be destroyed. There

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

will be certain behaviour, but when it is well-known that the mind moves through symbols, that there are patterns, then one will be able to use the patterns and the symbols in their relative fields of utility without any pride, without feeling superior to others. One will know "I have one pattern of behaviour, another person has another". So one will not worship one's reactions. We worship—"my anger, my hatred, my likes, my dislikes, my preferences, my prejudices"! We actually worship and pamper the mind. All that childish and juvenile game of pampering the anger, the jealousy, the ambitition, begins to fade away,

So one who wants freedom, understands that fighting over norms and standards and criteria and calling one another superior or inferior is a juvenile game. You and I have to realise this. The Hindus and the Muslims in this country have not yet learnt to live and share together. We come from different states and speak different languages. We have not yet learnt to live in harmony, because inside us there is this pride, this vanity—"I holier than thou," so in the process of self-realisation one comes face to face with this slavery. I have no time to go into how one gets out of this rut of repetetive mental activity. This is not a camp for that. So we proceed,

And now I come to the most important aspect of what I would like to say this evening that self-realisation is the personal discovery of that which is beyond the mind and the brain. It is a personal dis-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

covery of that which is beyoud all organised and institutionalised religion; proceeding towards the ultimate reality with a scientific approach. Man is born to live free, man is born to live in the bliss of joy, not only to oscillate between pleasure and pain. He has to pass through the duality of pleasure and pain, sorrow and joy. But to go through it with joy, with peace, with the spontaneity and grandeur of freedom; with the dignity and majesty of understanding and maturity walk through the corridor of the duality of pain and pleasure, joy and sorrow, birth and death. So the real challenge for you and me is to find out what is beyond the institutionalised religions, what is beyond the crystallised cerebral patterns. Is there any consciousness beyond the mind, beyond the brain and how could we explore it?

I cannot dwell upon the Master, the Sadguru, although it is the most relevant issue. I would like to say a word or two. One who turns his face towards Truth and Reality, one who becomes an enquirer, because he wants to find out, to understand, is never alone. Life without understanding has no charm, no grace, no real energy or freshness. Grow up, feed the body, have a job, have a bank balance, have money, have a family, go through all that. But that will not give the charm, the grace, the freshness unless one discovers what is the meaning of all this. So when one turns one's face towards that and becomes an enquirer in his whole being, trying to get acquainted with the body, the mind, the brain, he is in a different dimension of consciousness and a true

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

and genuine enquirer is never lonely, because he begins to emanate certain currents. This is not a metaphysical theory, it is a fact.

If you are angry you emanate certain things. If you are jealous you emanate something through your breath, through your words. You throw out something voluntarily, involuntarily, awares, unawares, just as flowers emanate scent. If you stand by a pond, a river, an ocean, you get something from it. Human beings are all the time emanating certain things. What they emanate is subtler than ether. An enquirer emanates certain currents travelling around him. The atmosphere gets charged with intensity, The openness, the receptivitv and the humility of the enquirer charges the atmosphere.

There is nothing stronger in this world than humility and receptivity. The power and the strength that humility and receptivity have is not owned or possessed by knowledge, experience, money or anything in the world, because in receptivity and humility, in the state of enquiry one is open to look out, to watch, to learn from anywhere. The whole life becomes the Sadguru. The Intelligence permeating the universe is the master. So the state of enquiry is not something trivial; it is a tremendous, powerful dynamo that a person becomes in flesh and bone. And those who have been in the inner voyage, those who have transcended the frontiers of knowledge and experience, who have gone beyond the frontiers of mind and brain, those who live in the spontaneity of

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'isness', in the inner space, also charge the atmosphere around them.

The velocity of love has not been measured as yet, but it has its own momentum. Truth has its own momentum. So the inner space charged with this awareness of the unity of life, the inner space of that individual charged with the infinite motion of love, does something to the atmosphere and the enquirer has done something to the atmosphere. Life brings these two together. As the heat of the Sun attracts water from the ocean and the water takes up the form of steam and becomes clouds by the time it reaches the skies, to be back again to the earth in a new sense of union, in the same way enquiry on the one hand and love, compassion and liberation on the other—these two always meet; one does not know how.

There are many laws of life. The law of love is one of them, just like the law of gravitation or any other law of nature. Unless one gets tuned to this law of love, I do not think he will ever arrive at joy, bliss. One does not really have to bother about the Sadguru as to how one would meet him. If you go out to find and seek you are diverting your attention from enquiry. Then enquiry will not percolate every layer of your being; your being will not get soaked into that enquiry. You will not go through a change. Mind you, enquiry transforms the mind as much as illumination does. The ultimate reality, liberation, illumination—all that is the blossoming of enquiry. They are not two

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

independent things at all. The enquiry matures, ripens, blossoms and the blossom is what is called illumination. what is called liberation.

So one does not worry about liberation and says that without employing the mind, without fighting against the conditioned mind, and against the patterns that have been fed into it having the momentum of thousands of years behind them, let me plunge into silence. We are acquainted with the dimension of activity and inactivity; we know how to do a thing or how to abstain from doing it. Now, there is a third dimension non-activity, i.e. not abstaining, not running away from doing, but just letting the doing and not-doing go into abeyance for some time. That is silence, the cessation of mental activity, Let the mind go into abeyance so that silence as a dimension comes to life., Inner space can then exist without being obstructed by the activity or inactivity of the ego.

Self-realisation is an event that takes place in that silence. The sensitivity, the intelligence contained in that person begins to move, begins to operate. That operation and the operation of the Intelligence by which he is surrounded—these two meet together. There is nothing to separate the Intelligence that operates outside the skin from the Intelligence that operates inside the skin. They meet, they commune. If you like to say the individual merges in the Universal, say it; if you like to say the Universal descends upon the individual and showers

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

its blessings and grace, say it. Whether you use the term surrender (शरणागति, प्रपत्ति) or grace (कृपा, अनुग्रह) the fact is one and the same that in the silence of the conditioned mind and brain, the unconditioned, the unmoulded, the unshaped, that which is uncontaminated by the touch of human thought, that immense, vast divinity begins to move.

Thus the human being carrying the seed of divinity within himself arrives at maturity, rather the divine blossoms from within, it begins to express itself from within. Such an individual is capable of using the mind and the body in a proper way. That is why self-realisation is relevant to us ; we do not know how to use the physical, we do not know how to use the mental structure, nor do we know how to use science and technology and all the blessings that have been conferred upon us. It is this misuse of what has been given to us that creates complications. In that maturity human beings will be capable of using everything properly,

One more point. Does this need renunciation and running away from life, escapism ? That has been the way. Born and brought up in India, you and I have to face a very big challenge of disinfecting terms of wrong associations and notions, disinfecting our way of life and behaviour. You have to have the courage and fearlessness to brush aside the traditions and conventions which do not stand the test of seientific approach. Blind rejection and blanket revolt are not going to help.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

You can escape in two ways. The first is that you conform to traditions and conventions, follow the authority of the scriptures, the organised, institutionalised religions, without understanding because that is the safest way. Thus conformity is one form of escape. Conformity is imitating, repeating a thing without understanding the content thereof. It is doing something without the personal enquiry of the meaning of that action, That is imitation, aping. Conformity and imitation is an insult to one-self, to the dignity of one's own being. Imitation can never set us free. The other kind of escape of which the younger generation all over the world has become extremely fond is to reject outright whatever is established. Just reject without understanding why you are rejecting. Either you accept something without understanding the meaning or you reject something without understanding why you are rejecting. Acceptance and rejection are the obverse and converse of one and the same attitude of mind. So I say that you and I born and brought up in India are surrounded by so many things in the name of spirituality and in the name of religion.

We are surrounded by the atmosphere of credulity, superstition, the charm of the occult, the ambition for the transcendental experiences and occult powers. Surely, all that is not self-realisation. Just as you play with the sensual pleasures, similarly you play with the extra-sensory perception, non-sensual experiences. You get intoxicated by the sensual

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

experiences, you get intoxicated by the occult experiences. Whether you become a slave of the sensual or non-sensual, there is no freedom. So we will have to discriminate between the real meanning of self-realisation and spirituality and their current meanings. We will have to fearlessly keep ourselves away from all the cheap talk in the name of spirituality and religion, that goes on around.

If you talk too much about revolt and rejection, if you make rejection and revolt a point of prestige, there will be a superficial war going on, but nothing will change at the deeper level of consciousness, nothing will change at the depth of our being. So first of all we have to discriminate, to brush aside the non-essential, the secondary. Never do a thing without understanding, have the austerity of not doing a thing without understanding why you are doing it, how you are doing it, the motivation forces behind it. Never utter a word without meaning it, without having understood its meaning. If you throw dead words at one another, you throw out dead, empty shells of words; that is not communication. You go on following or rejecting dead and empty traditions; that is not living.

Those who are interested in self-discovery, self-realisation, will become honest, will live in receptivity, in the humility of truthfulness. To do a thing one has to begin from the very beginning. The journey of 1,000 miles begins with the first step.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

It is not the privileged few who can take the inner voyage. If anyone says that self-discovery, self-realisation is the privilege of the chosen few, the rich, do not believe him. Self-realisation is the consummation of human growth. You and I by the very right of being born in the human body, are entitled to grow into that freedom, to grow into that inner maturity. Human problems will be solved by those who grow into that new dimension of consciousnes. The challenge of transforming human relationships cannot be faced otherwise.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

: 4 :

HOW TO FIGHT FRUSTRATION WITH SPECIAL REFERENCE TO THE YOUTH OF TO-DAY

युवा पीढ़ी की कुण्ठा कैसे दूर हो

सोमवार, २० मार्च, १९७२, प्रातः ८ वजे और सायं ५।। वजे

प्रातःकालीन सभा

निबन्धों की संख्या—आठ

1. Sri S. P. Kumar—M. B. M. Final
2. Sri N. C. Maheshwari—Final Elect. Eng.
3. Sri Abhaya Kumar Gupta—II Yr. Elect.
4. Sri Indra Sen Singh—Faculty of Science.
5. Sri Muthuswami Hari—I Yr. Mech. Eng.
6. श्रीकान्त दुबे--शोध छात्र, भौतिकी विभाग
7. रामहंस पाठक--एम. काम. फाइनल
8. श्री महेन्द्र वं. गामावाला--वी. कॉम.

विचार-विमर्श

भाग लेने वाले--

राजीवरंजन सिंह, स० प० कुमार, शान्तनु गुप्त,
महेन्द्र गामावाला, रामहंस पाठक, श्रीकान्त दुबे
इन्द्रसेन सिंह, स० क० काक

सायंकालीन सभा

विमलाजी का प्रवचन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चयनिका

परिस्थिति के सामने हार मानने की जिसकी इच्छा नहीं है, वह युवा है, और जो हार मान लेता है वह वृद्ध है। आपत्तियों को जो क्रान्ति का अवसर बना देता है वह युवा है, और कठिनाइयों को जो आसक्ति बना देता है वह वृद्ध है।

× × × ×

क्रान्ति का दायित्व आज शिक्षित युवा वर्ग पर है, चाहे छात्र हों या प्राध्यापक।

× × × ×

यन्त्र को देवता नहीं बनना चाहिये। न यन्त्र देवता बनेगा, न यन्त्रविरोध देवता बनेगा।

× × × ×

शिक्षण पद्धति का अधिष्ठान बदले बिना इस देश का भला नहीं हो सकता।

× × × ×

मध्यरात्रि के गहन अन्धकार में अरुणोदय की, प्रभात की लालिमा जो अभी देख ले वह यौवन है।

× × × ×

असफलता की चिन्ता कैसी ? जटायु की असफलता रावण की सफलता से तो कहीं उज्ज्वल थी।

× × × ×

विद्रोह करना आसान है, लेकिन अपने भीतर जो पुराने मूल्यांकन पड़े हैं, उनको छोड़ना कठिन है, कुण्ठा की जड़ें वहीं हैं।

—विमलाजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper 1 *S. P. Kumar*

ABSTRACT

Frustration, as psychologists define, is "any interference with a goal response or with the instrumental acts leading to it." Every person gets frustrated most of the times, but the degree of frustration varies. The paper presents a point of view regarding frustration and its remedies with special reference to university students.

Frustration to a certain extent is necessary to motivate a person to pursue a line of action, hence is good. But when it exceeds a limit it becomes dangerous.

Today's students are tomorrow's citizens and nation-builders and hence their importance in a nation's progress. There are several reasons for frustration in students. A typical university student pitches his expectations too high, regards university education as a means to attain social status. And because of not getting the expected outcome, he gets frustrated. Even during the process of education, he finds the education to be ineffective, and is frustrated. Further, there is a built-in inadequacy in the present educational set-up. The present system of education is turning out only social parasites. Then there is the present social set-up, which does not tolerate an educated man earning his livelihood by sheer manual work.

A highly frustrated young man marks national degeneration, and is highly dengerous. Though there are three courses of action open to a frustrated young man, progression, regression, and substitution, he

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

often becomes aggressive or dejected, and this poses a danger to society.

To remove frustration in students. a suitable educational plan must be formulated, where the employment opportunities and humān resources are matched. Education should be largely job-oriented, and the aptitude for jobs must be developed and assessed properly. Secondly, an Indian context must be provided to the educational system. Thirdly, the overall environment must also be made congenial. The youth are confused botween the shattering old values and the upcoming new values. The society must understand the problems of the youth, and be sympathetic towards them. Fourth, political exploitaion of the student community must be stopped. Students themselves should rise to the occasion and prevent their exploitation And lastly, youth of today must realise the dignity of labour, and become more self-reliant.

Frustration, as psychologists define, is "any interference with a goal response or with the instrumental acts leading to it." It is a state of mind which occurs when a person wants to achieve something, but is stopped half-way. Every person gets frustrated most of the times, but the degree of frustration varies. Let me present a point of view regarding frustration and its remedies with special reference to university students.

As it is apparent, frustration is a state of mind, and has its consequences. In fact, psychologists maintain that a certain degree of frustration is necessary to motivate a person to pursue a line of action. In this sense, it would seem that frustration is a sort of disequilibrium from the status quo, where the cencerned individual tries to remove the cause of frustration and thus restore

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

equilibrium. Thus, it would seem that being frustrated to a certain extent is good. But then, why all this hue-and-cry about students being frustrated and its threatening consequences ?

For this, let us see why there is frustration in students, and what will be the consequences if the students are left frustrated. Today's students are tomorrow's citizens and nation-builders, hence the importance of students for the development of a nation and progress of human happiness need not be over-emphasized. As to the reasons of frustration in students, there are many. A typical university student is young, ambitious, forward-looking and, the most important of all, is highly sensitive to the environment around him. Generally, he looks forward for a bright career, and he pitches his expectations quite high. And in the present day circumstances, and specially in the Indian context, university education is mainly resorted to for attaining social status, a livelihood and as a means for achieving certain concrete goals. Accumulation of knowledge to promote social progress and learning for the sake of learning have been relegated to the background. Whatever the reasons for such a defining of the objectives of education, the educated young man just finds continuous obstructions on his way to his assumed goals. He wishes to get a 'proper' job for himself, but he is not able to get. His parents and relatives pitch high hopes in him, only to find them not being realised. And because of not getting the expected outcome, he gets frustrated.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Not only that, even during the process of educating himself, a student finds himself frustrated. Apart from the untoward events like strikes, obstructed sessions, and certain discriminating practices he observes, he somehew does not find satisfaction in educating himself. A sincere student, after passing through a particular course of study, is rather shocked to find the ineffectiveness of the course in turning him out to be something better than what he was. Here again, either the student has expected too much out of a course, or the system of education has not been competent enough to give him proper education.

This brings us to the next factor causing frustration in students. There is a built-in inadequacy in the present educational setup. Of course, everyday we hear of reforms in education system, but all these years what we have done. according to the author, is nothing but the perfection of an inadequate system to turn out material that was once in demand to sustain an imperialistic structure, In fact, the author does not hesitate to state that the present system of education is producing nothing but social parasites.

To point out only one more of the several factors causing frustration in students, we come to the present social set-up. An educated young man is tolerated as a social parasite, but the society would not stoop to accept the dignity of labour and an educated man earning his livelihood by sheer manual work. Such an attitude of the society in a way has shaped the youth's mind also to a great extent.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Such a continual frustration is bad for society unlike the frustration to a certain degree which is constructive. A highly frustrated young man marks national degeneration, and is highly dangerous. Psychologists point out that when a man gets frustrated, he has three courses of action before him : one is aggression. The occurence of frustration creates an internal instigator to aggression. And aggression is "an act whose goal response is injury to an organism, or organism-surrogate." But every frustration is not immediately followed by aggressive behaviour. In fact, even after a man gets frustrated because he could not achieve his goal, he can either resort to progression, where he creates new goals for himself, or to regression, where he renews old, previously discarded acts, or substitution, where he finds out some alternative or satisfising goal.

But more than often, a frustrated individual, especially the educated young man, becomes aggressive. This has threatening consequences, and poses danger to the society. Because an aggressive man either becomes violent or becomes dejected after a particular period of time, and thus might become a social menace. Hence, we must fight frustration in students if we wish to ensure strong and dependable citizens for tomorrow.

The best way to fight frustration is to remove the causes of frustration. The first and foremost remedy, as I see, is to formulate a suitable educational plan in our country. There are ample employment opportunities in our country. There are vast human resources

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

too. But there is no matching of these two. For an effective and efficient utilisation of the available resources a comprehensive educational plan on a national level must be made. I feel that a large part of the frustration is removed if such an educational plan is undertaken and executed. We should first of all study the needs of the country, discover employment opportunities and educate the students for specific jobs. Unless job-oriented education replaces the general and aimless education of the present day, student community will remain frustrated. This does not mean that konwledge for the sake of knowledge, or pursuit of purely academic research for expanding the horizons of the knowledge and learning of man should not be undertaken. But, in the present circumstances, more emphasis should be put on the job-oriented education. Of course, there arises a related problem of assessing the aptitude of a student for the particular job for which he is to be trained. But this problem can be solved if proper planning is done at earlier stages of education.

In this context, it would also be necessary to provide an Indian context to the educational system. Often we find that in most of the subjects, especially humanities and not much developed disciplines, the Indian context is wholly ignored. This leads to the ineffectiveness of the subject studied in the Indian conditions, and thus causes frustration to the student.

As the students form a part of the society, to remove frustration in them, the overall environment around

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

them must also be made congenial. India today is in the transitional phase, and the youth are confused between the shattering old values and the new values which are gradually replacing them. Unless the society as a whole tries to understand the problems of youth as they see it, and show a sympathetic attitude towards them, frustration cannot be mitigated.

And then, there is the political exploitation of students for gaining vested interests. This is a major factor which causes frustration in students one way or the other. Students must rise collectively to put an end to such an exploitation, if the society does not take adequate steps to prevent it.

And last, but not the least, youth of today must try to realise the dignity of labour, and understand that higher education need not necessarily lead to higher strata of society and economic affluence. This would go a long way in preventing the unnecessary frustration that results from pitching one's expectations too high. There must be the right kind of response from sciety to encourage self-employment, and provide necessary assistance towards this end. A self-employed young man develops a degree of self-reliance which will drive out frustration in him, and this is so conducive to his happiness.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper II *N. C. Maheshwari*

ABSTRACT

The term frustration has the connotation that refers to the gloomy side of life. Being prevented from reaching a goal is the essence of a frustrated state. The mind is under a terrible strain because of repeated failures in one's field of interest. This frustration not only brings ruin to those who have undergone this total mental state but also to the society and the nation. People suffering from frustration lose their initiative and drive to achieve whatever aim they might have set for themselves or what society might expect of them. What should be the remedy for it ?

Positive thinking is one solution according to some people But a little consideration towards this will expose its flaw. The only thing which can prevent frustration is to elimnate distinction between action and goal (for which the action was made). Derive pleasure in action instead of goal. This is the key-note to avoid frustration.

What does frustration mean ? Why does it arise and what are the consequences of it ? Before going for the remedy of it, we shall answer these questions. The term frustration has the connotation to the gloomy side of life. When someone fails to reach one's goal he is depressed. When he meets repeated failures, he reaches the crux of depression. And this state is usually known as frustration. It is obvious that the root of frustration lies in the inability to reach one's destination. The consequences of it are very fatal.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

People suffering from frustration lose all charm in life and become inactive. They lose their initiative and drive. Their senses refuse to distinguish between wrong and right, bad and good, social and anti-social acts. A very good presentation of such type of people is given by Devanand in his picture 'Hare Ram Hare Krishna'. They forget their responsibilities towards their society and nation. They try to escape from the problems instead of dealing with them. So they are nothing but a nuisance to the society and nation.

Now we shall try to investigate some of the solutions to fight against this evil. One solution may be positive thinking. Think over it for some time. On scanning the proposed solution, it is obvious that it cannot be continued for a long time, because successive failures will reduce the vigour to accomplish the work. Hence it does not seem feasible.

The other solution may be security of bright future prospects. But nothing of this sort can be guaranteed. Furthermore, the future also depends on present actions. So ultimately this solution also fails. The third solution may be to eliminate the distinction between action and its fruit. Treating alike pleasure and pain, gain and loss, victory and defeat, we should go for action. We should derive pleasure in the action itself. Of course, our actions will be guided by the motives of the fruit. The sentence 'our right is to work only but never to fruit thereof' will keep us immovable by failure and success. In Gita Bhagvan Krishna said to Arjuna :

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

So we should remember that our right is only to work, not to the fruit thereof. We should stop thinking about getting the fruit because it is not in our hands. We should not go in for action to get the fruit. The mind should be stabilised, because placidity can only be obtained by a mind free from fluctuations. On attainment of placidity all the sorrows disappear. And thus we feel a new vigour in the accomplishment of a task.

Thus we see that the third solution is a perfect solution to get rid of frustration.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper III *Abhaya Kumar Gupta*

ABSTRACT

Causes of frustration :

1. Defective mode of Education;
   Education is not practical. Educational Institutions have become professional.
2. Absence of any shining ideal to inspire them.
3. Unemployment.
4. Corruption in every field.
5. For fighting frustration serious thinking in the modern context is needed.

[This paper was not presented—Editor].

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper IV *Indra Sen Singh*

ABSTRACT

1. Introductory remarks on infectious "Frustration".
2. Factors of frustration and discussion of their remedial aspect :—

(a) Turmoil between tradition and modernity on account of "Transformation"; justification of the urge of transformation, and hence, immediate recognition as a step to fight frustration.

(b) Making youth aware of its frustration and ensuring their active cooperation as a psychological step to fight frustration.

(c) Cross-examination of the Youth's pessimistic purview of life, social uncertainty, job-insecurity, devaluation of degree as the pillars of frustration and posssible ways to clear them.

3. Concluding lines depicting frustration as a problem of general concern and so, seeking an unified move to fight frustration.

Youths, adults and old peesons of today have been equally introduced to "Frustration". So, evidently, it is a very gigantic problem requiring a very imaginative and cautious approach while fighting it. But first of all, we have to understand thoroughly the various facts that are active behind the scene of frustration.

I am afraid to admit that the youth are becoming exact antithesis of the old. The old do not hesitate to any extent in condemning any youth upurge for it

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

appears to them as immature and inconsistent. The youth on the other hand, claim themselves to be far wiser and more progressive than the old. The so-called and much discussed "Generation Gap" as the net outcome of this state of affairs has become manifest as frustration in the youth of today. I believe that "Transformation" is the bone of conflict between the young and old. The old are perpetually and wholeheartedly resisting any transformation or change from hitherto accepted values. That would definitely, they fear, lead the young astray. The young in their turn, are committed to change from old and dead values in order to keep pace with the modern trends. And as such they are prepared to meet thesr ends by hook or crook.

Adults are now unwillingly the crucial knot in the tug of war between theses two streams of society and interestingly enough, they too have frustration in being ineffective and unliberal while dealing with them. The tilting in either way brings them to the centre of fury. So one might anticipate them to be the pioneers in bringing about a compromise of the old and young in view of putting an end to such a frustrative situation. But that seems to be a fantasy at present. So obviously, it is a matter of concern for all and it is quite encouraging that we have jointly ventured here to look at the crisis.

Apart from all this, social uncerainty, job-insecurity, devaluation of degrees and excessive materialization of thoughts and angles are the various pillars of frustration that would have to be fought out individually and

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

collectively before we can see its eradication. The analysis of the problem that I would be able to furnish, may not be complete and final but I am sure that it is not impossiible for us collectively to take the cat out of the bag.

At the very outset of touching the remedial stage, I would like to say something about the old people, those who have the credit of being the masters of social values. I do not find any legitimacy in their primary reluctance towards any sort of transformation or change. Their fear of change resulting in a bad 'tomorrow' does not convince much. For it is not a dictatorial wish or the product of a single mind's thinking. And a change sponsored by all the minds i. e. by a society as a whole would in no way, be injurious as compared to the change of a certain part of it. In a still clearer way we can consider the case of our evolution itself.

If nature had also acted like these old people of today, then the possibility of ours being here would have been a myth. The evolution-exponent Charles Darwin has boldly prophesied that transformations or changes or variations or mutations are the sole foctors behind the chain-reaction of evolution. He was further of the view that a change consistent with environmental changes is always vitally benificial. So if the young mutate or metamorphose with the time, then it does not mean that they are precocious and crazy. And so the old should not show indifference towards youths whenever they talk of transformation. And it was quite likely that youths

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

would have been still ignorant of frustration if the old had not acted with such adamantine rigidity and callousness. Their continous refusal to give any thought to the former's views has gathered much mass to the momentum of revolt born of frustration.

So, making the old generation liberal in their response to "Transformation" will be a significant step in fighting the frustration in the youth of today. The old should stop seeing the youths of today through the periscopic eyes of their own youth days. They should, after all, take an account of the tremendous change in the dimensions of time. Things that are existing under these changes of time are bound to get new shapes. So if new minds are showing any responsive tendency to these metamorphoses of time, they should not be pooh pooed simply because they are incompetent in age. They might be given due consideration and recognition of their views and ideologies. This will undoubtedly lessen the magnitude of frustration and explosion in them. The by-gone age should appreciate the youth movement if they really see any spark of genuinity or legitimacy in their assertions. We should understand one thing very clearly that over-looking or escaping from the problem can never be a remdy.

The youth also, in its turn, should equally be curious to sense and assess the nature of their frustration and its best and quickest possible remedy, as it is a sober fact that this frustrative or conflicting state of affairs is going to make them thrive neither mentally nor physically. That this frustration is clearly a stumbling block

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

in their headway should be clear to them at all levels. Mere outbursts are not going to yield much if they lack a definite purpose. What is more important to them is that they should weigh and analyse properly their views and expressions before making them as guidelines for their future actions. Moreover they should respond intellectually to the criticism of the old who are, after all, more experienced than them in this sophisticated world. A compromise would have to be reached sooner or later because it would be utter impr-opriety to set aside the point of view of either age. So, I think both the young and old should be persuaded to act in unison and if needed, on complementation.

The other aspects of fighting the frustration are to cross-examine the very causes of abhorrence towards life itself. It is unknown to no-one that youths of today are extremely conscious about their standard of living which is markedly deteriorating day by day. And it is this consciousness which usually infuses them to blame the government. In order to draw her attention, they even run the risk of playing with the national property and security as well. Sometimes they gamble their precious lives too. By all these sabotageous ways they obviously want to show off their grievances. Today the youths are adverselly affected and are being slowly exacerbated by the unemployment problem which appears to them every moment with altogether unique but furious manifestations. Now they are awakened in the sense that they are keen in becoming self-reliant as against their parasitic mode of life dependent upon

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

their parents. The accusation of the government then, as far as its inactiveness is concerned, is legitimate to some extent. As the demand now comes from every sector for better planning the governement should have taken the realistic attitude in doing so. To achieve this end, they need not reshuffle the Planning Commission every now and them but make different types of services available strictly for different levels of education.

Today irony has been allowed to play to such an extent that a Doctorate, a Master, a Graduate, an Intermediate and a Matriculate are applying for the same post which is bound to create unemployment for all except the Doctorate who has brighter chances of selection. Unfortunately degree has replaced skill. Today Intermediates and Matriculates are worst affected as they fall short of higher education which is a pre-requisite for appointments and secondly they bear unlogical, shuddering reluctance towards farming. It is really sad that none of them understands it well that agriculture is one of the best absorbents for them. The only way out of this poor state of affairs is to either make these semi-literates work in the fields or create certain job-opportunities exclusively for them. Whether we are going to bring them in the lime-light of this truth, or government is going to convince them is a matter of equal significance. But so long this hanging state of theirs is allowed to persist nothing concrete can be achieved as in our way of fighting frustration.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Moreover, when we are so much confronted with the labour-surplus economy, our government is leaving no stone unturned in achieving intense automation. When we are showing ourselves to be so sensitive to the present crisis of youth frustration, then these silly mistakes on the part of government indicate nothing but the hollowness of her perception of the problem. By this I never mean that I discard automation but the way it is being done. Automation ensures greater production, no doubt. But at the cost of employed labour it is not at all soothing. The simultaneous creation of jobs in industries and other construction-work-departments is quite essential for this scheme of automation. Without measures aimed at that it is not possible to achieve our objectives.

Last but not the least, a sense of responsibility for fighting the frustration in our youth should not be a matter only of our jurisdiction, but it should, as well, be concerned with every man on the road. Above all, youth itself should be conscious enough to ponder about itself, and abandon right now the hot, hasty and fiery attitude that it has assumed in the eyes of others. Instead it would have to be quiet, ponderous, peaceful, sane and normal in its tune and expressions. At the same time, the old would have to be just, impartial, equitable and unbiased in their gestures and actions. No doubt, an end to the existing turmoil between tradition and modernity, a sufficiently elevated livelihood, a job-secured future and an unblocked way to progress and self-determination would have to be achieved by us before we set ourselves to eradicate the youth frustration

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

once for all, but primarily we should make every nook and corner well acquainted of the horrible fate of this frustration and then try to fight out, of course, not without their cooperation.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper V *Muthuswami Hari*

ABSTRACT

Causes of frustration amongst the youth of today are varied and innumerable. One of the reasons for this frustration is no love or affection received by the youth or excessive love received so as to interfere with the youths' independence and freedom of thought and free use of discretion. Therefore, love right from childhood must be well balanced. Another reason for frustration is unemployment. This problem can be solved by studying the causes of unemployment, in order to strike at its very roots.

Let us first of all see what the causes of frustration are. Having seen this we can then systematically proceed and try to solve this problem by striking at its very root.

Well, let us ask ourselves a question : when does a person get frustrated ? The reasons are several and varied. It is either when he finds that there is nobody to care for him or love him or take interest in him or it is when he finds that he is too much taken care of. Let us see how this happens. We are all members of a society whether we will it or not. Throughout our life we have to live in this society. This is more of a necessity than a mere happening, since we can see that for numerous reasons from the very old days man always wanted to and did live in groups. Hence we see that no man can ever live isolated from others (i. e., isolated from society); man needs the company and friendship of others. The reasons for this are :-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1. Protection—not only from wild animals and men of evil ways but also in times of catastrophes like famines, floods and so on.

2. For better agriculture by cultivating large tracts of land.

3. For the propagation of the human species which would be impossible under the condition of isolation. And besides all these reasons, for the most important reason in my opinion, to get that mutual understanding, love, affection and sympathy that man needs so badly.

Man, thus we see. expects this care and affection from the society in which he lives. If he cannot find it in spite of living in society, he gets frustrated. He starts thinking and asks himself : What has society given me ? When he gets the answer in the negative especially when he has been really affectionate and sympathetic towards others, he realises that it is not he who owes anything to society but it is the society which owes him a lot. Now let us see how this situation can be avoided. What we need today is a little less of 'you' and 'I' and a lot more of 'we' and 'us'.

Today we need a lot more of love aud friendship based on selflessness and sacrifice. We should break all barriers and fight for it. We should not only delete from our minds notions such as 'he is a Punjabi', 'he is a Bengali'. but also notions such as 'I am an Indian', 'He is Chinese', or 'He is an American'. Do we not belong to the same human species ? Does not a Chinese laugh if you tickle him ? Does it not pain an American

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

if you kick him ? Then why can't we all live together ? All this is possible and very easily so in theory or on paper, but even practically it is possible to a great extent. We can live in the bond of friendship in spite of belonging to different nations.

Perhaps this is not everyman's level. But everyman can do his little for this greeat achievement. He must endeavour to see that there is love and affection in his own family, since it is the family which is the very first association to which a human being belongs. If he is not cared for in this very small society then it is less likely that he will be cared for in the world. But if each one has at least this in his mind that at least there are his parents, brothers, sisters and close relatives caring for him, he will not feel lost in this world. Thus if every parent endeavours to maintain love, harmony and affection in this family by bringing together its members in a firm bond of love based on selflessness, frustration arising due to this cause can very soon be positively eliminated.

Now referring to the other aspect of the same reason—when a youth is too much taken care of. What I mean to convey by this is that when persons, generally parents and close relatives, are so much interested in you and want to express their love and affection for you with such great vehemence and vigour as to infringe upon your privacy and independence, you feel frustrated.

Take the instance of a man 26 years old. He has now reached an age when he can reason out for himself

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

as to what is right and wrong for him. Now if it so happens that his parents or other elders in the family insist on telling him what to do and what not to do and to tell them where he goes and why and so on and so forth, well, the boy naturally gets frustrated and feels quite rightly that he has been deprived of his independence. Besides, by so doing his initiative and discretion will be almost silenced and in life when he has to take a dicision on his own, he will lack confidence. The remedy for this is that after a certain age every person must be regarded as an individual and his action and thoughts must be given a chance. Though in this case the parents may argue that they do this only out of affection and fear that their son or daughter may fall into evil ways or habits, I must remind them that their child is also an individual and must be allowed to exercise his or her own rights and hence this affection must not exceed the limits.

So far we have discussed just one reason for the frustration in the youth of today. Let us now see what other reasons lead to the same result.

Every year in our country thousands of graduates are produced. But do all these graduates get jobs ? The answer is an emphatic No. Many of them remain jobless for several years without anyone to support them sometimes. Now there are mainly two reasons for this :

1. Most of our courses are not job-oriented. What I mean is after becoming a graduate one needs what is called 'experience', i. e., experience in working in a firm

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

where alone the graduates really come across the practical problems and then think as to how to solve them. To pass the examinations a boy takes to become a graduate, he has only to revise some set of questions or go through some question-papers of past examinations. So in addition to the courses not being job-oriented the examination does not even test the real intelligence of the candidate.

2. The second reason arises from what is commonly called as 'pull', i. e., if you are fortunate enough to have acquaintance with some top executive of a firm or the personnel manager, then you can get your job the easy way, or else you suffer like the rest.

Because of these two reasons, a graduate finds it difficult to get a job unless, as we see, he knows the road leading through the backdoor. He finds that it is not merit that counts but it is the number of persons he knows who can help him get a job. He finds that he has to cheat and employ unfair means.

The remedy for this is also two-fold. The morals of the citizens must improve. But this is not what can be easily done, although a lot of steps can be taken to curtail dishonesty. For example, neither accepting nor giving bribes, neither offering jobs to acquaintances without considering their merits, nor accepting similarly offered jobs could be one remedy. The other remedy for this is the introduction of job-oriented courses of study. If each person studies only what he is going to

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

work and study it well and specialize in just that. then this number, this unweildy and cumbersome number of graduates can be reduced. And the courses being job-oriented each person is sure of getting a job.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निबन्ध सं० ६ श्रीकान्त दूबे

सारांश

कुण्ठा—अकर्मण्यता एवं दिशाविहीनता की स्थिति। दिशा-निर्देशन शक्ति को गलत दिशा में खर्च न होने देकर उसका सही उपयोग कराता है। इसकी कमी के लिए जिम्मेदार है हमसे पहले वाली पीढ़ी का वर्ग। अकर्मण्यता शक्ति का उपयोग कर्म के लिए न करना है। इस प्रवृत्ति की अधिकता हमारे युवावर्ग में पायी जा रही है। इन दोनों को दूर करने का उपाय ही कुण्ठा को दूर करने का भी उपाय है।

कुण्ठा का अर्थ है अकर्मण्यता एवं दिशाविहीनता की स्थिति। जैसे कि कोई राहगीर किसी सुगम मार्ग से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए अचानक पाये कि आगे कोई मार्ग ही नहीं है, यदि है भी तो अत्यन्त कंटीला है। यदि उसने इसके पहले का रास्ता स्वयं न तय किया हो अपितु किसी दूसरे के सहारे आया हो तो स्थिति और भी चिन्ताजनक हो जाती है। हम यह कह सकते हैं कि या तो उस राहगीर को मार्ग ही गलत बताया गया था, या मार्ग सही था किन्तु उसमें आगे का मार्ग बनाने की क्षमता नहीं है या मार्ग भी गलत है और उसमें क्षमता भी नहीं है।

ठीक यही स्थिति आज के युवावर्ग की है। वह या तो ठीक दिशा नहीं पा सका है या अकर्मण्य है या दोनों ही कमियों से ग्रस्त है। दिशा-विहीनता की स्थिति के लिये जिम्मेदार हमसे पहले वाली पीढ़ी का वर्ग है। या तो अनुपयुक्त व्यक्तियों द्वारा दिग्दर्शन किया जा रहा है। अथवा दिग्दर्शन की विधि ही गलत है। स्थिति का सही मूल्यांकन किये बिना ही दिशा-निर्देशन किया जा रहा है। चुनाव भी उपयुक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं हो रहा है। जिसका चुनाव होता है वह आगे बढ़ने में समर्थ नहीं और जो समर्थ है उसे आगे बढ़ने का अवसर नहीं दिया जाता। परिणामस्वरूप प्राप्त होती है कुण्ठा।

इसी कारण हमारा युवावर्ग अकर्मण्य हो गया है, कठिनाइयों का सामना नहीं कर पाता। उसमें साहस नहीं है, अथवा वह इनका उपयोग ही नहीं करता, सदैव सहारे की खोज में रहता है। वह अपने लक्ष्य का निर्धारण अपनी क्षमता के अनुसार नहीं कर पाता। उसमें जिज्ञासा की भी कमी है। वह तो बस सस्ते ग्लैमर के पीछे भाग रहा है। इसीलिये न अपना लक्ष्य-निर्धारण कर पाता है, न कोई मार्ग पकड़ता है और इधर-उधर भटकने लगता है।

इस स्थिति के निदान के रूप में अधिकतर कहा जाता है कि वर्तमान जीवन-पद्धति ही दोषपूर्ण है, उसमें आमूल परिवर्तन द्वारा ही इस स्थिति को दूर किया जा सकता है। किन्तु, भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है—

"सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः"

अर्थात्—जैसे अग्नि में धुँआ मिला रहता है वैसे ही प्रत्येक कर्म के साथ कुछ दोष भी लगे ही रहते हैं।—अर्थात् पद्धति कोई भी हो वह सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकती। यह तो हमारा कर्तव्य है कि हम उसके गुणों पर अधिक प्रकाश डालते हैं या दोषों पर। इसलिये केवल नई पद्धति को खोजने व लागू करने के उत्साह में ही कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझनी चाहिये। बस, अगला कदम सम्भालकर रखें। नये के मोह में कहीं अधिक हानि ही न कर बैठें।

पद्धति कोई भी हो उससे पूरा लाभ तब तक नहीं प्राप्त किया जा सकता जब तक छोटे पैमाने पर उसे दृढ़ न कर लिया जाय। इसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विचार से विनोवाजी ने ग्रामसेवा पर अधिक वल दिया कि राष्ट्र की सबसे छोटी इकाई गाँव हैं, अतः राष्ट्र की दृढ़ता के लिये ग्रामों की दृढ़ता आवश्यक है। छोटी इकाइयों में सुधार कार्यान्वित होता चले तो राष्ट्रीय स्तर पर भी समस्याओं का समाधान स्वयमेव हो जायेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निबन्ध सं० ७ रामहंस पाठक

सारांश

कुण्ठा का तात्पर्य विफलता की भावना से या निराशा से है। कुण्ठा का अभ्युदय तभी होता है जब कि मनुष्य को प्राप्त होने वाला वास्तविक परिणाम उसके मनोवांछित परिणाम के विपरीत होता है। विशेषतः युवावस्था में आशायें तो आसमान चूमती हैं किन्तु उन आशाओं के प्रति सम्पादित कार्य उनकी तुलना में पूर्ण नहीं होते। युवा पीढ़ी की कुण्ठा दूर करने का उपाय यह है कि युवकों में यह विश्वास उत्पन्न कर दिया जाय कि फल का आधार कर्म है। साथ ही समाज को इस योग्य बनाया जाय कि वह युवकों की मूलभूत आवश्यकता को पूर्ण कर सके। और जाति, धर्म, प्रान्त तथा चाचा-भतीजा-वाद के कारण युवकों को पहुँचाये जाने वाले आघात रोके जाँय। अतः कुण्ठा दूर करने के लिये युवक वर्ग तथा समाज एवं समाज के प्रतिनिधि उत्तरदायी हैं।

कुण्ठा का आशय विफलता की भावना अथवा निराशा से है। विभिन्न प्रयत्नों या चेष्टाओं में असफल होने पर मनुष्य के मन एवं मस्तिष्क में जीवन के प्रति निराशा की जो ग्रन्थि बन जाती है उसी का नाम कुण्ठा है। जब व्यक्ति कुण्ठित हो जाता है तो किसी भी परिणाम को प्राप्त करने के लिये उसके प्रयत्न भी शिथिल पड़ जाते हैं तथा प्रयत्न की दिशा परिणाम के अनुकूल न रह कर पुनः विफलता का कारण बनती है तथा व्यक्ति की कुण्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। अतः कुण्ठा का अभ्युदय मनोवाञ्छित परिणामों की प्राप्ति के अभाव में होता है जिसके लिये प्रयत्न-कर्ता तथा उसका पथ-प्रदर्शक तो अधिक, किन्तु दूसरा पक्ष समाज भी किसी सीमा तक उत्तरदायी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यों तो व्यक्तिगत तौर पर कुण्ठा के अनेक विभिन्न कारण एवं परिणाम होते हैं किन्तु सामाजिक स्तर पर उसका कारण सामूहिक असफलता है। विशेषतः युवा वर्ग में आज कुण्ठा का कारण उनका अन्धकारमय भावी जीवन है। आधुनिक युग आर्थिक युग हैं। मानव की समस्त क्रियायें एवं उप-क्रियायें आज अर्थ पर ही केन्द्रींभूत हो गयी हैं। जीवन की गाड़ी बिना अर्थ के एक कदम भी चलने में असमर्थ हो गयी है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति, समाज एवं सरकार का सर्वप्रथम कर्तव्य यही होता है कि आर्थिक आवश्यकताओं की संतुष्टि का उपाय करे। इस सन्तुष्टि के बिना व्यक्ति या समाज का सर्वांगीण विकास अर्थात् शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष कठिन ही नहीं, असम्भव हैं। इसी बात के आधार पर यह कहा जाता है कि पहले आत्मा तो बाद में परमात्मा। समाजद्रष्टा एवं समाजस्रष्टा कविश्रेष्ठ महात्मा गोस्वामी तुलसीदास ने राम चरितमानस में लिखा है कि "भूखे भजन न होंहि भुआलू"। अर्थ की यह भीषणतम समस्या आज हर प्रकार के युवक के सामने उपस्थित है। चाहे वह शिक्षित हो या विषय का ज्ञाता क्यों न हो। इस समस्या का रूप युवकों के सामने बेरोजगारी का है। और इस समस्या के कारण ही समाज की और अनेक दूसरी समस्यायें भी उत्पन्न हो जाती हैं क्योंकि खाली दिमाग शैतान की कार्यशाला है (Empty mind devil's workshop)।

युवा पीढ़ी की कुण्ठा या निराशा के लिये युवा वर्ग एवं समाज दोनों ही उत्तरदायी हैं। युवा वर्ग इस सम्बन्ध में इसलिये विशेष उत्तर-दायी है कि वह अपने को इस योग्य बना नहीं पा रहा है कि वह समाज से मांगने के बजाय अपनी योग्यता के बल पर समाज से मनोवांछित चीजें छीन सके। यह अवस्था उत्साह एवं कल्पना की होती है। इस अवस्था में आशायें तो आसमान चूमती रहती हैं किन्तु कार्य-सम्पादन जो आशाओं की आधार-शिला है पूर्ण नहीं हो पाता है,

/

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिसके फलस्वरूप आशायें, निराशाओं में बदल कर युवकों को कुण्ठित करती रहती हैं। योग्यता के प्रमाण-पत्रों की हर जगह भरमार है पर उन्हीं प्रमाण पत्रों के साथ लाखों की संख्या में रोजगार की तलाश में घूमते हुए युवक इस बात के प्रमाण हैं कि या तो प्रमाण पत्र झूठे हैं या तो उस शिक्षा की उपयोगिता नहीं है। प्रमाण-पत्र झूठे का तात्पर्य यह कि वह युवक उस योग्यता की कसौटी पर' व्यवहार में खरा नहीं उतरता जिसका प्रमाण पत्र लेकर वह घूम रहा है। वह उसी छात्र की तरह है जिसने तैराकी की परीक्षा में कागज पर लिखकर विशेष योग्यता प्राप्त की, किन्तु जब तालाव में स्थान करने गया तो डूब गया। युवा पीढ़ी की कुण्ठा दूर करने के लिये सर्वप्रथम तो यही प्रयास किया जाना चाहिये कि युवक अपनी जिम्मेदारी को समझें तथा अपनी भावी आशाओं के लिये घोर त्याग, तपस्या, एवं परिश्रम करके अपने को योग्य बनावें तथा यह विश्वास रखें कि सफलता केवल इच्छा मात्र से प्राप्त नहीं होती वरन् कार्य के आधार पर फल उत्पन्न एवं प्राप्त होता है।

युवा पीढ़ी की कुण्ठा दूर करने का दूसरा उत्तरदायित्व समाज या समाज के प्रतिनिधियों पर है। उनका यह कर्तव्य है कि समाज की संरचना एवं युवकों के निर्माण का कार्य इस तरह करें कि एक दूसरे पर आधारित रहकर विकासोन्मुख हो सकें। किसी राष्ट्र की सबसे बड़ी सम्पत्ति वहाँ के नवयुवक होते हैं। समाज को बदलने समाज को उन्नत करने तथा समाज को हर संकट का सामना करने के योग्य बनाने का एकमात्र श्रेय वहाँ के नवयुवकों को ही है, किन्तु उचित पथ-प्रदर्शन के अभाव में समाज का पतन भी युवकों के कारण ही है। परन्तु बात इतनी ही नहीं, युवक भी तो अपने वातावरण की उपज होता है और यह वातावरण समाज ही है कुछ और नहीं। समाज वह ढाँचा है जो युवकों को ढाल कर अपने अनुकूल बनाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो समाज कुण्ठित है प्रगतिशील नहीं है, वहाँ का युवक किस प्रकार कुण्ठा से बचा रह सकता है। अतः युवक एवं समाज परस्पर-निर्भर हैं। एवं परस्पर प्रभावित करते रहते हैं। आज का भारत का समाज इस योग्य नहीं हैं कि वह युवकों को सच्ची शिक्षा उचित रोजगार, उचित पथ-प्रदर्शन एवं प्रगति की उचित दिशा, प्रदान कर इस महान् शक्ति का सदुपयोग कर सके। आज का युवक समाज से जो आशा रखता है समाज वह देने में असमर्थ है। यही कारण है कि युवक वर्ग तथा साथ-साथ उसका समाज कुण्ठित होता जा रहा है।

युवकों में कुण्ठा का एक कारण यह भी है कि समाज में बड़े पैमाने पर पक्ष-पात-पूर्ण निर्णय लिये जा रहे हैं। जातिवाद, धर्मवाद, चचा-भतीजा वाद, भाषावाद सभी ने मिल कर आज समाज को अपने मूल्यों से विचलित कर दिया है। किसी स्थान पर युवकों के साथ लिया जानेवाला निर्णय निश्चय ही किसी न किसी सीमा तक उपर्युक्त तथ्यों से प्रभावित रहता है जिसका परिणाम यह होता है कि युवक वर्ग उपर्युक्त चीजों को ही प्रधानता देने लगते हैं तथा सच्ची योग्यता एवं उसकी प्राप्ति के प्रति वे उदासीन हो जाते हैं और उनकी शक्ति, उनका उत्साह, उनका मनोवल, उनका विकास कुण्ठित हो जाता है तथा उनकी आत्मा मरणासन्न हो जाती है। युवक इन कारणों से जीवन के प्रति, शिक्षा के प्रति एवं अपने तथा समाज के प्रति निराश हो जाते हैं। इस प्रकार की कुण्ठा को दूर करने के लिये वे ही लोग जिम्मेदार हैं जो समाज के पथ-प्रदर्शक एवं अग्रज प्रतिनिधि हैं तथा जो लोग ऊपर लिखे दोषों को सहारा बनाकर अपनी संकुचित राजनीति का विस्तार कर चुनाव आदि में सफल होने का प्रयास करते हैं।

अतः अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि युवा पीढ़ी की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुण्ठा तब तक दूर नहीं की जा सकती जब तक युवकों की आशाओं तथा उनको पूर्ण करने के लिये किये गये त्यागों में पूर्ण सामंजस्य नही होगा, जब तक समाज युवकों को उचित पथ-प्रदर्शन देकर उनकी बढ़ती विशाल शक्ति को सन्तुष्ट करने में समर्थ न होगा, युवकों की मूलभूत आवश्यकतायें पूरी नहीं कर सकेगा अर्थात् मानसिक, शारीरिक आध्यात्मिक भूख को शान्त कर सकेगा तथा जब तक समाज अपने आज के कृष्ण कलेवर को श्वेत न कर लेगा. अर्थात् जब तक समाज अपने उन दोषों को दूर न कर लेगा जिनके कारण सामाजिक वातावरण दूषित हुआ है तथा दूषित युवकों को उत्पन्न कर रहा है। अतः जब तक समाज के प्रतिनिधि लोग अपनी जिम्मेदारी नहीं निवाहेंगे और युवकों को भुलावे में रख कर स्वार्थ-सिद्धि-हेतु पथ-प्रदर्शन करते रहेंगे तब तक योग्य युवक तैयार नहीं किये जा सकते, न उन्हें वास्तविक सफलता ही मिल सकती है और न उनकी कुण्ठा ही दूर की जा सकती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निबन्ध सं० ८ महेन्द्र कुमार बंसीलाल गाभावाला

सारांश

युवा पीढ़ी पर राष्ट्र का वर्तमान एवं भविष्य निर्भर रहता है। राष्ट्र के युवक एवं युवतियाँ सद्‌गुण-संपन्न एवं अनुशासनवद्ध रूप में विकसित होकर रचनात्मक दिशा में अग्रसर होते हैं, तो निश्चय ही राष्ट्र के स्वर्णिम सपने साकार हो सकते हैं। साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य वात है कि हर युग व हर देश में युवा वर्ग का आक्रोश एवं असंतोष अन्ततोगत्वा समाज की प्रगति के पथ में बाधक परम्पराओं और रूढ़ियों को छिन्न-भिन्न करता है।

आज हमारा देश भी एक ऐसे ही दौर से गुजर रहा है। विकृत शिक्षाप्रणाली, अंधकारमय भविष्य, समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, करनी व कथनी में अंतर और उपेक्षा आदि अनेक कारणों ने युवा-मस्तिष्क को बेचैन कर दिया है, उनकी महत्त्वाकांक्षाओं को धूलि-धूसरित कर दिया है। युवा आक्रोश परिस्थिति-जन्य है।

आज की आवश्यकता है, इस समस्या को न्यायोचित ढंग से विश्लेषित कर, उसकी जटिलता को कम कर समाधान करना। सर्वप्रथम शिक्षा को व्यावहारिक बनाने की आवश्यकता है, जो मनुष्य के सोये हुए, अल्पविकसित मानस को जगा सके, विकसित कर सके। साथ ही, यह सरस एवं मस्तिष्क की तीक्ष्णता को परखने वाली होनी चाहिये। विद्यार्थी को रुचि अनुसार विषय-चुनाव करने में सहायता दी जानी चाहिये।

अनुशासित युवावर्ग रूपी उत्पादन केवल विद्यालय एवं कालेजों रूपी फैक्ट्री में संभव नहीं। इसके लिये जिम्मेदार अभिभावक एवं स्वस्थ पारिवारिक वातावरण भी इष्ट है।

चातुर्दिक नैतिक पतन का वातावरण व्याप्त है। उपद्रव,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भ्रष्टाचार एवं सत्तालोलुपता से भरे गंदे वातावरण में यदि युवा-वर्ग पथ-भ्रष्ट हो जाता है तो इसमें आश्चर्य किस बात का ?

आज मां सरस्वती का सच्चा अनुचर, उसके मंदिर का पुजारी असहाय है, उसे वह दर्जा प्राप्त नहीं जो उसे मिलना चाहिये। तो फिर मां सरस्वती के भवनों का कल्याण कैसे संभव है ? अध्ययन का कार्य पूर्ण होने पर व्यक्ति में इतनी योग्यता होनी चाहिये कि वह उचित ढंग से जीवन-यापन कर सके, अन्यथा शिक्षा का फायदा ही क्या ?

अंत में आज आवश्यकता है कि युवा-पीढ़ी अपनी शक्ति को पहचाने। शारीरिक और मानसिक ही नहीं, आध्यात्मिक भी। आध्यात्मिक शक्ति ही वास्तव में हमारा मनोवल नियंत्रित करती है और हमें अच्छे और बुरे कार्मों में भेद बतलाती है। आध्यात्मिक शक्ति ही युवा-पीढ़ी के सुपुप्त मानस को जागृतावस्था में ला सकती है।

यदि "युवा-पीढ़ी" और "कुण्ठा" दोनों शब्दों को संक्षेप में समझ लिया जाय तो वह इस सन्दर्भ में अनुचित नहीं होगा।

"युवा-पीढ़ी" से हमारा तात्पर्य राष्ट्र के युवक एवं युवतियों से है। युवाकाल अध्ययन-काल है। यद्यपि ज्ञानार्जन जन्म से लेकर मृत्यु तक चलता रहता है परन्तु फिर भी सामान्य रूप से सुव्यवस्थित व सुसंगठित रूप में विद्याध्ययन वाल्यावस्था और युवावस्था में ही होता है। युवावस्था को निश्चित रूप से आयु की सीमा में बाँध देना तो असम्भव है तथापि १५ से ३० वर्ष के बीच की आयु को युवाकाल कह सकते हैं। युवावर्ग मुख्यतः कॉलेज व विश्व-विद्यालय के विद्यार्थी के रूप में दृष्टिगोचर होता है। कुछ विद्याध्ययन पूर्ण कर या परिस्थितिवश बीच में ही छोड़कर जीविकोपार्जन में भी संलग्न हो जाते हैं या संलग्न होने का प्रयास करते हैं।

दूसरा शब्द है—"कुण्ठा" जिसका अर्थ साधारणतः निराशा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या नैराश्य से लगाया जाता है। जब बार-बार प्रयास करने पर भी हमें सफलता प्राप्त नहीं होती और न ही सफलता प्राप्त होने के लक्षण दीखते हैं, तो हम निराश हो जाते हैं। निराशा की अवस्था में हम उदासीन (inactive) हो जाते हैं, प्रयास करना छोड़ देते हैं। नैराश्य और कुण्ठा दोनों शब्दों में अन्तर थोड़ा सा है। कुण्ठित अवस्था नैराश्य के बाद की अवस्था है। नैराश्य की अवस्था अधिक समय रहने पर कुण्ठा का आगमन होता है। कुण्ठा में मन उदासीन नहीं रहता, वह सक्रिय हो जाता है। परन्तु उसकी क्रियाशीलता की दिशा रचनात्मक (Constructive) न होकर, विध्वंसात्मक (Destructive) होती है। निराशा उतनी भयावह नहीं है जितनी कुण्ठा। अतः हम कह सकते हैं कि कुण्ठा मस्तिष्क की वह दशा है जब मनोबल तो टूट ही जाता है और साथ ही साथ वह विध्वंसात्मक दिशा की ओर अपने चरण बढ़ाता है।

युवा-पीढ़ी राष्ट्र की रीढ़ है; मुख्य आधार है। विद्यार्थी राष्ट्र की अमूल्य निधि है। युवावर्ग पर ही राष्ट्र का वर्तमान एवं भविष्य निर्भर रहता है। यदि राष्ट्र के युवक एवम् युवतियाँ सद्‌गुण-सम्पन्न तथा अनुशासनबद्ध रूप में विकसित होकर रचनात्मक दिशा में अग्रसर होते हैं, तो निश्चय ही राष्ट्र के स्वर्णिम स्वप्न साकार हो सकते हैं। इसके विपरीत यदि युवा-पीढ़ी बिगड़ जाती है, तो उस देश का वर्तमान ही नहीं, भविष्य भी बिगड़ जाता है और राष्ट्र के सारे सपने धूलि-धूसरित हो जाते हैं।

साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि हर युग में व हर देश में क्रांति युवावर्ग के माध्यम से ही अपना विकराल स्वरूप प्रकट करती है। युवावर्ग का आक्रोश एवं असंतोष अन्ततोगत्वा समाज की प्रगति के पथ में बाधक परम्पराओं और रूढ़ियों को छिन्न-भिन्न करता है और प्रगति का मार्ग प्रशस्त करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज हमारा देश भी एक ऐसे ही दौर से गुजर रहा है। आज की हमारी युवा-पीढ़ी कुण्ठित हो चुकी है; रास्ता भटक चुकी है। आज का विद्यार्थी विचित्र जीव है। न तो उसे अध्यापक समझ पा रहे हैं और न अभिभावक ही; न उसे अपनी चिंता है और न समाज की; न उसे मानमर्यादा की चिंता है और न माता-पिता की लज्जा है और न गुरुजनों की; न उस पर शासन का नियंत्रण है और न जनता का; न उसे पुलिस का भय है और न न्याय का। "सादा जीवन और उच्च विचार" के स्थान पर वह "खाओ, पीओ, और मौज करो" वाले सिद्धांत का प्रणेता है। आज का विद्यार्थी क्या कर सकता है, यह पूछने का समय अब नहीं रहा। इस समय तो प्रश्न है कि आज का विद्यार्थी क्या नहीं कर सकता ? वह जघन्य और घृणित कुकृत्यों में भी संलग्न है। डकैती और हत्याएँ भी उसके कार्यक्रम के अंग बनते जा रहे हैं।

तो फिर सवाल उठता है—क्या हमारी युवा पीढ़ी निकम्मी व निष्प्राण हो गयी है ? युवा पीढ़ी को निकम्मी मान लेना हमारी सबसे बड़ी भूल एवं सही अर्थों में पागलपन ही होगा। तो फिर पुनः सवाल उठता है—कुण्ठा आयी कहाँ से ? जैसे एक छोटे से पौधे की उत्पत्ति के लिये भी बीज-हवा-पानी-प्रकाश-खाद आदि की आवश्यकता होती है या दूसरे शब्दों में अनुकूल वातावरण चाहिये, ठीक उसी प्रकार विद्यार्थी की कुण्ठा के लिये भी अनेक कारण ज़िम्मेदार हैं। युवा पीढ़ी की कुण्ठा के लिये प्रमुख रूप से गैरजिम्मेदार अभिभावक, दोषपूर्ण एवं अव्यावहारिक शिक्षा-प्रणाली, बेरोजगारी, समाज में चतुर्दिक् व्याप्त भ्रष्टाचार, सत्तालोलुपता तथा अव्यवस्था एवम् युवा पीढ़ी की उपेक्षा तथा उनके प्रति सहानुभूति का अभाव आदि कारण जिम्मेदार हैं।

वास्तव में युवा-मस्तिष्क जमीन पर विचरण नहीं करता, उसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन की बड़ी-बड़ी उड़ानें होती हैं; बड़ी-बड़ी महत्त्वाकांक्षाएँ होती हैं। वह कुछ कर दिखाना चाहता है। उसके पास समय है, शक्ति है और उत्सुकता है। परन्तु जब वह जीवन के असली रूप को देखता है—अपने कुछ बड़े भाइयों का नौकरी धंधे के लिये मारे-मारे फिरना, समाज में अबाध गति से होने वाला भ्रष्टाचार का ताण्डव नृत्य, उसके प्रति समाज में उपेक्षा का भाव तथा अन्य गंदगी से उसका मन ऊब जाता है; वह एक स्वस्थ वातावरण में जीना चाहता है, परन्तु वह वातावरण कहाँ ? उसे अपनी सारी आकांक्षाएँ केवल मृग-मरीचिका के समान लगती हैं; उसे अपना भविष्य अंधकारमय और नैराश्यपूर्ण मालूम होता है। सबसे बड़ी विडम्बना है कि न तो उसे रास्ता दिखाई देता है और न कोई उसे दिखाता है। निराशा की यह घुटन असह्य होने पर युवक-वर्ग में असंतोष और आक्रोश की आग भड़क उठती है; युवावर्ग आंदोलित हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि युवा-पीढ़ी की कुण्ठा परिस्थिति-जन्य है।

मेरे विचार से सबसे पहला कारण गैरज़िम्मेदार अभिभावक हैं। दुर्भाग्यवश निर्दोष शिशु को प्रारंभ से ही उपेक्षा ही मिलती है। डिब्बों का दूध और दाइयों की रखवाली प्राप्त होती है। आज की संभ्रात (?) नारी न तो अपने शिशु का पोषण करना चाहती है और न लालन। उसका पढ़ा-लिखा बाप पैसे के पीछे, पद के पीछे पागल है, उसे भी अपने शिशु के विकास में योगदान करने का इतना अवकाश नहीं। उन्हें जिद्दी बना दिया जाता है और आगे चलकर शिशु-विहारों (Nurseries) में झोंककर अपना बोझ हल्का कर लेते हैं। आगे भी उन्हें इतनी फुरसत नहीं कि वे देखें कि उनका शिशु ठीक से विकसित हो रहा है या नहीं ? उनकी आँखें तब खुलती हैं जब उनका बालक उनकी अवज्ञा करता है या असंतुलित रूप से विकसित होता है। वे चिन्तित हो उठते हैं और पुनः शिक्षकों की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बदनामी कर किनारे हो जाते हैं। इसके विपरीत अनपढ़ अभिभावक अपनी असमर्थता के कारण शिशु का विकास नहीं करा पाते। प्रारंभ से ही वे डाँट-फटकार जौर मार-धाड़ पर उतर आते हैं जिससे शिशु मानसिक रूप से उद्दंड बन जाता है। अनपढ़ अभिभावक अपने वालक के विकास को संतुलित करने की क्षमता ही नहीं रखते। यही क्रम अंत तक चलता है, चाहे फिर वह विषयों का चुनाव हो या नौकरी का। इससे युवा-मस्तिष्क की प्रतिष्ठा को आघात पहुंचता है। आवश्यकता है कि युवा-वर्ग को अभिभावक मित्र समझें। उनके विचारों को सहानुभूति-पूर्वक समझें और उनका मार्गदर्शन करें। साथ ही स्वस्थ गृहस्थाश्रम की स्थापना भी इष्ट है।

दूसरा कारण है जर्जर शिक्षण तन्त्र। शिक्षा का उद्देश्य है मनुष्य को मनुष्य वनाना, उसमें आत्मनिर्भरता की भावना भरना तथा चरित्र निर्माण करना। शिक्षा से मनुष्य को अपने कर्तव्य का वोध होता है और उसकी आन्तरिक एवं वाह्य शक्तियां का विकास होता है। परन्तु आज शिक्षा केवल उदरपूर्ति का साधन है। और शायद सच्चे अर्थों में वह भी नहीं।

आज अध्ययन अध्यापन के वातावरण का अभाव है। एक-एक कक्षा में ४० से १५० तक विद्यार्थी ठूंस दिये जाते हैं। अध्यापक के लिये यह सिरदर्द वन जाता है। वर्षभर पढ़ाने के वाद भी अध्यापक अपने सव विद्यार्थियों के चेहरों से और नाम से अपरिचित सा रहता है तो फिर व्यक्तिगत सम्पर्क (Personl Touch) और प्रभावोत्पादकता का तो प्रश्न ही नहीं उठता। न ही वे एक-दूसरे की समस्या को समझ ही पाते हैं। अतः आज आवश्यक है छात्रों की संख्या ८-१० तक सीमित रहे। इससे परोक्ष रूप से वेरोजगारी की समस्या को सुलझाने में भी कुछ हद तक सहायता मिलेगी, विशेषतः शिक्षितों की वेरोजगारी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज शिक्षा में नैतिक व चारित्रिक शिक्षा का पूर्णतः अभाव है। देश में अनुशासन की पुनः स्थापना करने के लिये यह आवश्यकता है कि शिक्षा प्रणाली में नैतिक और चारित्रिक शिक्षा का थोड़ी-बहुत मात्रा में स्थान होना चाहिये।

आज शारीरिक दण्ड अवैध है। वास्तव में बाल्यावस्था अबोधावस्था है। बालक पहले तो भय से ही अपने कर्तव्य का पालन करता है। शारीरिक दण्ड का पूर्ण अधिकार अध्यापक को होना चाहिये।

आज विद्यार्थी को दैनिक कार्य न मिलने के कारण या उसकी अपर्याप्तता के कारण उसे फालतू समय मिल जाता है जो उसे पथभ्रष्ट करने में सहायक हैं। यदि किसी हद तक दैनिक कार्य दिया भी जाता है तो वह भी अर्थहीन ही होता है क्योंकि बेचारे अध्यापक अति व्यस्ततावश उसके साथ न्याय नहीं कर पाते।

आज की शिक्षा नींव को दृढ़ बनाने में असफल सिद्ध हुई है। नींव की दृढ़ता पर ही प्रासाद की चिरस्थायिता और दृढ़ता निर्भर करती है। जब आज का विद्यार्थी हाईस्कूल स्तर तक पहुँचता है तो नीचे की इंटें हिली रहती हैं। इसका प्रमुख कारण है दोषपूर्ण परीक्षा-नीति। आज की परीक्षा-प्रणाली में उत्तीर्ण होने के लिये ३३% अंकों की आवश्यकता होती है; १० में से ५ प्रश्न करने होते हैं और असफल रहने पर प्रमोशन भी दिया जाता है। मेरा विश्वास है कि यदि गणित के १० में से २ अध्याय भी पढ़े जायें तो उत्तीर्ण होना मुश्किल नहीं है और यदि [illegible] भी गये तो आर्थिक या सामाजिक प्रभाव से प्रमोशन का Safety Valve (सुरक्षा-बिन्दु) बचा रहता है। इससे उसे विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं मिलता। आगे चलकर विद्यार्थी लड़खड़ाने लगता है। इससे वह कक्षा की पढ़ाई समझ नहीं पाता और क्लास में उसका मन भी नहीं लगता। कभी-कभी वह दूसरों का भी अहित कर देता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। वार्षिक परीक्षा के समय वह नकल करने पर बाध्य होता है; 'गैस-पैपर्स' पर और चुने हुए प्रश्नों (Selected Questions) का आधार लेकर उन्हें रटकर परीक्षा देता है। इस प्रकार कमजोर नींव के कारण उसे भविष्य में भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता। आज आवश्यकता है कि विद्यार्थी के मस्तिष्क की तीक्ष्णता को परखने वाली परीक्षा नीति हो। मेरे विचार से गणित जैसे ठोस विषय के लिये १० में से १० प्रश्न करना आवश्यक होना चाहिये और उत्तीर्णता के लिये ८०% अंक होने चाहिये। Theory Papers सिद्धान्त-सम्बन्धी विषयों में भी प्रश्नों का चुनाव नहीं होना चाहिये। और उत्तीर्णता के लिये ५०–६०% अंक होने चाहिये।

हमारे अति दुर्भाग्य की बात है कि आज शिक्षा-मन्दिरों को भी हमने व्यावसायिक अड्डों में बदल दिया है। प्रवेश, परीक्षा में उत्तीर्णता और पाठ्य-पुस्तकों के चयन में भी हमने धन को सब कुछ मान लिया है। आज देश में शिक्षा का स्तर, पाठ्य-क्रम आदि अनेक विषयों की अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग व्यवस्था है। मेरे विचार से बैंक के राष्ट्रीयकरण की आवश्यकता उतनी नहीं है और न थी, जितनी शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की है और थी। आज यदि एक विद्यार्थी के अभिभावक का स्थानांतरण (Transfer) होता है तो विद्यार्थी को नये स्थान पर काफ़ी हद तक नये सिरे से प्रारम्भ करना पड़ता है। उसका बाल-मानस समायोजन (Adjustment) में ही फँस जाता है और प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। दूसरा प्रश्न है भाषा का। यह सभी विद्यार्थियों को ग्रसता है, चाहे उसके अभिभावक का स्थानांतरण हो या नहीं। प्रारम्भ में अर्थात् प्राइमरी विद्यालयों में प्रांतीय भाषा में पढ़ाई होती है—जैसे गुजरात में गुजराती में; महाराष्ट्र में मराठी में; बंगाल में बंगाली में आदि। हाईस्कूल स्तर में भी कहीं-कहीं उसी भाषा में अर्थात् प्रांतीय

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाषा में या हिन्दी में। परन्तु कालेज की शिक्षा, मुख्यत: उच्चस्तरीय अंग्रेजी में होती है। इसलिये भाषा के परिवर्तन के कारण भी काफी नुकसान (विद्यार्थी एवं राष्ट्र का) होता है। आवश्यकता है, गम्भीरता पूर्वक विचार करने की और एक भाषा का चुनाव किया जाना चाहिये। हमें हिन्दी पर बल देना है; वह हमारी राष्ट्रभाषा है; उसे सीखना चाहिये परन्तु एक भाषा के रूप में न कि शिक्षा के माध्यम के रूप में। राजनीतिज्ञों को छात्रों के भविष्य से और विकास से खिलवाड़ करने का कोई अधिकार नहीं है।

आज शिक्षक-वर्ग की दुर्दशा है। आज माँ सरस्वती का सच्चा अनुचर, उसके मन्दिर का पुजारी असहाय है। तो फिर माँ सरस्वती के भक्तों का कल्याण कैसे सम्भव है? उसे वह दर्जा प्राप्त नहीं, जो उसे मिलना चाहिये। उसे समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं। आज प्राइमरी के अध्यापक को १००-१५० रु० प्रतिमाह मिलता है। उससे अच्छा तो गँवार रिक्शावाला कमा लेता है। भूखे और असहाय अध्यापक से यह कैसे आशा की जा सकती हैं कि वह अन्तःकरण से अध्यापन कार्य करें; अपनी जिम्मेदारी का वहन करे? आज आवश्यकता है अध्यापक वर्ग को आर्थिक-चिन्ता से मुक्त करने की, जिससे वह एकाग्रचित्त होकर राष्ट्र की अमूल्य सम्पदा को सुसंस्कृत, परिष्कृत, व परिमार्जित कर सकें।

तीसरा कारण है बेरोजगारी। एक उक्ति है:

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम।।

किन्तु आज के संदर्भ में यह उक्ति ठीक नहीं बैठती। अपने लिये, अपने परिवार के लिये तथा समाज और राष्ट्र के लिये परिश्रम और पुरुषार्थ आवश्यक हैं; जीविकोपार्जन अनिवार्य है। एक अनुमान है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि देश में १७-१८ लाख व्यक्ति बेकार हैं, जिनमें मुख्यत: शिक्षित हैं। कैसी विडम्बना है कि एक ओर राष्ट्र के साधनों का दोहन नहीं हो पाता व दूसरी ओर बेरोजगारी। इससे हमारे देश पर दोहरी मार पड़ती है। एक ओर खुराना जैसी अनेक उच्च प्रतिभायें वाहर चली जाती हैं, जिनके ज्ञान से राष्ट्र लाभान्वित नहीं हो पाता। दूसरी ओर हमारी अर्थव्यवस्था पर भी विपरीत असर पड़ता है। इसके अतिरिक्त यही युवावर्ग में असंतोष की लहर फैला देता है क्योंकि मंहगी शिक्षा के बाद भी सुनिश्चित भविष्य की गारंटी नहीं है। वे आवेश में आकर विध्वंसक कार्यों में लग जाते हैं। आज यह अति आवश्यक है कि रोजगार—व्यापार, उद्योग और नौकरी की संभावनाओं को शीघ्रता से व संतुलित रूप से विकसित किया जाय।

चौथा कारण है समाज में चतुर्दिक व्याप्त भ्रष्टाचार। आज समाज में भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर है, नैतिक मूल्यों का स्तर न्यूनतम सीमा तक पहुंच चुका है। आज उपद्रव, पदलोलुपता, भाई-भतीजावाद, जातिवाद, प्रांतवाद, कथनी और करनी में अंतर, रिश्वत आदि भ्रष्ट व्यवहार समाज में घर कर चुके हैं। आज ईमानदार व्यक्ति के लिये जीना दूभर हो गया है। कार्बन डाईआक्साइड गैस से भरे मर्तबान (Gas jar) में मोमबत्ती के जलने की संभावना है परंतु इस दूषित, भ्रष्ट और कलुषित वातावरण में युवापीढ़ी पथभ्रष्ट न हो, यह शायद असंभव है।

यही नहीं, उपेक्षा युवावर्ग का मुख्य भोजन है। अभिभावक अध्यापक और समाज से उसे केवल उपेक्षा का ही महाप्रसाद मिलता है। उसकी व्यथा को सहानुभूतिपूर्वक सुनने वाला ही कोई नहीं तो फिर सहायता की कौन कहे ?

अंत में उपसंहार के रूप में मैं यही कहूंगा—आज आवश्यकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि युवापीढ़ी अपनी शक्ति को पहचाने। शारीरिक व मानसिक ही नहीं, आध्यात्मिक भी। आध्यात्मिक शक्ति ही वास्तव में हमारा मनोबल नियंत्रित करती है और हमें अच्छे और बुरे कामों में भेद बतलाती है। आध्यात्मिक शक्ति ही वास्तव में युवा-पीढ़ी के सुषुप्त मानस को जागृतावस्था में ला सकती है; उसे नया जीवन दे सकती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विचार-विमर्श

राजीवरंजन सिंह

कुण्ठा का सबसे बड़ा कारण है असीमित होड़। होड़ से द्वन्द्व और द्वन्द्व से कुण्ठा उत्पन्न होती है। आज मनुष्य ने विश्वधारा में से अपने को अलग कर लिया है, इसलिये उसका दायरा बहुत छोटा हो गया है।

कुण्ठा के लिये शिक्षापद्धति को दोष दिया जाता है, किन्तु शिक्षा साधन है या साध्य? यदि साध्य है तो वह दोषी है, यदि वह साधन है तो दोषी नहीं है क्योकि साधन का गलत उपयोग हम कर रहे हैं। शिक्षा तो भले-बुरे का विवेक जागृत कर सकती है, बोध नहीं दे सकती, उस विवेक में से व्यक्ति को अपने सन्दर्भ के अनुसार स्वयं निर्णय करना पड़ता है।

अभिभावकों को भी दोष कैसे दें? युवापीढ़ी को क्या दिखाई नहीं देता कि अभिभावक स्वयं असीमित होड़ में चले जा रहे हैं?

रोजगार के साथ कुण्ठा का सम्बन्ध बहुत अधिक जोड़ना उचित नहीं क्योंकि उच्च वर्ग के युवक आज निम्न और मध्य वर्ग के युवकों से अधिक कुण्ठित हैं।

स० प० कुमार

सन्तोष से जड़ता आती है और विकास रुक जाता है।

किसी भी वर्ग में छात्रों की संख्या आठ-दस से अधिक न हो, ऐसी व्यवस्था इस देश में असंभव है। उसका उद्देश्य तो अध्यापक और विद्यार्थियों में व्यक्तिगत सम्पर्क बढ़ाना ही है। किन्तु कृत्रिम रूप से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संख्या का नियोजन करने मात्र से वह उद्देश्य सफल नहीं हो सकता। उसके लिये दृष्टिकोण का परिवर्तन आवश्यक है।

शान्तनु गुप्त

मनुष्य जीवन का लक्ष्य तो मोक्ष-प्राप्ति है। तो फिर उसमें असन्तोष को कहाँ स्थान है ?

महेन्द्र गाभावाला

शिक्षा साधन भी है साध्य भी लक्ष्यप्राप्ति के लिये साधन दोष-मुक्त होना चाहिए।

प्यार से विवेक जागृत हो जाय तो शारीरिक दण्ड आवश्यक नहीं, किन्तु यदि विवेक जगाने के लिये वह अनिवार्य हो जाय तो प्यार के साथ उसे ग्राह्य मानना होगा।

रामहंस पाठक

कुण्ठा तो निष्क्रियता की स्थिति है उसमें प्रेरक शक्ति कहाँ से आयेगी ? वह तो न निर्माण की ओर गतिशील है, न विनाश की ओर।

मैं प्राइमरी स्कूल में शिक्षक रह चुका हूँ। अपने अनुभव से कह रहा हूँ कि यदि अध्यापक मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर काम करे तो शारीरिक दण्ड की आवश्यकता जरा भी नहीं है। अब तक शिक्षण विषय-प्रधान हुआ करता था, आज का बालक-प्रधान है।

श्रीकान्त दुबे

कुण्ठा दूर करने के लिए शिक्षण को Job-oriented होना चाहिए यह सभी कहते हैं किन्तु Job कहाँ से तैयार होंगे ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्द्रसेन सिंह

मशीनों का उपयोग न बढ़ाया जाय तो अधिक लोगों को रोज़गार मिल सकता है, हमारे देश के सन्दर्भ में स्वयं-चालित यन्त्र का बहुत उपयोग उचित नहीं।

स० क० काक

इस गरीब देश में कुण्ठा का कारण यदि गरीबी है तो अमीर देशों में अमीरी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विमलाजी का प्रवचन

(विचार-धिमर्श और वाद-विवाद)

विचार-विमर्श (Discussion) और वाद-विवाद (Debate) में अन्तर है, विचार-विमर्श के लिए आनम्यता (Pliability) चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्रयोगात्मकता (Tentativeness) चाहिए। "भाई मुझे ऐसा लगता है, इस विषय की तरफ देखने की मेरी यह दृष्टि है।" ऐसा ही कहा जा सकता है, उसमें दावा या दृढ़ कथन (Assertion) या सुनिश्चित कथन (Categorical Statement) वहुत कम हो सकते हैं। अपनी समझ के विषय में, अपने दर्शन के विषय में दृढ़ता हो सकती है, लेकिन जब यह तय करते हैं कि २५ या ५० आदमी मिल कर एक चीज को देखना चाहते हैं तो हर आदमी तो अद्वितीय नहीं हो सकता। अपने जीवन-क्रम से, अपने दृष्टि-कोण से, अपनी वृत्ति से, वंशानुक्रम (Inheritance) से ही व्यक्ति उसे देखेगा। इसलिए वह एक कोण से देखेगा, तो दूसरा व्यक्ति किसी दूसरे दृष्टिकोण से देखेगा। एक ही विषय को अनेक दृष्टिकोणों से, अनेक वृत्तियों के माध्यम से देखने का सुयोग विचार-विमर्श में रहता है। वाद-विवाद में क्या होता है—कि आप ने यह कहा तो इसका यह जवाब है।

विचार-विमर्श में एक दूसरे को श्रोता (Audience) समझ कर बोलना नहीं होता है। विचार-विमर्श में सभी सहभागी हैं लेकिन श्रोता कोई नहीं। मान लीजिए कि मेरे निबन्ध के बारे में किसी ने कुछ कहा। तो कहना चाहिए कि यह प्रश्न उठाया गया है, मेरा आशय शायद स्पष्ट नहीं हुआ, इसलिए उसे स्पष्ट कर दूं। स्पष्टीकरण या विशदीकरण या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रवर्धन (Amplification, elaboration, elucidation) एक अलग चीज है, लेकिन यदि हम इस बात पर उतर आयें कि आप ने यह कहा, आप समझे नहीं हैं, इसका जवाब यह है—तो वाद-विवाद हो सकता है, लेकिन विचार-विमर्श नहीं। हो सकता है अन्त में हम एक-दूसरे को समझें भी नहीं। तो वहां छोड़ देना चाहिए। विषय को अनेक दृष्टिकोणों से प्रस्तुत या उद्घाटित (Expose) करके छोड़ देना, यह विचार-विमर्श की मर्यादा है।

परिषदों में प्रस्ताव पारित करने होते हैं, इसलिए वहाँ यह नहीं चल सकता, वहाँ केवल विचार-विमर्श नहीं होता। विश्लेषण (Analysis) के बाद संश्लेषण (Synthesis) करना पड़ता है। उस संश्लेषण में से प्रस्ताव (Resolution) पर पहुँचा जाता है। और फिर उसके पक्ष और विपक्ष में चर्चा के बाद एक सामुदायिक निर्णय के रूप में कोई मसौदा (Draft) पारित किया जाता है। वैसा तो कुछ अपने को यहाँ करना नहीं है। यहाँ तो केवल विषय को देखना है। अस्तु।

कुण्ठा और उसका निराकरण

आज कहना चाहती हूँ कि कल थोड़ी सी निराशा मैंने व्यक्त की थी निबन्ध सुनने के बाद, चर्चा के बाद। आज मैं बधाई देना चाहती हूँ कि जो निबन्ध सुबह पढ़े गये हिन्दी और अंग्रेजी में, और जिस लगन के साथ भिन्न दृष्टिकोणों से विषय को देखा गया, उसे देख कर खुशी हुई। विषय यह था कि यह कुण्ठा जो है चित्त की, बुद्धि की, जीवन की सार्वत्रिक कुण्ठा है, उसको कैसे दूर करें। कुण्ठा का जो विश्लेषण आज सुबह निबन्धों में हुआ है, उसमें देखा गया कि अभिभावकों की जिम्मेदारी कहाँ तक है, समाजधुरीणों का, अग्रणियों का दायित्व कहाँ तक है, अर्थ-रचना में कौन सी त्रुटियाँ है जो कुण्ठा पैदा करती हैं राष्ट्र के अर्थ-संयोजन और शिक्षण-संयोजन में सामंजस्य न होने के कारण, अनुबन्ध न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होने के कारण किस प्रकार बेरोजगारी पैदा होती है इत्यादि विषय लिये गये ।

किन्तु विषय का उत्तरार्ध यह है कि कुण्ठा को दूर कैसे करें, अब कुण्ठा को दूर करने के विषय में भी मुद्दे तो बड़े सुन्दर समर्पक रक्खे गये । उनकी चर्चा में मैं उतरूँगी नहीं । कहाँ तक उनमें सुस्पष्टता, विशदता, सुरेखता रही, शब्दांकन में कहाँ तक सौष्ठव रहा, उसमें जाना नहीं है । यह पाँच दिन का स्वाध्याय शिविर होने पर भी आप देख रहे हैं, कि आप को और मुझको समय की कितनी कमी महसूस हो रही है । पूरी तरह से विषय को खोल-खोल कर देख नहीं पाती, पूरी बात कर नहीं पाती ।

आप लोगों ने देख लिया कि आज संसार में सर्वत्र कुण्ठा है । गरीब देशों में गरीबी के कारण और अमीर देशों में अमीरी के कारण कुण्ठा है । कारण भिन्न हो सकते हैं लेकिन कुण्ठा तो है ही । बच्चों में है, युवकों में है, प्रौढ़ों में है । सभी स्तरों में वह है, इतना तो देख लिया । कारण भिन्न है; बहिरंग में भिन्नता है, बाह्य संदर्भ में भिन्नता है । योरोप, अमेरिका, एशिया, अफ्रीका आदि के समुदायिक जीवन के बाह्य संदर्भ भिन्न हैं, सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक संदर्भ अलग हैं । संदर्भों की भिन्नता के कारण उपजने वाली कुण्ठा कैसे दूर हो यह एक विषय है । और उस कुण्ठा को जन्म देने के लिए अन्तर में जो जड़ें हैं, अक्षमता जो भीतर पड़ी हुई है, उस अक्षमता को कैसे दूर करें—ये दो अंग हो सकते हैं इस प्रश्न के । कुण्ठा का दोनों मोर्चों पर से निराकरण करना है, एक तो बहिरंग के संदर्भ में से और दूसरा अन्तरंग में से यानी मानव के चित्त में से ।

जो घोर संकट है यह व्यक्ति-चेतना में है । उस व्यक्ति-चेतना में से कुण्ठा कैसे दूर करें यह एक अंग हो गया और सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक, संदर्भ में से कैसे दूर करें यह दूसरा अंग हो गया । इन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों में से किसी भी एक को छोड़ देंगे तो विचार एकाङ्गी होगा। भीतर और बाहर दोनों को लेकर विचार करेंगे तो सम्यक् दर्शन होगा। जो देश इनमें से किसी एक को छोड़ देते हैं, व्यक्ति को समाज से अलग कर देते हैं, बहिरंग को अन्तरंग से अछूता समझ लेते हैं, वे व्यक्ति या समाज में कोई परिवर्तन नहीं ला सकते। आप लोगों के निबन्धों से, चर्चा से फलित तो यह होता है कि समग्र क्रांति (Total Transformation) की अनिवार्यता है।

आज कुण्ठा मानव चित्त पर बुरी तरह टकरा रही है और यह एक बड़ी सुन्दर चुनौती है मानव की सर्जनात्मक प्रतिभा के समक्ष।

पहली बात तो यह है कि जब तक युवा-वर्ग भारत में हो या भारत के बाहर देशों में हो, प्रौढ़ों की तरफ यदि मार्ग-दर्शन की अपेक्षा से देखेगा, तब तक समग्र क्रांति आना असंभव है। प्रौढ़ों में अभिभावक शामिल हैं, शिक्षक शामिल हैं, समाज-नेता शामिल हैं, देशों के शासक शामिल हैं। इसलिए नहीं कि वे बुद्धिशाली नहीं, इसलिए नहीं कि वे सब दुष्ट हैं, युवकों के प्रति उन्हें कोई स्नेह नहीं हैं, बल्कि इसलिए कि उनकी बुद्धि अब ठिठक गई है। विज्ञान और यंत्र-विज्ञान ने जो नया संदर्भ खड़ा कर दिया है उसमें जीने की तैयारी उनकी नहीं है। उनके सोचने के ढाँचे, ढर्रे पुराने पड़ गये हैं। उनके मूल्य, उनके शारीरिक और मानसिक व्यवहार की पद्धतियाँ, उनके प्रतीक सभी पुराने पड़ गये हैं और वर्तमान संदर्भ के साथ उनका कोई अनुबन्ध नहीं रह गया है। वे चाहे धर्मोपदेशक हों, आध्यात्मिक गुरु हों, या राज्य-शासक हों।

इस सत्य को युवा पीढ़ी नहीं समझेगी तो रास्ता नहीं निकलेगा, क्योंकि मन में कहीं न कहीं यह अभिलाषा पड़ी रहेगी कि कोई नेता खड़ा होगा और हमें रास्ता बतायेगा, कोई संगठन कर देगा। कोई आन्दोलन खड़ा कर देगा; और उस युवक आन्दोलन के नीचे खड़े होकर फिर हम काम करेंगे। किसी के पास नक्शे या योजना तैयार नहीं हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इक्के दुक्के विचार मिलेंगे। साहित्यिकों के साहित्य में, उपन्यासों में, निवन्धों में, सिनेमा में भी कहीं इशारे मिल जायेंगे, क्योंकि वह तो प्रतिविम्व है। जो शासक समझदार होंगे और अपनी असमर्थता समझ गये होंगे कि हमारे पास शक्ति है लेकिन शासन नहीं कर सकते, जो समझ गये होंगे कि सत्ता और सम्पत्ति की शासन करने की क्षमता, समाप्त हो चुकी है, उनके वक्तव्यों में कभी-कभी कुछ झाँकी मिल जायगी, लेंकिन मेरा दुःख यह है कि कम से कम इस देश की युवा पीढ़ी वड़ों की ओर देखना नहीं छोड़ती। देखते हैं कि कहीं से कुछ मिलेगा।

मैं वहुत नम्रता से यह कहने आयी हूँ कि कहीं से कुछ नहीं मिलने वाला है। आशा छोड़ो, अपने पाँव पर खड़े होकर अपना नेतृत्व अपने में से खड़ा करना होगा। राजनैतिक पक्षों से वह नहीं मिलेगा। उनके पास जो कार्यकर्ताओं की जमात है, वह पुरानी पड़ गई है, वासी हो गई है, इस तथ्य को हम क्यों नहीं पहचानते? सरकारी हो, गैर सरकारी हो, राजनैतिक हो, उनके पास जो कार्यकर्ता हैं उनके दिमाग १५-२०--२५ साल पहले के बने हैं वे सार्वजनिक जीवन में जातीय भेद के निराकरण की वात करेंगे और घर में जाकर चमार को नहीं आने देंगे, स्त्री और पुरुष की समता की वात करेंगे और घर में पत्नी को स्वाधीनता नहीं दे सकेंगे। ऐसे अन्तर-विरोधों से छिन्न-भिन्न जिनका व्यक्तित्व है, ऐसा नेता-वर्ग मार्ग दर्शन करेगा, इसकी आशा आप छोड़ दें। तभी युवा पीढ़ी में से नई सर्जनात्मक शक्ति जागृत होगी, तव तक नहीं।

अव तो निष्क्रियता (Passivity) है, आत्मदया है कि देखो इन वड़े लोगों ने हमारे लिए क्या पैदा करके रक्खा है। एक प्रकार से पूर्ण मानसिक निर्भरता है। मैंने आप की सव बातें यथार्थ रूप से मान लीं कि अभिभावकों, शिक्षकों, शिक्षण संस्थानों और नेताओं के कारण कितने दोष और त्रुटियाँ बचपन से रह गयी हैं। आप की इन सब बातों पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आँख बन्द कर हस्ताक्षर कर दूं इतनी मेरी सहमति है। लेकिन आगे ? कुण्ठा दूर करने के लिए बाहर से मार्ग-दर्शन की आशा जब छूट जायगी तब कम से कम विश्वविद्यालयों के युवकों को इकट्ठा होना पड़ेगा। जब कभी राष्ट्र के स्तर पर खड़े होंगे या जागतिक स्तर पर इकट्ठे होंगे वह बात दूसरी है। लेकिन छोटी-छोटी इकाइयों में युवकों को इकट्ठा होना पड़ेगा, संकल्प करना पड़ेगा कि हमारा शोषण हम किसी को करने नहीं देंगे, हमारी स्वतंत्रता में बाधा हम सहन नहीं करेंगे। संविधान जहाँ हमारे पक्ष में खड़ा है, फिर वह शिक्षण संस्था का हो या राष्ट्र का हो, उस संविधान के विरोध में कोई व्यवहार करता है तो हम सहन नहीं करेंगे। शिक्षण संस्थाओं का वातावरण कोई दूषित करता है तो उसे हम वह नहीं करने देंगे। कोई छोटे-छोटे कदम उठाने पड़ेंगे।

संगठन हवा में से पैदा नहीं होता। अमूर्त विचारों या धारणाओं में से कभी प्रतिकार की शक्ति नहीं आती। प्रतिकार के लिए कोई न कोई कदम उठाने पड़ते हैं। कार्यक्रम बनाना पड़ता है। जिनमें सबकी सहमति हो ऐसे दो-चार पाँच विधायक कामों को लेकर जब पच्चीस-पचास युवक इकट्ठा होंगे तब एक दूसरे के प्रति अपनापन आयेगा : तब जो गंभीर समस्याएँ हैं उनके प्रतिकार की शक्ति भी आयेगी।

यह कुण्ठा का सवाल केवल सैद्धान्तिक नहीं, यह प्रात्यक्षिक है। है। इसके हल का कहीं न कहीं प्रारम्भ करना पड़ता है। अब श्रीगणेश करते समय दो अंग समान रूप से महत्वपूर्ण हैं, एक व्यक्तिगत दृष्टि यानी कुण्ठा का, और कुण्ठा के कारणों का निराकरण करने के लिए जो अपने भीतर से मार्ग ढूंढ़ने के लिए इकट्ठा होते हैं वे भी तो व्यक्ति हैं न। जो नये मार्ग बनाना चाहते हैं, व्यापक क्षितिज देखना चाहते हैं, ऐसे जो युवा-वर्ग इकट्ठा होंगे उनमें व्यक्ति तो होंगे न। अब इन व्यक्तियों को बैठकर यह देखना पड़ेगा कि हमारे भीतर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुण्ठा की जड़ कहाँ-कहाँ है। वाह्य कारणों का निराकरण कैसे करना, कब करना, उसको तो हम सोचेंगे ही। लेकिन अन्तरंग में जो कुण्ठा है, उसकी जड़ों का क्या होगा। अभी कहा गया कि जहाँ आर्थिक सुरक्षा है, राजनैतिक सुरक्षा है, अमीरी है, वहाँ भी कुण्ठा है। कुण्ठा के बाहरी कारणों को दूर करने की वात तो आप सोचेंगे, चाहे वह नौकरी का प्रश्न हो या धन्धे का, व्यवसाय का प्रश्न हो, या विज्ञान और यंत्र-विज्ञान के उपयोग का प्रश्न हो या आधुनिक शक्ति के इस ढंग से उपयोग का प्रश्न हो कि उद्योग का केन्द्रीकरण न होने पाए और आर्थिक सत्ता कुछ एक हाथों में केन्द्रित न होने पाए, यह सब कुछ सोचें। लेकिन जैसा मैंने शुरू में कहा मार्ग-दर्शन की आशा छोड़ दें और किसी से नक्शा या योजना मिलेगी यह अपेक्षा छोड़कर अपने पाँव पर खड़े हो जाँय। संगठित हो जाँय और सोचें कि अपने-अपने जीवन में जो आर्थिक कुण्ठा है उसे कैसे दूर करेंगे। नागरिकों के राजनैतिक जीवन में यदि कुण्ठा आ जाती है तो उसे कैसे दूर करेंगे।

विधायक दृष्टि लेकर, समझ की स्पष्टता, अभिव्यक्ति का सौष्ठव, दायित्व की परिपक्वता और सत्य के दर्शन के अनुसार जीने की तैयारी, इतना यदि पचास व्यक्तियों में हो जाय तो आन्तरिक तैयारी देखनी पड़ेगी। आन्तरिक तैयारी पर आकर ही सवाल रुकने वाला है क्योंकि कोई नहीं चाहता कि व्यक्ति-चेतना का आविष्कार हो। अपने भीतर जो चेतना की अभिव्यक्ति हो, उसमें खराबियाँ देखना और उसका निष्ठुर विश्लेषण करना, यह कोई नहीं चाहता। वड़ा कठिन हो जाता है और यहीं पर सब संगठन और क्राँतिकारी विफलता की ठोकर खाते हैं। क्रान्ति करने जाते हैं; तो धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक, आर्थिक परिवर्तन लाने तक सब एक रहते हैं और वांछित परिवर्तन जहाँ आया कि क्रान्तिकारिता का दीपक बुझ जाता है, और प्रतिक्रिया का दौर शुरू हो जाता है क्योंकि भीतर तो सत्ता-सम्पत्ति की लालसा, स्पर्धा पड़ी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुई है। उनके मूल्य पुराने लोगों के मूल्यों से वदले नही हैं। मूल्य वदलते नहीं, इसलिए बाहर के परिवर्तन ढाँचे बदल देते हैं, सत्ता का हस्तान्तरण हो जाता है, और जहाँ परिवर्तन हो गया कि फिर प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है फिर आपस के झगड़े, फिर अवांछित तत्त्वों के उन्मूलन (Purging) के झगड़े चलते हैं। केवल स्टेलिन का रूस मत देखिए, यूगोस्लाविया मत देखिए। चीन में भी वही होता है और हिन्दुस्तान में जहाँ रेचन (Purging) नहीं होता वहाँ भी पच्चीस साल का इतिहास देख लीजिए। गांधी को तो किनारे रख दिया, उनके जीवन-दर्शन को किनारे रख दिया। उसे तो मूर्तियों में और वाचनालय में वन्द करके कैद में रख दिया कि वाहर नहीं निकलना। और फिर सत्ता, सम्पत्ति के पीछे देश के सभी पक्ष चल पड़े।

इससे आप को और हमको यह सीखना है कि कुण्ठा को पैदा करने की जो जड़ें व्यक्ति-चेतना में हैं, उनको हटाने का पुरुषार्थ भी युवकों को करना पड़ेगा, अभिभावक जिम्मेदार हैं, उनका दोष है, यह मान लिया, लेकिन वे तो कुछ करने वाले नहीं हैं। अधेड़ उम्र तक पहुँचते-पहुँचते हिन्दुस्तान का आदमी तो ऐसा ढीला पड़ जाता है कि क्या कहें। चालीस साल के वाद ही हिन्दुस्तान का आदमी अपने आप को बूढ़ा समझने लगता है। पचास-साठ तक तो कोई ही पहुंचता है और सत्तर-अस्सी तक ताजगी रखने वाले आदमी हिन्दुस्तान में तो बहुत ही कम मिलेंगे। चालीस साल के बाद तो मानो उन्हें छूट मिल जाती है अवसाद में, निष्क्रियता में जाने की। इसलिए कहती हूँ कि आप उनसे आशा न रखें।

किसी ने युवा का लक्षण किया, १८ से ३० वर्ष तक की आयु का, किसी ने और कुछ आयु बताई, मैं वर्ष नहीं गिना रही हूँ। परिस्थिति के सामने हार मानने की जिसकी इच्छा नहीं है, वह युवा है और जो हार मान लेता है वह वृद्ध है। आपत्तियों को जो क्रान्ति का अवसर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बना देता है, वह युवा है और कठिनाइयों या चुनौतियों को जो आपत्ति बना देता है वह वृद्ध है। आयु कितनी है, उसका सवाल नहीं है।

तो, अब व्यक्ति-चेतना में से कैसे कुण्ठा की जड़ हटाई जाय, यह सवाल है। इस पर मैं कुछ कहना चाहूँगी। वह जो बहिरंग विषय है, वह मुझे बहुत प्रिय है, लेकिन उस पर विस्तार १०-१५ मिनट में हो नहीं सकता। कुछ तो कहना चाहती हूँ और वह यह कि आर्थिक जीवन में से कुण्ठा दूर करने के लिए हमारे शिक्षित-युवा-वर्ग को गम्भीरता से सोचना पड़ेगा। यह वर्ग बेकार होकर हजारों की संख्या में ठोकरें खाता रास्ते में घूम रहा है, लोगों के सामने सलाम बजाता हुआ, किसी का प्रमाण-पत्र या सिफारिश लेकर लाचार बनकर घूमता है। जिन लोगों के भ्रष्टाचार को दिन में दस बार कोसता रहता है, उन्हीं के दरवाजे पर खुशामद के लिए खड़ा होता है। आज का शिक्षित मध्यम वर्ग दलित वर्ग, श्रमिक वर्ग हो गया है। दलित वर्ग अब मजदूरों में नहीं रह गया है, वह अब मध्यम वर्ग में आ गया है। यह वर्गों का बहाव बड़ा रोचक विषय है। इस पर आप से बात कर सकती तो अच्छा होता किन्तु यहाँ कोई आर्थिक विश्लेषण का विषय लेकर हम नहीं बैठे हैं। क्रान्ति की जिम्मेदारी मध्यम-वर्ग पर ही आ गई है क्योंकि श्रमिक या मजदूर-वर्ग 'बूर्जवा' हो चुका है, धन को ही सब कुछ समझने लगा है। उसमें आज क्रांति की ताकत नहीं है और यह जो स्थापित हितों वाला वर्ग है, जो आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में यथापूर्व स्थिति बनाये रखने में अपना निहित-स्वार्थ समझते हैं, वे क्रांति की बात कभी कहने वाले नहीं। आशीर्वाद देते रहेंगे, चाहे तो कुछ अर्थ-सहायता देते रहेंगे। अनुदान देते रहेंगे, लेकिन देख लेंगे कि क्रांति के मुकाम पर आप न पहुँचें। तो फिर क्रान्ति के लिए रह जाता है शिक्षित युवा वर्ग, चाहे छात्र हों या प्राध्यापक हों।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समग्र क्रान्ति अब युवा वर्ग की ही जिम्मेदारी है, जिसमें छात्र और प्राध्यापक दोनों शामिल हैं। वे इस दायित्व को कंधों पर नहीं लेंगे तो आज की परिस्थिति में कुण्ठा की जड़ें सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक सन्दर्भ में से हटने वाली नहीं है। कुण्ठा को दूर करने के रास्ते कौन से हैं, मार्क्स ने क्या बताया, माओ ने क्या बताया, गांधी, विनोवा ने क्या बताया और इन सबके बाद यानी मार्क्स, माओ और गांधी के वाद अब क्या किया जा सकता है, वह एक सुन्दर और रोचक विषय है। कभी इस पर कोई परिसंवाद करें, कोई व्यक्ति मिलकर विचार करें क्योंकि गांधी के वाद के युग में हम जी रहे हैं। इन सब के दृष्टिकोण को साफ करने के लिए, इनकी परिभाषा स्पष्ट करने के लिए समय चाहिए। एक ही विषय रखते तो पांच दिन तक अच्छी चर्चा हो जाती। खैर इशारा कर दिया, क्योंकि दो तीन लोगों ने यह वात उठाई थी, यन्त्र और विज्ञान का नये ढंग से विनियोग करने की चुनौती हमारे सामने है। भारत के ही नहीं, एशिया, अफ्रीका के सभी देशों के सामने है। यंत्र-विज्ञान के विरोध में जाने की जरूरत नहीं है, न यंत्रों के विरोध में जाने की जरूरत है। विनियोग का सवाल है। यंत्र और विज्ञान का ऐसा विनियोग चाहिए, जिसका कि देश की धरती और आवादी के अनुपात से अनुबन्ध हो, जो की जनता की संस्कृतिक जड़ों के अनुकूल हो और देश की आध्यात्मिक विरासत के साथ जिसका संवाद हो। यह सब कुछ देखना पड़ेगा। मैंने तो केवल इशारे के लिए कुछ मुद्दे दिये कि यंत्र का, विज्ञान का विनियोग इस देश में कैसे होगा।

मन्दिर में से देवता को हटाने में हमें संकोच होता नहीं होता लेकिन यंत्र यदि देवता बन बैठे तो उसके वारे में सोचने में हम घबरा जाते हैं, क्योंकि अमेरिका ने ऐसा किया, रूस ने ऐसा किया, इसके प्रभाव से हम मुक्त नहीं हो पाते। यंत्र को देवता नहीं बनना चाहिए। उपभोग्य पदार्थों की प्रचुरता, बहुलता (Abundance of Consumer goods) को नारा नहीं बनना चाहिए। आज आप की सारी की सारी आर्थिक परिभाषा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

योरोप अमेरिका की देन है। उसे छोड़ना पड़ेगा। गांधी, विनोबा की परिभाषा को अपनाने को नहीं कह रही हूं। विज्ञान की कसौटी पर वह खरी न उतरे तो उसे भी छोड़ दीजिए। समग्र मानव-जीवन, समष्टि-व्यष्टि के विचार में कौन सी टिकती है, यह देखना होगा। इसलिए न यंत्र देवता बनेगा, न यंत्र-विरोध देवता बनेगा। इस ढंग से सोचें, तो नौकरियाँ कैसे पैदा हों, व्यवसाय या धन्धे कैसे पैदा हों, इस पर सोचा जा सकता है।

भीतर कुण्ठा हो तो बाहर की अनुकूलता भी काम नहीं देगी, इसलिए यह सवाल तो है ही कि आन्तरिक कुण्ठा की जड़ को कैसे हटायें। पहले हम समझें कि निराशा क्या है, विषाद क्या है, अवसाद क्या है, कुण्ठा क्या है। आशा-निराशा एक का द्वन्द्व है। इसमें मनुष्य चलता रहता है निराशा यदि स्थिर हो जाय तो वह एक वृत्ति बन जाती है, उस वृत्ति में विषाद रोग (Melancholia या Depression Psychosis) कूट-कट कर भरा होता है। उस व्यक्ति में फिर अभिक्रम, अभिगम (Initiative) कम होता जाता है, उत्साह घटता जाता है। इसलिए बाहर की परिस्थितियों का शिकार वह पहले से अधिक बनता है, वातावरण का, व्यक्तियों का वह शिकार बनता है क्योंकि निराशा को जगह देने के कारण उसके चित्त में शिकार बनने की बड़ी उर्वरा धरती निर्मित हो जाती है। उसने निराशा को चित्त में जगह दी है और उसे स्थिर होने दिया है, इसलिए बाहर की परिस्थितियों का शिकार वह बनता रहता है, वह आत्मदया में फँस जाता है।

आत्मदया में जब तक कोई नहीं फँसता तब तक कुण्ठा नहीं होती। चित्त की, बुद्धि की गति कुण्ठित तब होती है जब मनुष्य में आत्म-दया गौरवान्वित हो जाती है, शहादत का भाव आ जाता है। तो जिम्मेदारी दोनों की हुई, व्यक्ति और वातावरण की। निराशा को स्थिर होने दिया यह जिम्मेदारी मेरी है, आशा को रखता हूँ, आकाक्षां को रखता हूँ यह जिम्मेदारी मेरी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब चलिए आशा और आकांक्षा पर। अपने जीवन में मुझे क्या करना है, मैं कौन हूँ, मैं क्या हूँ यहाँ से आरम्भ करना पड़ेगा। बाह्य जगत् से मुझे क्या आशा और आकांक्षा है और क्यों है। आप कहेंगे कि शरीर मिला है तो इसकी आवश्यकतायें पूरी करनी हैं। क्यों नहीं करनी है! अच्छे ढंग से करनी है, सुन्दरता से करनी है, अवश्य करें, उसके लिए समाज ने साधन जुटायें हैं उनका उपयोग करके करनी हैं, करें, समाज के साधन मिलते नहीं हैं स्वय पैदा करके आवश्यकतायें पूरी करनी हैं वह भी पूरी करें।

जीवन की आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए साधन जुटाना आज भी, इस देश में भी वहुत मुश्किल नहीं होगा। मुश्किल क्या होता कि मैं बी० ए० पास हो गया हूँ तो नौकरी इस ढंग की मिलनी चाहिए, एम० ए० एम० एस०सी० हो गया हूँ तो इस प्रकार की मिलनी चाहिए। नौकरी को डिग्री का फलित मान लिया है, हमने भी, हमारे माता पिता ने, और समाज ने भी। बीए०, एम० ए० या एम० एससी० हो जाने के वाद जो कुछ ज्ञान मैंने अर्जित किया है, वह सारा का सारा सफल तव हुआ जव नौकरी मिली और नहीं मिली तो सफल नहीं हुआ।

आप ने वड़ा सुन्दर विश्लेषण किया कि इस देश की शिक्षण-पद्धति इतनी सदोष है कि लड़का कोई शिक्षण-क्रम पूरा करके बाहर निकलता है तो वह इनी-गिनी नौकरियों के लिए ही कोशिश करता है और मेट्रिकुलेटं भी उसी नौकरी के लिए अर्जी देता है जिसके लिए कि एम० ए०, एम० एससी० देता है। यह तो सव विश्लेषण मुझे मंजूर है। इस शिक्षण पद्धति को वदले विना, केवल दृग्विन्यास (Orientation) की वात नहीं, इसका अधिष्ठान वदले विना इस देश का भला नहीं होने वाला है। कव इस देश के शिक्षित-वर्ग विशेष रूप से विश्वविद्यालयों के छात्र और शिक्षक जागृत होंगे और नेता वर्ग, से माँग करेंगे, कव वे ऐसी परिस्थिति का दबाव सुसभ्य ढंग से पैदा करेंगे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि शिक्षण पद्धति में आमूल परिवर्तन हो? यह मुझे मालूम नहीं, लेकिन उसके बिना चलने वाला नहीं है।

मैं कह रही थी कि आज भी इस गरीब देश में जिसने शिक्षण लिया है, उसे निर्वाह के लिए काम नहीं मिलेगा ऐसी बात नहीं। लेकिन शहर में ही मिलना चाहिए, जिस शहर में मैं रहता हूँ उसी शहर में मिलना चाहिए, जहाँ माता-पिता की महत्त्वाकांक्षा है उसी जगह मिलना चाहिए, जिस नौकरी को देखकर अच्छे घर की लड़की शादी के लिए तैयार हो जाय ऐसी नौकरी मिलनी चाहिए, यह सब हमारे चित्त में रहता है, यानी निर्वाह का साधन जुटाना हमारा ध्येय नहीं है, लेकिन हम दूसरों से अपनी तुलना करना चाहते हैं। हमारे शिक्षण में बचपन से घर या बाहर अपनी तुलना दूसरों के साथ करना यही हमें सिखाया गया है। अपने-आप में अपने को समझना, अपनी बुद्धि और शक्ति का पूरा उपयोग करके आवश्यकताओं को पूरी कर लेना, इसमें कोई सन्तोष नहीं मानता। हमें इस बात का शिक्षण ही नहीं मिला है कि जिस काम से हमें प्रेम है उसे करने में हम परिपूर्ति मानें, हमें किसी ने यह शिक्षण नहीं दिया कि हम बाह्य जगत् से अपना, अपने आप का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से समझने में परिपूर्ति मानें। यह सिखाया ही नहीं जाता कि अपने आप में जो अपनी हस्ती है उसको समझ सकें और उसको व्यवहार में व्यक्त कर सकें इसी के लिए निर्वाह के साधन जुटाना होता है। यह सारा का सारा अधिष्ठान बदलना है।

पैसे से अपने लड़के की इज्जत नापने वाले माँ-बाप, पैसा, सत्ता और प्रतिष्ठा को नाप कर लड़की देने वाले लोग, इनके खिलाफ आप और हम जब तक खड़े नहीं होते, कोई नई रचना, कोई नई दृष्टि, मनोवृत्ति नहीं पनपेगी। आप समझते हैं कि समाज यह सब करेगा। आप और हम ही तो समाज हैं। हमारे आपसी सम्बन्धों का जो स्वरूप है वही तो समाज का वातावरण बनाता है। अमूर्त समाज क्या करेगा? इसलिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहीं न कहीं तो प्रारम्भ करना ही पड़ेगा ही न। आज तक युवकों ने ही क्रान्ति की है। निर्वाह के लिए साधन जुटाना है इसलिए काम करेंगे, लेकिन शहर में ही रहना है, ऐसी ही नौकरी मिलनी चाहिए, ये जो सारे धागे हैं इन्हें काटना पड़ेगा। यही तो बन्धन हैं। माता-पिता नाराज होंगे। क्यों नहीं होंगे? लोग हसेंगे, क्यों नहीं हंसेंगे? क्योंकि उनके वही मूल्य हैं। जहाँ भ्रष्टाचार है, जिनमें असीम, अपरिमित होड़ का ही मूल्य है, जहाँ पैसा देवता बन गया है, जहाँ प्रतिष्ठा पूजी जाती है जहाँ दम्भ और पाखण्ड पूजा जाता है, उन लोगों से आप आशा रखेंगे कि आप नये रास्ते पर चलें और वे आप को वाह-वाह करें? कब कौन से क्रान्तिकारी को प्रारम्भ में प्रतिष्ठा मिली है?

किसमत से राम मिले जिसको,
उसने यह तीन जगह पाई।
पहले तो धन-सुत दार गई,
दूजे जग में अपमान भया।।

सो जग में अपमान तो होता ही है। फिर वह भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव हों तो उनको भी मूर्ख कहने वाले मिलेंगे। गांधी जी की मूर्खता की दुहाई देने वाले भी उनके साथी थे। विवेकानन्द भी 'ला कालेज' की परीक्षा छोड़ कर रामकृष्ण परमहंस के पास गये तो मूर्ख कहलाये। अरविन्द भी बड़ौदा की नौकरी छोड़कर निकल पड़े तो अविवेकी कहलाये। यौवन का अलंकार है, अविवेकी कहलाना क्योंकि वह अविवेक यदि विधायक दिशा में जाय, तो क्या नहीं कर सकता? वह यौवन क्या जिसमें अधीरता नहीं, अविवेक की क्षमता नहीं, साहस की खुमारी नहीं, असुरक्षा का आवाहन करके उसकी बाहों में कूद जाने की ताकत नहीं। जो रात्रि के अन्धकार से डरे वह तो बुढ़ापा है। मध्य रात्रि के गहन अन्धकार में अरुणोदय की, प्रभात की लालिमा जो अभी देख ले, वह यौवन है। यह आप को बहलाने या फुसलाने को नहीं कह रही हूँ,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चालीस साल की उमर उलटने के बाद भी उसी नशे में जी रही हूँ, इसलिए बोल रही हूँ। असुरक्षा को छोड़कर कभी जी नहीं हूँ। जिस दिन सुरक्षा में पाँव बँधवाने की इच्छा होगी, उस दिन समझ जाऊँगी कि बुढ़ापा शुरू हो गया।

तो, जब हमने देख लिया कि कोई संगठन नहीं, संस्था नहीं, जमात नहीं, तो फिर कूद पड़ना है। लेकिन वह कूद पड़ना विध्वंस के लिए नहीं। विध्वंस के लिए लोग कैसे कूद पड़ते हैं? मकान जलाने के लिए गोली भी खा लेते हैं, मर भी जाते हैं। कुण्ठा में से बेदर्दी (Callousness) और बेदर्दी में से विध्वंस की वृत्ति अपने आप आ जाती है। फिर व्यक्ति जिम्मेदार नहीं होता। कुण्ठा ही वह उर्वरा भूमि है जिसमें ध्वंसात्मक वृत्तियाँ फलती-फूलती हैं। वह तो होने ही वाला है क्योंकि व्यक्ति बेदर्द (Callous) बनता है बधिर (Insensitive) बनता है। इसलिए कहती हूँ भीतर से शक्ति आनी चाहिए कि अपनी परिपूर्ति के लिए दूसरे के साथ तुलना कभी नहीं करूँगा। मेरी जरूरतें क्या हैं, वह मैं देख लूँगा और उनको पूरा करने का रास्ता मैं खोज लूँगा। शहर में काम करना होगा या देहात में, नौकरी करनी पड़ेगी या कोई धन्धा व्यवसाय करूँगा या हाथ-गाड़ी में सामान लादकर बेचना पड़ेगा, पता नहीं क्या करूँगा, लेकिन जिऊँगा तो खुमारी से, आजादी से।

स्पर्धा में जो उतरता है वह दूसरों से आशा अपेक्षा रखता है, वह अपनी मस्ती में नहीं जीता। अपनी मस्ती में जीने का अर्थ एकाकीपन या अलगाव (Isolation) में जाना नहीं है। समाज से अन्न-वस्त्र, आच्छादन लेना है तो इस लिए काम करना है, यह जब समझ में आयगा तो फिर खुमारी आयेगी।

जैसा मैंने कहा—कैलिफोर्निया में पाँच सौ लड़के-लड़कियाँ इकट्ठा हो गये। उन्होंने १२०० एकड़ जमीन पट्टे पर ले ली और कम्यून बनाकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहने लगे। जब मैं वहाँ गई तब उनके अग्रणी की उम्र २८ साल थी, वे पचहत्तर कम्यून के पिता कहलाते। उन लोगों में हम भारतीयों की तरह एक दूसरे से सहयोग करने की अक्षमता नहीं है। हमारे यहाँ तो छोटे-से छोटा काम करना पड़े तो पहले तो सब हाँ कहेंगे लेकिन जब सचमुच करना पड़ता है तो अनन्त क्षुद्रतायें सामने आती हैं, इसने यह लिया, उसने वह लिया, यह आगे बैठा, वह पीछे बैठा, इसकी इतनी चर्चा चलती है, गुलाम रहे हैं न। हजारों सालों की गुलामी के कारण यह मनोवृत्ति हो गई है, छोटी-छोटी बातों को देखने की। इसलिए हम सहयोग से कुछ कर नहीं पाते। वहाँ तो वे लोग कर लेते हैं। अपना अनाज, सब्जियाँ खुद उगाते हैं और एक नई सभ्यता के विकास की कोशिश में लगे हैं। बैठे हैं अमेरिका में जहाँ इतनी प्रचुरता है कि वमन हो जाय (Nauseating affluence) जंगल में जमीन खरीद ली है।

तीन दिन उसके साथ रहकर आयी हूँ। प्रयोगों में क्या होगा क्या नहीं होगा, यह सवाल नहीं है, लेकिन प्रयोगों में जुट पड़े हैं। एक कम्यून में बौद्ध तंत्र का, हीनयान, वज्रयान का अभ्यास है, दूसरे में वाममार्गी हिन्दूतंत्र का अभ्यास है, तीसरे में दक्षिण मार्गी कौल मार्ग का अभ्यास है, चौथे में, ज़ेन बुद्धिज्म का अभ्यास है, कहीं हठयोग का अभ्यास है। खेती इत्यादि बाकी काम तो सब करते ही हैं। ७५ कम्यून में सबने अपने-अपने काम बाँट लिये हैं और महीने में एकबार हर कम्यून में से एक व्यक्ति इकट्ठे होते हैं, चर्चा करते हैं। ठोकर खायेंगे, असफल होंगे तो क्या हुआ। जटायु की असफलता रावण की सफलता से तो कहीं उज्ज्वल थी।

सफलता और विफलता से नापना, यह तो पूंजीवाद के रास्ते हैं। सफलता विफलता से परिपूर्ति को नापना गलत है। इस नाप-तौल को छोड़ना होगा। जो केवल पुराने रास्ते छोड़ देते हैं लेकिन नाप-तौल को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पकड़े रहते हैं वे कभी क्रान्ति नहीं कर सकते। इन माप दण्डों को छोड़े बिना कुछ नहीं होगा। इसलिए कह रही हूँ कि कुण्ठा की जड़ व्यक्ति-चेतना में है। मूल्यांकन, प्राथमिकताओं का क्रम (Order of priorities) छूट नहीं पाते, इसलिए युवावर्ग कुण्ठा में फंसा रहता है। नव-जीवन की, नवनिर्माण की आज आवश्यकता है और नवनिर्माण यानी सभी क्षेत्रों में नवीन सर्जन। विद्रोह करना आसान है, पुराने ढांचों को तोड़ना आसान है लेकिन अपने भीतर जो पुराने मूल्यांकन पड़े हैं, अभिरुचियाँ (Preference) पड़ी हैं, पूर्वग्रह (Prejudice) पड़े हैं उनको छोड़ना कठिन है। कुण्ठा की जड़ें वहीं हैं। इसलिए कहती हूँ कि युवावर्ग जब कभी सम्मिलित रूप से इस पर कुछ करना चाहेगा, तब कुण्ठा की जड़ों को उसे देखना होगा।

आपके पास बैठी हूँ तो इस देश की करोड़ों की जनता मेरे सामने है। भारत-वर्षके एक-एक राज्य में कम से कम तीन बार घूम कर आयी हूँ। कश्मीर का लड़का देखती हूँ तो आत्मीयता से जी भर जाता है। आसाम, बंगाल, बिहार, केरल, मद्रास का देखती हूँ तो जी भर आता है क्यों कि वह सब मेरे लिए एक कुटुम्ब है। ऐसा सारी मानवजाति के लिए है, लेकिन हिन्दुस्तान में बैठी हूँ तो यहाँ की बात कह रही हूँ।

युवकों को नयी दृष्टि, नये क्षितिज टटोलने वाली, नये मूल्यांकन पैदा करने वाली एक जमात चाहिए, कुण्ठा का निराकरण करने के लिए हमें ऐसे नये मानव चाहिए जो यौवन की ताजगी और निर्दोषिता में से पैदा हुए हों। और उन्हें पैदा करना ही पड़ेगा। अपने जीवन में जो कुछ कर सकते हैं, उसमें परिपूर्ति मानना, यही कुण्ठा की जड़ को काटना है। दूसरों के साथ जहाँ तुलना की कि महत्त्वाकांक्षा आई, महत्त्वाकांक्षा आई कि बधिरता, असंवेदन-शीलता (Insensitivity) आई और वही कुण्ठा है। फिर आक्रमण आया और हिंसा आयेगी। आज मैं समग्र भाव से उस विषय में जा नहीं सकती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज यहां यह सुन कर बड़ा दुःख हुआ कि शारीरिक दंड की आवश्यकता किसी को महसूस होती है। व्यक्ति का दोष नहीं, ऐसे वातावरण में आप हम पले हैं।

लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ।।

हिंसा की स्वीकृति, दंड का अनुमोदन, शारीरिक दवाव का समर्थन—यह तो व्यक्तिचेतना को क्षत-विक्षत करना है। लेकिन आज हमारे समाज में हिंसा का अनुमोदन है। केवल भारत नहीं, सारी मानव-जाति की यही वात है। सभी युद्धों की जड़ इसी वात में है कि समाज ने हर क्षेत्र में हिंसा को स्वीकृति दे रखी है। जब कहा जाता है कि मुनाफे का प्रयोजन उत्पादक श्रम का प्रेरक है, तव आक्रमण, अन्याय, शोषण और हिंसा का मार्ग प्रशस्त किया जाता है। स्पर्धा को जव आर्थिक मूल्य माना जाता है, तव शोषण और हिंसा को स्थान दिया जाता है। वच्चों को जव किसी देश या विचारधारा के झंडे का अभिवादन सिखाया जाता है, और अन्य देशों और विचारधाराओं के प्रति क्रोध, घृणा, कटुता उनमें भरी जाती है तव रक्त-पात और हिंसा की ही नींव पक्की होती है। विश्व में आज जितने युद्ध हो रहे हैं, वे सभी हिंसा के मानसिक समर्थन के परिणाम हैं। यह आपको, हमको देखना है।

मैं इससे असहमत नहीं हूं कि मां का प्यार है तो कभी हाथ उठ गया और तमाचा लग गया तो तमाचे लगाने वाली मां के आंसू भी उसके साथ झरते हैं और जिस वच्चे को तमाचा लगा उसी क्षण मां उसका मुख भी चूम लेती है। मैं यह कहूंगी कि मां के प्यार में अभी ताकत कम है, प्यार उसका मूल्य नहीं बना, इसलिए हाथ कभी उठ जाता है, लेकिन वह विधान नहीं हो सकता, शिक्षण में वह अनिवार्य है—यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानना हार मानना है। आज तक नहीं हुआ है इसलिए नहीं होगा, यह कैसे मान लेंगे आप और हम ? जो नहीं हुआ है, उसे करने के लिए ही तो आपका और हमारा जन्म हुआ है; जो हुआ है उसे दोहराने के लिए नहीं। जो नया बच्चा पैदा होता है, वह प्रभु के यहाँ से नयी ताकत लेकर आता है कि आज तक जो मानवता नहीं कर सकी उसे वह करेगा। आज तक जो हम चालीस वाले नहीं कर सके वह बीस वाले करेंगे। साठ-सत्तर वाले नहीं कर सके उसे हम करेंगे। इसी प्रकार तो आगे बढ़ा जाता है।

शारीरिक दंड की हमें आवश्यकता प्रतीत होती है क्योंकि प्रेम अभी मूल्य नहीं बना है, सत्य अभी मूल्य नहीं बना है और माता-पिता के जीवन को देखकर बच्चा सीखता है इसका हमें अभी बोध नहीं है। जीवन से बढ़कर कोई शिक्षक नहीं है। वाणी बड़ी पंगु शिक्षक है, विचार बड़ा दुर्बल है, क्योंकि वह कहाँ तक, कितना सिखायेगा ? जानकारी देगा और जीवन में संक्रान्ति कभी जानकारी और विचार से नहीं होती, प्यार से होती है। जीवन से जीवन संक्रान्त होता है, जैसे दीपक से दीपक जलता है। बुझे हुए दीपक से दूसरा दीपक नहीं जलता है, जिसका जीवन जलता दीपक है उसके जीवन पर दूसरे के अवधान की लौ एक पलभर के लिए लग गई तो जल उठा दीपक। मिलन कितना ? पलभर का। जलती मोमबत्ती से बुझी मोमबत्ती लगा दीजिए। पलार्द्ध के मिलन से यदि जल न उठे तो मोमबत्ती क्या ? उस प्रकार प्यार का, जीवन की सत्ता का मूल्य नहीं है, इसलिए दंड का समर्थन है। दंड को साधन माना गया है। जिन लोगों ने दंड को साधन माना है, उनके समाज में आज उनके बच्चे कहां पहुँचे हैं यह देख लीजिए। सभी देशों में बच्चों की क्षत-विक्षत चेतना देख लीजिए। आज यह ठीक कहा गया कि जिन माता-पिता को अपने बालकों के लिए समय नहीं है वे माता-पिता बनते क्यों है ? वे नर-नारी बन कर बैठे रहें, सुख भोगते रहें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह कहना चाहती हूँ कि शारीरिक दंड से कुछ भी सिखाया नहीं जा सकता, डराया, धमकाया, दवाया जा सकता है। जब मनुष्य को दबाया जाता है तो उसमें विकृति आती है और उस विकृति से भीतर-भीतर खमीर उठता रहता है और उसमें से अनन्त विकृतियाँ पैदा होकर अवसर पाते ही प्रकट होती हैं। मेरी समझ से दंड का उपयोग जीवन में कहीं नहीं है।

कुछ देशों ने मृत्यु-दण्ड हटा दिया है, आस्ट्रेलिया में खुली जेल देखी। जिन्होंने अपराध किया हो उन्हें हफ्ते में एक बार एक जगह सुधार के स्कूल में जाना पड़े और वाकी दिन वे अपनी नौकरी धन्धा करें, ऐसी व्यवस्था की जा रही है। नौकरी उन्हें सरकारी संस्था में ही दी जाय, व्यक्तिगत संस्थाओं में नहीं, इतना विधान रक्खा है। इस प्रकार की व्यवस्था में लोग लगे हुए हैं। पूरे अपराध-विज्ञान को देख लीजिए और 'पीनल कोड' में परिवर्तन करने की किस प्रकार पाश्चात्य देशों में एक नयी वृत्ति आ रही है, इसे भी देख लीजिए। अस्तु।

मुझे जीवन में क्या करना है, मेरा जीवन से क्या सम्वन्ध है, इसे बैठकर देखना होगा। जो समूह कुण्ठा को दूर करना चाहता हो, ऐसे समूह के व्यक्ति मिलकर यह सोचें कि हमारे भीतर कुण्ठा की जड़ें कहाँ हैं, तो दिखाई देगा कि आशा, आकांक्षा अपेक्षा, तुलना, तुलनात्मक मूल्यांकन, ये सारी जड़ें क्यों हैं, कैसी हैं। तब पता चलेगा कि मनुष्य का अपने आप से परिचय नहीं। इसलिए अपने में अपने को पहचानता नहीं है। सुख-आनन्द पाने की शक्ति नहीं। "आनन्दात् खल्विमानि भूतानि जायन्ते" इसका बोध नहीं, अपने स्वरूप का बोध नहीं।

सुकरात से लेकर आज तक सब यही कहते रहे हैं कि मनुष्य अपने आपको जाने "Man Know thyself" मैं इतना ही कहूँगी "Under stand thyself" क्योंकि ज्ञान (Knowledge) और समझ (understanding) में थोड़ा फर्क मैं करती हूँ। आत्म-शोधन, मनुष्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्या हैं, सुख और दुःख के परे आनन्द की शक्ति मनुष्य में है या नहीं; शारीरिक, मानसिक सुख-साधनों की मर्यादा कौन सी है, यही सब हर व्यक्ति को समझना है। सुख-साधनों की अनिवार्यता में तो कुछ कहना ही नहीं है, क्योंकि वह है ही। उनकी मर्यादा कौन सी है ? इस प्रकार आस पास के विषय को क्रान्तिकारी व्यक्तिशः देखेगा और अपने भीतर संतुलन पायेगा तब ऐसे संतुलित व्यक्ति बाहर के कुण्ठा के कारणों का निराकरण कर सकेंगे। यह बहुत जरूरी है।

लोग समझते हैं कि जो बाहर का काम करेंगे उन्हें भीतर का सोचने की जरूरत नहीं और जो भीतर मुड़ते हैं और आत्मशोधन, आत्म-साक्षात्कार की बात करते हैं, उन्हें बाहर का सोचने की जरूरत नहीं। इस प्रकार भीतर और बाहर का द्वन्द्व या विभाजन हटाकर समग्र दृष्टि को लेकर कुण्ठा को दूर किया जा सकता है। संक्षेप में, अपने आप को पहचानने के लिए जिस विषय को कल छेड़ा था उसी के अनुसंधान में यह समझ लें कि शरीर की आवश्यकताओं को, मन की आवश्यकताओं को, नये दृष्टिकोण से देखना होगा।

आवश्यकतायें (Needs) अलग हैं और आकांक्षाएँ (wants) अलग हैं। शरीर की आवश्यकताएँ उसके ढाँचे में अविच्छिन्न रूप से निहित हैं, किन्तु आकाक्षाएँ मन द्वारा निर्मित होती हैं और मन समाज द्वारा संचालित होता है। आज का समाज व्यापार-प्रधान है, इसलिए आवश्यकताओं का अनुचित लाभ लिया जाता है। पहले प्रचुर उपभोग्य पदार्थ (Consumer Goods) पैदा करेंगे और फिर इतने इश्तहार निकालेंगे कि मनुष्य को इस बात का भान ही नहीं रहता कि अपने को क्या जरूरी है, क्या चाहिए। मन की आज एक इच्छा है, कल दूसरी, परसों तीसरी, इच्छाओं और कामनाओं का यह विस्तार स्थापित हितों के पक्ष में है। यहाँ तक इश्तहार-बाजी चलती है कि सहज यौन प्रवृत्ति (Sex instinct) की पवित्रता, दिव्यता, सुभगता को भी दूषित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर दिया गया है। जहाँ देखो वहाँ यौन-आवेग को उभारा जाता है। अपने ही बाल-बच्चों के यौवन और जीवन का शोषण करने में इस पैसे को पूजने वाले समाज को कोई संकोच नहीं होता।

तो अपने भीतर देखना पड़ेगा कि अपनी सही आवश्यकताएँ क्या हैं और कृत्रिम रूप से उभारी हुई इच्छाएँ कहां हैं। अपरिमित, असीम जो होड़ है वह यहाँ से उठती है। समाज की यह चाल पहचाननी होगी। संयम, तपस्या, दमन, पीड़न की बात नहीं कह रही हूँ। उसे छोड़ दें। वह एक अति है, यह दूसरी अति है। दमन का पंथ, घोर, अबाध भोग का पंथ, इन दोनों अतियों के बीच मध्य का रास्ता खोजना होगा। तब जीवन में संतुलन आयेगा।

कल बात की थी कि क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष ये सब मन की व्यवहार-पद्धतियाँ हैं। इनसे मुक्ति पाने की शक्ति जब आयेगी तब कुण्ठा की जड़ें चित्त में से हटेंगी। यह काम भी सबको मिलकर एक साथ करना है। जैसे बाहर के छोटे-छोटे कदम उठाने का काम सबको संगठित हो कर करना है, वैसे यह भी संगठित रूप से करना है। जब दोनों साथ-साथ युगपत् चलेंगे तब बहुत बड़ी मुश्किल नहीं आयेगी ऐसा मुझे लगता है।

युवकों के शब्द-कोष में एक शब्द नहीं होना चाहिए "असंभव"। जब असंभव के साथ खेला जाता है और प्रयोग किये जाते हैं तभी असंभव संभव में परिवर्तित होता है। असंभव की देहली को लांघना है। और जो करना है उसका आधार आदर्शवाद में और सैद्धान्तिक चर्चा में नहीं होना चाहिये। इसलिए मैंने कहा कि व्यक्ति जब अपने भीतर टटोलेगा तो कुण्ठा की जड़ें जिस मूल्यांकन के कारण होंगी, जिस दृष्टि-कोण के कारण होंगी, मन-बुद्धि-शरीर में जो अव्यवस्था है, अराजकता है उससे मुक्ति पाकर उन्मुक्त चित्त और संतुलित शरीर को लेकर फिर चलेगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुण्ठा के बाहर के कारणों की बात दो दिन से कहती आ रही हूँ, आज भी कहती हूँ कि इस देश की समाज-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था, शिक्षा-व्यवस्था सबके आधार वैज्ञानिक नहीं हैं। बहुत बड़ा विधान कर रही हूँ, लेकिन पूरी जिम्मेदारी के साथ कर रही हूँ। वैज्ञानिक इस अर्थ में नहीं है कि इस देश का इतिहास, इस देश की सभ्यता, इस देश की जन-संख्या, इस देश के शहरों और देहातों के संबन्ध, इन्हें ध्यान में रखते हुये यह संयोजन नहीं हुआ है। पश्चिमी जीवन-मूल्यों का, पश्चिमी जीवन-पद्धति का बहुत बड़ा प्रभाव चित्त पर रहा है। हम इस संयोजन को कैसे बदलें यह विशाल कार्य है। इस पर विचार करने का आज समय नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

: 5 :

THE CAUSES OF CONFLICTS, VIOLENCE AND LAWLESSNESS AND THEIR REMEDIES

संघर्ष, हिंसा और अव्यवस्था के कारण और उपाय

Tuesday, 21st. March, 1972

8 A. M. and 5.30 P. M

Morning Session

Number of Papers--Five

1. Sri R. N. Bhargava—Research, Ceramic Eng.
2. Sri Abhaya Kumar Gupta—3rd. Yr. Elect. Eng.
3. Sri Shibanji Raina—Research, Ceramic Eng.
4. श्री रामहंस पाठक—एम० काम० फ़ाइनल

Participants In Discussion,

Prof. Y. S. R. K. Sarma, Blaine Hussie

राजीव रंजन सिंह, रामहंस पाठक, महेन्द्र गाभावाला

सायंकालीन सभा

विमलाजी का प्रवचन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चयनिका

चार सुझाव

१. विश्वविद्यालयों को डिग्री देने का अधिकार न रहे; परीक्षाओं का सम्बन्ध उपाधि से न रहे। जिन्हें नौकरी देनी है वे लोग परीक्षा लें।

२. आवासीय विश्वविद्यालयों (Residential Universities) में पढ़ाई की फ़ीस भले ही नकद ली जाय, किन्तु छात्रावास की फीस किसी न किसी प्रकार के परिश्रम के रूप में ही ली जाय।

३. विश्वविद्यालयों में राजनैतिक पक्ष अपने अड्डे न जमायें, उपद्रव न फैलायें, इसके लिये जिन्हें सचमुच दर्द हो ऐसे छात्रों, शिक्षकों और प्रशासकों की एक मिली-जुली निगरानी समिति होनी चाहिये।

४. छात्र अपने संगठनों में यह निश्चय करें कि उनके आन्दोलन शान्ति से, सभ्यता से ही चलेंगे।

× × × ×

मौलिक चुनौती है जीवन-मूल्यों के परिवर्तन की। उसके बिना सही क्रान्ति नहीं आ सकती, ढाँचे भले ही बदल जायें, सत्ता का हस्तान्तर भले ही जाय।

× × × ×

आज विश्वविद्यालय पूरे देश के जीवन से कट कर अपने आप में द्वीप बन कर रह गये हैं।

—विमलाजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper I *R. N. Bhargava*

ABSTRACT

It is disagreement, dissatisfaction and frustration which generally turns out in the form of conflict, violence and lawlessnes. In a number of cases, a few persons use this dangerous weapon for their personal benefit by misguiding innocent men. The remedy is to be sought in the root cause of the problem itself. Few of those are :

1. At first step comes the education of masses. The education should be comprised of moral teachings, teaching of religion and culture so as to make a man disciplined, mature and sensible.

2. Proper planning at highest level. A planning which will provide for the basic needs of every individual.

3. Strong leaders, who will sacrifice their own interests for the upbringing and welfare of masses and shall guide the people along a constructive channel, are required.

4. Laws once made should be strictly adhered to by all classes. There should be no relaxation for anyone. Any unlawful act should be strictly dealt with.

With these remedies I feel, we can accomplish a little in our effort for seeking solution to this problem and making of a just society.

Conflict, violence and lawlessness, these terms are so frequently heard or read that these appear to have

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

become associated with our daily life. But the question is why ? Why there is conflict or violence or lawlessness ? It is a social disease and a curse to the society. Why then it should not be removed ?

On examining the problem from its very root causes, we find that it is generally disagreement, dissatisfaction and frustration which leads to conflict, violence or lawlessness. This disagreement may be in political field i.e. disagreement over the policies of the parties, the disagreement or dissatisfaction between management and labour class, between authorities and students, the so-called students' unrest, between two groups of people based on religion or communal feeling or any other social issue. But this is only a part of the problem. In majority of cases we find that few presons, generally politicians, use this dangerous weapon for their personal benefit. This may be either for gaining cheap popularity or for the sake of gaining power or for diverting the attention of Government and so on. They incite innocent men to indulge in this act of violence. By innocent people I mean those who being unable to understand the reality of the problem, act on the words of these people in a belief that it is being done for their welfare and are thus misguided.

To come to the remedy, half of the problem will be solved if these innocent people can be saved. For this, as a first measure comes the education of masses. By Education I do not mean merely the type of education given today but the one comprised of moral teaching of religion and culture in our own Indian pattern; the

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

education which will turn an innocent and immatured boy in a disciplined, sensible and matured man; the education which will enable a man to analyse the situation around him and judge for himself good and bad; the education which teaches respect of all human beings, respect of all religions, all castes. creeds and socieities. This is the type of education which is to be given to masses, Through education the sense of national and patriotic feeling is to be developed.

For this type of education we need ideal teachers as well. One who has taken up teaching as a profession only for earning his bread is not to be called a teacher in a real sense. He should be endowed with the qualities we are trying to build up in students and should be an inspiring example for them. He must be devoted to his students and must have love and faith in them. He should realise the responsibility of building the nation of tomorrow. The character of a teacher leaves a sharp image on the character of a student.

One may well point here as to why educated persons turn out to be violent. Why is there violence or unrest at the temples of education i.e. Universities, schools and colleges? The problem here is a little different from what it was in the first case but not altogether different. The students' unrest problem is very huge and complicated by itself and therefore it will not be possible to discuss all the aspects of it here, but a few of these are:

(i) The students today lack moral education and discipline because from the very childhood they have not

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

been taught in this manner. They lack the national and patriotic feelings.

(ii) A number of students do it for fun without really understanding the purpose of it.

(iii) In majority of the cases, only a few students take active part, and they adopt this path not for the solution of real problems, for the real problems can be solved in a peaceful manner also but they do it either for gaining cheap popularity or with some political motive. They forcibly drag others to co-operate with them. In case one refuses to co-operate with them he is threatened with dire consequences. But still it is a very minor group. If 100 students out of a strength of 10,000 or 20,000 take part in violence, then the whole community is not to be blamed. The solution lies in dealing with these 0.5% or 1.0%, in eliminating these 0.5 or 1.%. Academic institutions must be kept away from politics. If politics comes in then there is no more an academic atmosphere.

Next comes planning at highest level. Lot of problems can be solved by proper planning. A planning which will provide for the basic needs i.e. food, clothing and shelter for every individual. A planning which will provide for jobs for every grown up according to his merit and calibre. A man cannot be satisfied unless he gets a job of his taste. But on the contrary we do not have jobs available even for qualified persons. A large number of unemployed engineers, doctors, science and arts graduates and so on are there. This all leads to an

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

improper and faulty planning. After so much of education and effort, if they find they have no means to earn their bread even, then naturally they will be dissatisifed and frustrated and if this is dissipated in the form of violence, then these people are not to be blamed, but our planners are to be held responsible.

Strong leadership is required. Leaders who will sacrifice their own interests for the upbringing and welfare of masses and shall guide them along a constructive channel. But on the contrary, most of our leaders are worried in pulling each other's leg and earning their self-interests. If the leaders are currupt, characterless, then where will they guide the masses ? It is for the people to select the able leaders for them but with illiterate masses, it is not so easy.

Laws once made, should be strictly adhered to at any cost. No relaxation for any one; May it be a leader, or a minister or an officer or an ordinary man. If a minister does not pay his taxes why at all he should remain a minister ? The curruption and improper practices must not be tolerated. If our law-makers become the law-breakers then where does the law stand ?

I believe if our election system be changed or modified then violence, conflict and lawlessness can be eliminated to a large extent. Much of violence is seen due to rivalry or conflict between political groups or sections. What I have in mind is to localise these elections. The people should select the members for municipal corporation or for Gram panchayat from their locality or zone or area. Then there should be a committee or council

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

at district level. The members for this district council should be elected by the members of municipal corporation and Gram panchayat. Next comes the legislative assembly at state level. Each district council in the state shall elect a fixed number of members as its representative to the legislative assembly. Similarly from all legislative assemblies in the country a fixed number of members based on the quota shall be elected to represent in parliament. Thus by screening at every place, only the deserving and capable men shall reach the top. These members of parliament should not be attached to or belong to any particular political group or party. Those who favour a particular policy shall belong to one group and those who do not favour shall constitute another group.

With these remedies, I believe we can accomplish a little in our effort of seeking a solution to this problem.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper II *Abhaya Kumar Gupta*

ABSTRACT

The unrest among the youth is due to several reasons. The first is the wrong mode of education. In India the father is the person who chooses the carreer of his son irrespective of the talents, interests and aptitude his son has. Moreover the student gets a perfunctory education which is like a strait jacket. To him the world outside the class-room seems to be full of materialism and corruption. This can only lead one to tend towards 'Pot' parties and naxalite activities. Due to poverty students have to be deprived of getting their high expectations fulfilled The caste-community-religion-ridden social structure will lead one only towards violence and lawlessness.

The unworthy political parties use and exploit them just to fill up their own interests.

Lack of mutual appreciation between younger and older generations induces in the youth a feeling of neglect and frustration. This only fills the youth with a feeling of violence.

A Remedy for this is to stir and channelise their idealism, imagination and creative energies to the development of back-ward areas. USSR has done this in developing the virgin lands of Siberia. For educated youth small cottage industry to produce for a big factory. must be established.

Nowadays we often see that students resort to strikes, demonstrations, gheraos, bandhs. fasts and naxalite terrorist activites as a remedy for their grievences. We

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

have to analyse the causes of grievances. Our education system has been defective. Here the father is the person who chooses the career of his son irrespective of the talents, interests and aptitudes his son has. At present the student is under a heavy pressure of rigid academic curriculum which is like a strait jacket. By this perfunctory education, very often he is horrified with the thought that after completing his education and wasting so much money and time he may not even get a job just to earn his livelihood. And this comes true when after completing his education he finds that there is corruption in every field. Nepotism and materialism prevail everywhere. Even when a youth is qualified he has to knock the doors of the people whom he may not like even to see. He has to obtain recommendations and certificates of these corrupt people if he wants to earn his livelihood. When he fails to collect such recommendations, his mind gets filled up with agony. He wants to uproot this social structure and tends toward 'pot' parties and naxalite activities.

Our planning has also been defective especially in the field of man power planning. Our socialists and economists have been unable to keep pace with this period of change.

Now coming to student-unions, I never advocate the abolition of student-unions because they are the main organisations of students almost everywhere in the world. These unions provide the youths a good way to lead and govern a self-government. These are essential for the intellectual and social health of the university commu-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

nity. But besides this we cannot overlook that many of the most serious conflicts and violences emanate from these unions. This happens when the union-bearers become hand-puppets of unworthy political leaders whose uppermost aim is to fulfil their own interests. Thus these unworthy leaders also exploit the youths.

Besides this, our socio-economic conditions are also responsible for this. Due to poverty many of us have to be deprived of getting higher education and thus get our high expectations destroyed. This easily makes a person join naxalite groups.

Social inequalities, social structures, caste, community and religion make their minds demolish the existing social structure and this often appears in the form of lawlessness and violence.

Lack of mutual appreciation between the younger and older generations causes conflict between the two. For relieving the youths we have to stir and channelise their idealism, imagination and creative energies. They may be for the development of backward areas. For example, in U. S. S. R. Khruschev launched upon a vast programme to open up the virgin lands of Siberia. It is essential to treat the students as adults, give them respect and channelise their hidden potentialities for reconstruction of the nation. For youth small cottage industries could be established. These small industries should be in co-ordination with major factories.

Universities should also find ways and means of helping their students in the development of character

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

and finding emotional stability in acquiring culture, grace and gentility in place of rudeness, barbarism and violence. we should generate a climate of fraternity among students, teachers and university authorities based on mutual respect and understanding.

Concluding this I will like to implore the youths that we should not choose a destructive way to cure the causes of conflicts because change is the way of life. If there is no change, there is no life and when there is change, conflicts will certainly arise. We should find a constructive way to fulfil our causes. I would also like to quote the words of President John F. Kennedy of U. S. A. "You should not ask what the country can do for you, but you should ask what you can do for your country."

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper III *Shiban Ji Raina*

ABSTRACT

Conflict of ideas within man's own self, between different men, and between different classes of men leads in the long run, to a bigger conflict at the social, national and international level. Excitement of achieving highest goals by taking rapid strides and the failure therein, leads to depression and frustration.

'Tremble and obey' attitude of the existing power; encroachment into each other's authority and influence for undermining them; making every issue a prestige issue, all result in conflict of personalities.

Misuse of power, economic and social exploitaion and delayed legal justice leads to lawlessness. Combination of the conflicts and lawlessness culminates in disorder—a very natural phenomenon The author feels that not ignorance but deliberate ignorance is at the back of most of the above processes taking place within the present day society. Phased change towards the economic and social uplift by bridging the gap between what we say and what we do, is recommended. For this easily achievable targets can be set.

Educating the ignorant about the importance of a code of conduct in any disciplined society is the need of the hour. The privileged members should be made to realise their obligations towards the bulk of the society. Civic sense should be inculcated at the adolescent stage. The method of imposition of one's will on others should be done away with by replacing coercive measures with persuasive methods. This way, a basic infra-structure for the future ordered society could be founded, with the aim of minimising conflicts, lawlessness and violence amongst the various peoples.

[This paper was not presented—Editor]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper IV *Pradeep Kumar*

ABSTRACT

There are at present two influential schools of thought, one of which derives everything from past 'Karma', while the other recognizes only parental influence upon the mental and physical bearing of the child. I do not myself adhere to either school, since neither of them seems to me complete in itself. The body and mind of the youth depends essentially on parental conditions and the way in which a child is brought up till adolescence.

I shall deal first with prenatal education and the effect of surroundings upon a child and then will gradually switch on to the extent to which the teacher, nation and the whole society is responsible for the development of a child which in turn is responsible for his mental and physical state. The main aim will be to diagnose the disease, first, completely, as far as possible, because if the diagnosis is correct and complete, the treatment is easy and obvious.

There are, in present days, two influential schools of thought, one of which derives everything from past 'Karma' theory known as 'Prarabdha' while the other recognises only parental influence upon the physical and mental bearing of child. But I do not myself adhere to either school, since neither of them seems to me to be complete in itself. I believe in prenatal conditions and the ways in which a child is brought up till adolescence.

I shall deal first with prenatal education and the effect of surroundings upon the child and then will

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

gradually move to parents, teachers, nation and to all-over society, that is responsible for the development of a child. My main aim will be to diagnose the disease completely, as far as possible, because if the diagnosis is correct and complete, the treatment is easy and obvious.

At the outset I would like to clarify one misbelief of our old generation. They say that in their time this conflict, violence and lawlessness was not there. People were well disciplined. But to me it is not so. No doubt at that time there was less violence and lawlessness as compared to our present time, but it was there. The only difference is that at that time it was suppressed by dictatorship of super powers like kings, zamidars etc, and also due to lack of communication facilities; but at present in our democratic set-up everybody is free to express his feelings. Moreover the youth were not in such a collective from, as to move against any existing norms or faith. Compactness of the world, which is mainly caused by communication facilities, has increased frustration and violence. It takes no time to call an all-India-level strike. People are now well aware about the facts, whereas in previous times a person even did not know about his nearby village. So there was no feeling of comparison; they were satisfied within themselves. But now we compare ourselves with the most affluent and developed countries of the world.

Now I come to prenatal conditions, which have got the most important effect upon the nature of the child. Plato was of the opinion that education begins right from the time of conception; the moment when two

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

human souls (the would-be mother and father) act together so as to produce a new soul.

We know well the story of Prahlada. Though he was the son of a cruel demon, by law of heridity he should have possessed the cruel qualities of his father, but was diagonally opposite. The reason was that his pregnant mother was kept in pure and religious environment of saints. This pre-and-post-birth condition had such a dominating effect upon heredity that it was totally crushed and suppressed. Aabhimanyu learned the art of 'Chakrya-Vyuha when he was in the womb of his mother. But in our present industrial society we have lost that sanctity and purity of atmosphere; people living in noisy places are more peevish than those living in a peaceful atmosphere. It is seen that the number of crimes in industrial cities is much more than that in peaceful hilly or village areas. Scientists now admit that machinery noise, rattling and polluted atmospeere do a great harm even to unborn babies, and mothers living in such areas have their children less disciplined. Fortunately now at least the advanced countries have taken steps to minimize noise and pollution.

After birth the first influencing factor for a child is its parents. Unfortunately the modern parents do not realise their importance. They are parents just for the name. In this machinery age, even motherhood has become a routine. Birth of babies is not natural. 'Caesareans' are done. They don't derive any pleasure out of their babies. Artificial processes are used to feed infants. Modern mothers dislike breast-feeding (though

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

sometimes it even causes breast cancer). Babies are brought up by Ayahs and then sent to boarding houses. So how can one expect a young one to respect his parents, while he has not received any real love and sacrifice from them ? A few years back American scientists made an experiment on a baby monkey. It was brought up completely by artificial means and was given the best possible food and education, but even then it became indsciplined, peevish and a nuisance value. Well we can imagine the effect of parental love. This is the reason why Nadirshah, Cromwell, Hitler, and recently Yahiya Khan were so cruel. There had been definitely some shortcoming in their up-bringing.

And again, the parents want their children to bring credit to them. This is rooted in instinct. They impose their own will upon the immatured brains. From the dawn of civilisation till our own time parents have sacrificed their children's happiness in marriage by deciding whom they were to marry, choosing almost always the richest bride or bridegroom available. In the western world children have freed themselves from this slavery by rebellion, but parents' instincts have not changed. The result is that they are forced to lose their self-indentity and feel themselves to be like a machine regulated by parents. In fact, parents get pleasure and satisfaction in regulating the movements of their wards; this may be due to the human instinct to rule on someone.

The next factor is the teacher. He too, like parents, wants credit for himself. This makes him wish to have

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

his boys distinguish themselves in athletic contests or scholarship examinations, which leads to care for a certain selection of superior boys to the exclusion of the others. For the rank and file the result is bad. It is much better for a boy to play a game badly himself than to watch others playing it well. But the school cares more for its credit than for the students. This causes a feeling of complex and unhealthy competition among students. which creates a rebellious attitude, frustration and feeling of helplessness. These dejected students feel themselves to be useless for the society, and lose the sense of belonging. This makes them act in such a way as to destroy the very cause of their frustrations. Teachers don't realise the inner sense of their responsibilities. They are busy in their own politics but I don't wish to say more about them, since already much has been said.

In fact, the parent, the teacher, and our society, all form a very complex vicious circle. A single one cannot be blamed alone. Our whole social setup has become polluted due to economic, industrial and scientific revolutions. Our mind runs with the speed of science, but the body cannot; the result is that there is a disharmony between the two. This disharmony, the imbalance of body to which mind is also a part causes restlessness. We do not live in the present; almost always we live somewhere within the frontiers of our mind. The only solution to this problem is that we have to try to live in the present. not within the sphere of mind. Mind is there to serve us, not we to

14

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

serve it. Well, this is in itself a big subject and is out of my province, so I move to the next problem and that is sex.

The subject sex is so much surrounded by superstition and taboos that it has become a custom to view sex with horror; and dreadful threats are used with a view to stop it. As a rule these threats do not succeed, although they are believed to do so; the result is that the child lives in an agony of apprehension—the sex in mind, and fear in heart. This produces nightmares, nervousness, delusions and insane terror. He remains a nil in the matter of sex, but due to his inherent instinct for curiosity, he tries to learn it from the dirty streets. Generally he is told all this by another boy in a 'bald' spirit, as a topic for obscene jokes. It follows naturally that the vast mojority looks upon sex as something comic and nasty, with the result that they cannot respect a woman. I see myself that for most of the boys sex is the only topic for their amusing gossips; sex remains a mystery to them. It should be taught to them by parents and teachers before puberty.

But the fact is that if a child tries to know about it from its elders, they will be tempted to say 'Hush' or if at all they answer, it will be done briefly and drily, with a sgin of embarrassment in such a manner, that he feels sex to be horrid and dirty, and this leads him to think that there is something nasty in the relationship of his parents; later on he concludes that there is something ill in his existence. Such feelings in youth make happy

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

instinctive emotions almost impossible, not only in youth, but also in adult life. They live in a sexually restless state. The natural impulse to know about sex and suppression of it from the outhority of elders put him in a neurotic state and sometimes he becomes even a victim of 'shizofrania'. This is often a cause of loss of youth's energy and its inclination towards destructive attitudes. Psychologists and personal doctors of Hitler have admitted that he was so cruel because he was sexually restless and abnormal.

In this connection I would like to add something from the point of view of moral values. The word 'moral' or 'morality' has become so cheap that is creates a fuss in my mind; we have not got any value for it. Since birth we are taught by every elder that telling a lie is a sin, but almost every elder compels his youngers to tell a lie--whether for business matters, or personal matters or any other. It is very easy to give lengthy discourses on moral values, but how many elders, preachers or teachers practise it in their own life ? Practically all men are unchaste at some time of their lives; clearly those whe conceal this fact are worse than those who do not, since they add the guild of hypocrisy. But it is only to hypocrites that teaching posts are open. By 'teaching' I do not mean essentially academic teaching. There is also, what is more important, the fact that that hypocrisy encourages intolerance and forms of herd instinct, like that due to religion.

Religious preachers have made us so rigid in our

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

thinking that we cannot tolerate others. If one sees that a Mohammadan has molested a Hindu girl, then almost all Hindus of at least that street will become mad in anger, and will at once try to take revenge with Mohammadans. But if a Hindu dees the same with a Hindu girl, it will hardly affect anyone, except her family members. The same is true for vice-versa. Nobody knows the real meaning of religion. Most of the confiicts and violences are due to religion, language or caste. What to say about illiterate persons, even most educated university students fight for language or other minor issues. We often see it. Language is a means to express oneself, it is not the glory of a community.

Restlessness, impatience, arrogance, adventurousness are the qualities of youth. If his boiling blood does not get right channels it will have to flow elsewhere. These strifes, brick-batting with P.A.C. or burning of automobile are indeed the adventurous activities of the youth. We need only a proper channelisation of their energy. We all know well about the excellent performance of our Border Security forces and Scouts in the recent war with Pakistan, and it had the maximum number of youth community. During that time we never heard anything about violence or lawlessness in the youth.

For our so-called opportunists and immoral leaders, I do not wish to waste my time in denoucning them. For them, the only treatment is that which was given to General De Gaulle in France, or the Czars in Russia.

The youth want only love, affection and proper

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

guidance from the elders. Elders should realise their responsibilities and take pleasure in developing a living soul, as a mother takes while giving birth to a baby even feeling severe labour-pain, beeause she has eonstructive feelings.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निबन्ध सं० ५ रामहंस पाठक

सारांश

संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था के कारणों में स्वार्थलोलुपता को प्रथम एवं प्रधान स्थान प्राप्त है। दूषित राजनीति के कारण समाज का दूषित वातावरण एवं सामाजिक असमानता भी इनके कारणों में ही हैं, परन्तु इन कारणों के मूल में भी स्वार्थ-तत्परता ही निवास करती है। संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था को दूर करने का उपाय यही है कि जनता एवं जनता के प्रतिनिधियों में त्याग, सदाचार एवं 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना जाग्रत् एवं विकसित की जाय, जिससे मानव मानवीय मूल्यों को पहचानने में समर्थ हो सके।

संघर्ष एवं हिंसा वे दानवीय प्रवृत्तियां हैं जिनके कारण समाज में अव्यवस्था ही नहीं उत्पन्न होती वरन् कभी कभी तो इन्हीं के कारण समाज का सर्वनाश भी हो जाता है। संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था के विभिन्न कारणों में व्यक्ति, समाज तथा प्राणी की प्रकृति को प्रथम स्थान दिया जाता ह। जिस प्रकार पशुओं में सिंह, चीता आदि और पक्षियों में बाज एवं चील की प्रकृति ही संघर्ष एवं हिंसायुक्त होती है उसी प्रकार कुछ मनुष्यों की प्रकृति ही इस प्रकार की हो जाती है कि वे इन चीजों में दिलचस्पी रखते हैं तथा ऐसा ही कार्य करते हैं। प्रकृति का आशय स्वभाव से है जिसे दूसरे शब्दों में आदत भी कह सकते हैं। आदत का निर्माण किसी कार्य की पुनरावृत्ति से होता है। किसी कार्य के किये जाने की पुनरावृत्ति उसकी सफलता एवं उसके लिये मिलने वाली प्रेरणा पर निर्भर रहती है। कभी-कभी तो कुछ आदतें सम्पूर्ण समाज की आदतें होती हैं। समाज की आदत निश्चय ही व्यक्ति की भी आदत होती है। जैसे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि कोई समाज ही लड़ाकू या हिंसक या अव्यवस्था फैलाने वाला है तो उसमें रहने वाला हर सदस्य इन दुर्गुणों से सम्पन्न होगा। ऐसी स्थिति में संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था को दूर करने के लिये सम्पूर्ण समाज को ही बदलने की आवश्यकता होती है। संघर्षमय, हिंसक, एवं अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले स्वभाव को परिवर्तित करने के लिये ऐसे कार्यों की समाज-स्तर पर, राष्ट्र-स्तर पर एवं विश्व-स्तर पर कटु आलोचना की जानी चाहिये। ऐसे कार्यों का इस प्रकार सामूहिक रूप से घोर विरोध करना चाहिये कि वे सफल न हो सकें। तभी ऐसी प्रकृति को बदलने में समाज एवं ऐसा कार्य करने वाला दोनों ही सफल हो पायेंगे।

संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले कारणों में दूसरा स्थान स्वार्थ-अन्धता को प्राप्त है। स्वार्थलोलुप व्यक्ति या समाज अपनी स्वार्थसिद्धि के सम्मुख अपने प्रति किये गये संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था तथा इनसे उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों को तुच्छ समझता है। व्यक्ति-संघर्ष, वर्ग-संघर्ष, समाज-संघर्ष एवं राष्ट्र-संघर्ष के मूल में स्वार्थ ही है जिसके कारण विभिन्न हिंसात्मक कार्यों को करने की बाध्यता हो जाती है। तत्काल की बंगलादेश की स्थिति, वहाँ होने वाला भीषण नर-संहार और पूर्वी पाकिस्तान का पानी के बुलबुले की तरह मिट जाना क्या इस बात के प्रमाण नहीं हैं कि अंतःकरण में छिपे स्वार्थ के कारण ही यह सब हुआ है? समाज के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास ने सदियों पहले लिखा है कि 'स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति। सुर मुनि नर सबकी यह रीति॥' इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि स्वार्थ हेतु ही सब कार्य होता है। वह स्वार्थ संकुचित दृष्टिकोण रखता हो या विस्तृत, या व्यक्तिवादी हो या समाजवादी। हर कार्य तो स्वार्थयुक्त होता है किन्तु हर कार्य संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था-पूर्ण नहीं होता। इस बात से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वार्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गलत नहीं है यदि स्वार्थ सिद्ध करने का तरीका गलत न हो तो। एक आदमी नौकरी करके धनोपार्जन करता है। यहाँ भी उसका स्वार्थ है धन-अर्जन करना। एक दूसरा आदमी डाका डाल कर धनोपार्जन करता है। यहाँ भी धन-अर्जन ही स्वार्थ है, पर दोनों के लक्ष्य एक रहते हुए भी उनको पूर्ण करने के तरीकों में अन्तर है। एक अच्छा है और दूसरा बुरा। इस प्रकार उत्पन्न संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था को दूर करने का उपाय यही है कि समाज इतना उन्नत, शिक्षित, एवं सुसभ्य बनाया जाय, उसमें त्याग की भावना इस प्रकार भर दी जाय कि उसका स्वार्थ-सिद्धि का तरीका निंदनीय न होकर सराहनीय हो तथा उसका हर सदस्य कार्य करने या लक्ष्य तक पहुँचने के पहले यह सोचने में समर्थ हो कि साधन महान् है साध्य नहीं, क्योंकि साध्य का आधार साधन होता है।

संघर्ष हिंसा एवं अव्यवस्था की उत्पत्ति कभी कभी उत्पन्न करने वाले की मजबूरी के कारण भी होती है। जैसे किसी व्यक्ति-विशेष के व्यवहार, अत्याचार ने किसी दूसरे को इस सीमा तक परेशान कर दिया है कि दूसरे पक्ष को अब संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था करने के अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं रह गया है तो उसे ऐसा करना ही होगा। ऐसी दशा में निर्दोष किन्तु त्रस्त व्यक्ति जब कानून या सरकार का सहारा लेता है किन्तु सरकारी या सामाजिक दोष के कारण जब उसे उचित न्याय नहीं प्राप्त हो पाता जिससे उसे आत्म-संतोष प्राप्त हो सके तो उसका यह संकल्प कि अब उसे संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था का ही सहारा लेना है और भी दृढ़ हो जाता है। इस कारण को दूर करने के लिये सरकार एवं समाज को न्यायपूर्ण एवं नैतिकतापूर्ण कदम उठाना चाहिये।

संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था का एक कारण सामाजिक असमानता है। इस कोटि में विशेष स्थान आर्थिक असमानता को है। 'बुभुक्षितः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किं न करोति पापम्' । मरता क्या नहीं करता । जब समाज के दो वर्गों के बीच इतनी गहरी खाई हो जाती है कि एक वर्ग खा कर मरता है तथा दूसरा खाये बिना मरता हैं तो वर्ग-संघर्ष होता है और हिंसात्मक एवं अव्यवस्थित कार्य होते हैं। इनसे बचने के लिये समाज की हर प्रकार की असमानता को दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिये। सरकार इसके लिये विशेष जिम्मेदार है।

आधुनिक भारतीय समाज में संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। इसका एक प्रधान कारण देश की दूषित राजनीति है। समाज एवं जनता के हितों को ध्यान में न रखते हुए जनता के प्रतिनिधि पदों के लिये आपस में अनेक संघर्ष करते हैं तथा समाज में अव्यवस्था फैलाते हैं। समाज के अवाञ्छनीय तत्त्वों को बढ़ावा देते हैं तथा उनसे घनिष्ठ संबंध रखते हैं क्योंकि एक तरफ तो ये तत्त्व अपने समाज-विरोधी कार्यों से जनता को भयभीत कर अपने पक्ष के प्रतिनिधियों को मतदान कराकर उन्हें निर्वाचित होने में सहायता पहुंचाते हैं तथा दूसरी ओर निर्वाचित प्रतिनिधियों के पदीय प्रभावों एवं कार्यों से ऐसे तत्त्वों को सहारा एवं सुरक्षा प्राप्त होती है। सामान्य जनता इन दोनों शिकारियों का शिकार हो कर पिसती रहती है। इस कारण को दूर करने का उपाय यही है कि जनता के प्रतिनिधि अपने चुनाव को अपने लिये प्रधान न बना कर जनता के हित में प्रधान बनावें। चुनाव में समाज-विरोधी तत्त्वों को सहारा न बनावें तथा ऐसे तत्त्वों को किसी प्रकार का संरक्षण न प्रदान करें। जनता के प्रतिनिधि व्यक्तिगत हितों का त्याग जनहित के लिये करें क्योंकि जनतंत्र की सरकार, जनता की, जनता के द्वारा, एवं जनता के हित में होती है।

अन्ततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि किसी भी समाज, राष्ट्र या व्यक्ति को संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था से बचाने के लिये या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसके अन्तस् में इन कार्यों के प्रति बने संस्कारों को दूर करने का यह एक ही उपाय है कि समाज का हर सदस्य एवं समाज का हर प्रतिनिधि इस प्रकार के कार्यों को करने से पहले खुद सोचे तथा इनसे बचने का प्रयत्न करे। जनता एवं जनता के प्रतिनिधियों में त्याग, सदाचार एवं 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना जागृत एवं विकसित की जाय जिससे हर मानव मानवीय मूल्यों को पहचानने एवं उसका स्वागत करने में पूर्ण समर्थ हो सके। संघर्ष, हिंसा एवं अव्यवस्था के प्रति प्रत्येक मानव-मात्र में घृणा, एवं लज्जा के भाव उत्पन्न हों ताकि लोग इन्हें तथा इनसे प्राप्त होने वाले परिणामों को अपने अन्त:करण में किसी प्रकार का प्रश्रय प्रदान न करें। तभी समाज की इन चीजों से सुरक्षा संभव हो सकती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

DISCUSSION

Prof. Y. S. R. K Sarma

This whole subject, as I view it as a student of Biology, is one of human ecology. Julian Huxley has said that man represents the highest ring in the ladder of evolution, but man has not yet learnt to walk like a man on the face of this earth. How to make man a man and eliminate the devil in him, the animal in him—that is the main crux of the problem.

There are a number of instances where sex has been at the root of many extreme abnormal cases.

Blaine Hurie

While dealing with outward forms, individual and social, we should not forget that they reflect something inside of all of us. We judge harshly and we forget that on account of the tensions that we have, we are also the source of lawlessness, violence and corruption.

राजीव रंजन सिंह

मानव में हिंसा को प्रकृतिसिद्ध नहीं कह सकते। हिंसा प्रकृति की देन नहीं है। संघर्ष तब होता है जब हम अपनी किसी लालसा को पूरा करना चाहते हैं, बिना यह सोचे कि हम विश्व-सत्ता का एक अंग हैं, अंश हैं। अपने तक ही दुनिया को सीमित समझना हिंसा, संघर्ष का मूल है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामहंस पाठक

'प्रकृति' का अर्थ स्वभाव लें तो स्वभाव संस्कारों से बनता हैं। प्रकृति को बदला जा सकता है; हमारे कार्यों से ही उसका निर्माण होता है।

महेन्द्र गाभावाला

संघर्ष, हिंसा आदि केवल युवा-वर्ग में हों, ऐसी बात नहीं। प्रौढ़-वर्ग में भी वे हैं किन्तु हमारा परिसंवाद युवा-वर्ग पर केन्द्रित है।

[शरीर और मन की गति यदि भिन्न है तो क्यों और यदि भिन्न नहीं है तो कैसे इस विषय पर काफी लम्बी चर्चा चली, जिसमें राजीवरंजन सिंह, प्रदीपकुमार, महेन्द्र गाभावाला, विमला कर्णाटक, शिवमूर्ति, स० प० कुमार ने भाग लिया। किन्तु उसमें विषयान्तर अधिक हो जाने के कारण उसका 'रिपोर्ट' यहां प्रस्तुत नहीं किया गया है। इस चर्चा के उपसंहार के रूप में विमलाजी के कुछ वाक्य नीचे उद्धृत हैं—संपादिका।]

शरीर की आवश्यकता और मन की लालसा में अन्तर समझना चाहिए। वासना को लेकर मन दौड़ता रहता है और शरीर उस वासना की पूर्ति नहीं कर पाता। मन की अबाध गति के साथ शरीर अपनी गति नहीं मिला पाता। इससे तनाव पैदा होता है और उसमें से संघर्ष, हिंसा, अव्यवस्था की उत्पत्ति होती है। शरीर की आवश्यकता और मन की लालसा—इन दोनों में विवेक (discrimination) के द्वारा उक्त तनाव दूर हो सकते हैं।

Prof. V. S. Subbarao

Lack of understanding among the so-called 'groups' viz. students, teachers and administration is at the root

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

of many troubles. Lack of communication between these 'groups' leads to misunderstanding and that is the cause of trouble. Many troubles could be avoided if this misunderstanding is removed. For this purpose, we should think of some effective follow-up activity by way of a small working group.

[प्रो० सुब्बाराव और प्रो० यें. शिवरामकृष्ण शर्मा के अनुरोध पर, छात्र सदस्यों को, सायंकालीन सभा के आरम्भ में प्रस्तुत विषय पर अपने ठोस सुझाव देने के लिए कहा गया था। उस चर्चा का सम्बन्ध अनुवर्ती (follow-up) कार्य से है और उसके लिए अधिक विचार-विमर्श अपेक्षित है। इसलिए उसे यहां 'रिपोर्ट' करना आवश्यक नहीं समझा गया है—संपादिका]।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विमलाजी का प्रवचन

आज प्रभात में जो निबन्ध पढ़े गये, उनका विषय था, संघर्ष, हिंसा, अव्यवस्था—इनका प्रतिकार कैसे हो, विश्वविद्यालयीन जीवन में से, युवकों के जीवन में से ये कैसे दूर हों। इसकी सैद्धान्तिक चर्चा काफी हो चुकी। संघर्ष, हिंसा, अव्यवस्था के जो कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थिति में हैं, शिक्षण-पद्धति में जो दोष हैं, उनकी चर्चा तो आज दो-तीन दिन से किसी न किसी प्रकार चल रही है। उसमें जाना यद्यपि मौलिक चिन्तन की दृष्टि से अनिवार्य है, फिर भी इस संध्या मैं उसमें जाना नहीं चाहती।

मेरे मस्तिष्क में एक बात उठती है जिसे शायद विश्वविद्यालय के प्राध्यापक या छात्र कोई भी कभी पसन्द नहीं करेंगे। वह बात ऐसी है, कि विश्वविद्यालयों को डिग्री, पदवी देने का अधिकार न रहे। अभ्यास हो, पढ़ाया जाय, जिनको पढ़ना है वे आयें। कितने वर्ष के कोर्स होंगे, वे कोर्स कैसे तय होंगे, कौन किस प्रकार का कोर्स लेना चाहेगा इसके विस्तार में तो शिक्षकों के साथ बैठूं, या आप लोगों के साथ बैठूं तभी जा सकती हूँ, लेकिन अभी इतना ही कहना चाहती हूँ कि परीक्षाओं का सम्बन्ध पदवी, उपाधि, डिग्री से न रहे और जिनको नौकरी देनी है वे लोग परीक्षा लें। मान लीजिए किसी ने इश्तहार दिया कि इंजीनियरों की आवश्यकता है। इंजीनियरिंग कालेज के जिन छात्रों की पढ़ाई पूर्ण हो चुकी हो वे जायें। जिन्हें काम लेना है वे ही लोग परीक्षा लें कि कौन व्यक्ति अपने काम का है।

उपाधि, डिग्री का सम्बन्ध यदि विश्वविद्यालय के जीवन में नहीं रहता है तो बहुत सी समस्याएँ, उलझनें आसानी से हटाई जा सकती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। फिर उपाधियाँ खरीदना वेचना सम्भव नहीं रहेगा। फिर परीक्षा में नकल करते हुए किसी ने पकड़ा तो उसे छुरा भोंकना, कोई गरीव है तो उसे पैसे का प्रलोभन देकर अधिक नम्बर लेने की कोशिश करना, यह सारा जो झमेला है, क्रिया-प्रतिक्रिया की जो लड़ी है, यह कुछ नहीं रहेगा।

आप लोग इस पर विचार करें। आज तो समय नहीं लेकिन आपके यदि कोई अभ्यास-मंडल हों तो शिक्षक और छात्र जरूर इस बात पर विचार करें कि विश्वविद्यालयों से डिग्री देने का अधिकार यदि हटा लिया जाय और सरकार, औद्योगिक संस्थान, व्यापारी जिनको भी कर्मचारी चाहिए वे स्वयं परीक्षा लेकर अपना समाधान करें और नौकरी दें, तो क्या इस वात का कोई उपयोग हो सकता है? मैं तो विश्वविद्यालय में हूँ नहीं और विश्वविद्यालय के जीवन से प्रत्यक्ष सम्वन्ध प्रायः १८ वर्षों से नहीं है, लेकिन लगता है यह विचारणीय विषय है।

दूसरी वात चित्त में आती है कि जहाँ आवासीय विश्वविद्यालय (Residential universities) हों वहाँ पढ़ाने के लिए जो फीस ली जाती है वह भले ही नकद ली जाय, लेकिन छात्रावास में रहने की जो फीस हो वह नकद न ली जाय, किसी न किसी प्रकार के परिश्रम के रूप में ली जाय। विश्वविद्यालय के प्राङ्गण में फरनीचर की आवश्यकता होगी, नोट-बुक, पेन्सिल आदि न जाने कितने सामान आवश्यक होंगे, उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए केवल गरीव ही नहीं, लेकिन छात्रावास में प्रवेश पाने वाले हर विद्यार्थी के लिए दो घण्टे का दैनिक परिश्रम आवश्यक होना चाहिए। परिश्रम के क्षेत्र अनेक होने चाहिए जिनमें से छात्र स्वयं चुन सकें। फिर वह बढ़ई का काम हो, लोहार का काम हो, लाण्ड्री का काम हो या और कोई काम हो। प्राङ्गण के जो पाँच-दस-हजार निवासी हैं उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वे स्वयं काम करें तो शारीरिक परिश्रम के बारे में आज जो तुच्छता का भाव है, वह निकल जायगा। आज तो कोई काम करना चाहता ही नहीं। विश्वविद्यालय में आने के बाद हम कहते हैं पढ़ना बहुत है, कपड़े कौन सियेगा, कौन धोयेगा, यह काम कौन करेगा, वह काम कौन करेगा ? इस प्रकार शारीरिक परिश्रम के बारे में एक उपेक्षा की बुद्धि, वृत्ति रहती है, शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा नहीं है।

समाज में से हम वर्गों को हटाना चाहते हैं, शोषण को हटाना चाहते हैं, लेकिन परिश्रम के बारे में आदर नहीं है। यह धोबी है, यह चमार है, यह दुकानदार है, यह नौकर है, यह कैन्टीन में परोसने वाला बैरा है, यह झाड़ू देनेवाला है, ऐसी दृष्टि रहती है। कल जिस प्रकार कहा था कि कुण्ठा की जड़ें चित्त में हैं, उसी प्रकार शोषण की जड़ें हमारे भीतर हैं। वह इस विद्यार्थी जीवन में निकल सकती हैं। अधिक नहीं, दो घण्टे से अधिक किसी को काम न करना पड़े। किन्तु छात्रावास में निवास की फीस परिश्रम के आधार पर होनी चाहिए। फिर जिसने परिश्रम किया, उसे कूपन देते हैं या और कुछ देते हैं, यह सब बाद की बातें हैं जिन्हें सोचा जा सकता है। लेकिन मेरा कहना यही है कि विश्वविद्यालयों में छात्रों और अध्यापकों का जो सुकुमार जीवन हो गया है उसे हटाना जरूरी है। मैं तो क्रान्तिकारी व्यक्ति हूँ। मेरी बात किसी को पसन्द आनेवाली नहीं है।

जैसा छात्रों के लिए कहा, वैसा शिक्षकों के लिए भी कहनेवाली हूँ कि शिक्षकों को पूरा का पूरा वेतन नकद न दिया जाय, बल्कि प्राङ्गण-निवासियों के सम्मिलित परिश्रम के रूप में भी कुछ अंश दिया जाय। एक समुदाय या कम्यूनिटी के रूप में शिक्षक और छात्र रहने लगेंगे तो विद्यार्थी के लिए यदि दो घण्टे का परिश्रम है तो शिक्षक के लिए एक ही घण्टा हो, ४५ मिनिट हो, लेकिन एक प्रतीक के रूप में शारीरिक श्रम सभी के लिए होना चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गरीव देश की बात कर रही हूँ। आज तो विश्वविद्यालय अपने आप में द्वीप बन गये हैं इस देश में। यहाँ का वातावरण, यहाँ की तड़क-भड़क का देश की सामान्य जनता से कोई अनुवन्ध नहीं। केवल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की बात नहीं कर रही हूँ, सभी विश्वविद्यालयों की बात कर रही हूँ। विश्वविद्यालयों में समुदाय या साझा (Community, fellowship) केवल शिक्षण-वर्ग (class-room) में वैठकर नहीं आ सकता। जब एक साथ श्रम किया जाता है, जब जीवन की वहुविध प्रवृत्तियों में सहभागी वनते हैं तभी भाईचारा, विरादरी, साझेदारी, समुदाय, अपनापन इत्यादि पनप सकते हैं। अस्तु। दो बातें मैंने कह दीं। ऐसी तो अनेक बातें सुझा सकती हूँ। नमूने के लिए दो कह दीं।

तीसरी बात। विश्वविद्यालयों में राजनैतिक पक्ष अपने अड्डे न जमायें उनके प्रतिनिधि यहाँ प्रवेश पा कर उपद्रव न फैलायें, इसके लिए छात्रों, शिक्षकों और प्रशासकों की एक मिली जुली समिति होनी चाहिए जिसे निगरानी समिति (Vigilance Committee) कह सकते हैं। जिन्हें सचमुच इस बात का दर्द है कि विश्वविद्यालय राजनैतिक दाँव पेंच के अड्डे बन जाते हैं, वे क्या बाहर से आने वालों को दोष देकर ही बैठ जायेंगे ? किसी ने कहा राजनैतिक पक्षों वाले आते हैं, नेता आते हैं, किसी ने कहा गुण्डे आते हैं, आवारा लोग आते हैं, सब ठीक है लेकिन विश्वविद्यालय के छात्र कोई ८-१० वर्ष के वच्चे तो हैं नहीं। जिम्मेदार हैं। "प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्" इस प्रकार स्वाधीनता तो चाहते हैं पर १६-१७-१८ साल की उम्र के बाद भी इनको वहलाया जाता है, बहकाया या फुसलाया जाता है, तो जितना जिम्मेदार अन्याय करनेवाले हैं, उतना अन्याय सहन करनेवाले भी तो जिम्मेदार हैं। शिक्षकों और छात्रों की यदि निगरानी समिति रहे, तो हो सकता है कि इनकी चौकसी की नजर रहने से बाहर के जो हस्तक्षेप हैं उन्हें एक हद तक रोका जा सके।

१५

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कल के विषय के संदर्भ में मैंने कहा था कि जब तक हम हिंसा को व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में स्वीकृति और समर्थन देते हैं तब तक शोषण और युद्ध समाप्त नहीं हो सकते। उसी प्रकार कहना चाहती हूँ कि छात्रों के जो भी संगठन होंगे क्या वे अपने आप में ऐसा निश्चय नहीं कर सकेंगे कि जो भी आन्दोलन अपने अधिकारों के लिए या अन्याय के निवारण के लिए या कोई सुझाव देने के लिए उन्हें करना हो वह आन्दोलन सभ्यता से होगा, शान्तिपूर्ण ढंग से होगा ? शान्तिपूर्ण और सभ्यता पूर्ण आन्दोलनों में जोर कैसे लाया जाय, अपनी बात मनाने-समझाने और शान्तिपूर्ण, नैतिक दबाव डालने की शक्ति कैसे बढ़ायी जाय, उसे कैसे जगाया जाय, इसके रास्ते ढूँढने पड़ेंगे। हो सकता है कि सरकार की भाँति अधिकारिगण भी कुछ बधिर हो गये हों, संवेदनशीलता कुछ घट गई हो और जब कोई तोड़-फोड़ करे, चीखे-चिल्लाये तभी कानपर जूँ रेंगती हो और कुछ करने जाँय तब तक देर हो जाती हो। इस प्रकार यदि विश्वविद्यालयों में होता हो तो मुझे मालूम नहीं।

छात्रों के संगठन कैसे होंगे, उनके पदाधिकारी कौन होंगे, वे कैसे चुने जायेंगे इत्यादि तफसील में मैं उतर नहीं सकती। पूरी-पूरी जानकारी मुझे नहीं है कि कैसे चुनाव लड़े जाते हैं, कैसे पैसा खर्च होता है, कैसे डराया धमकाया जाता है; इसकी कुछ कल्पना तो है, कुछ अनुभव है, कुछ जानकारी भी है लेकिन पूरी-पूरी जानकारी न होने के कारण कुछ कह बैठूँ और किसी के प्रति अन्याय हो यह नहीं चाहती हूँ।

इतना ही सोचती हूँ कि छात्रों में यदि यह जिम्मेदारी उठाने की इच्छा हो जाय कि आन्दोलन कोई भी हो हम अपने प्राङ्गण में हिंसात्मक कार्यवाही नहीं होने देंगे तो वहीं से आरम्भ हो सकता है। बात यह है कि किसको पड़ी है ? छात्र हो, शिक्षक हो, अधिकारी हो किसको पड़ी है ? सारी लोकशाही की एक ही बीमारी है कि हर कोई सोचता है कि अपना-अपना देख लें, दूसरों का क्या देखना है। सभी ऐसा करते हैं, मेरे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अकेले के करने से क्या सुधरने वाला है ? सभी जगह तो ऐसा होता है फिर हम क्यों न करें ? या हम तो नहीं करते हैं और दूसरे करते हैं तो उनको रोकने की जिम्मेदारी हमारी कहाँ से ? जिस प्रकार देश किसी का नहीं, रेल किसी की नहीं, जितनी सार्वजनिक सम्पत्ति है वह किसी की नहीं, उसी प्रकार विश्वविद्यालयीन जीवन में भी किसको क्या पड़ी है ? आप ने कहा कि अधिकारियों में गुट होते हैं, शिक्षकों में गुट होते हैं, मान लिया। जाति-भेद, भाषा-भेद, प्रान्त-भेद होते होंगे, उनका प्रतिविम्ब वातावरण में उठता होगा यह सव मान लिया, लेकिन जो वहुसंख्या छात्रों की है वह यदि यह कहे कि वे लोग ऐसा करते हैं इसलिए हम असहाय हो गये हैं तो कैसे काम चलेगा ?

यह तो वही हाल हो गया कि गांधीजी से उनके साथी कहते थे कि शासक वर्ग यह सव करता है तो हम क्या करें। हमारे हाथ में तो शस्त्र नहीं, अस्त्र नहीं, निहत्थे लोग हैं क्या करेंगे ? मुट्ठी भर लोग वर्तानिया से आकर करोड़ों लोगों पर शासन करते थे और कोई इलाज नहीं था। तो गांधीजी ने कहा कि आपत्ति और विपत्ति को जो क्रान्ति का अवसर नहीं बनाते, वे क्या जीवन के कलाकार हैं ?

यह तो एक चुनौती है। अनेक क्षेत्रों में यदि भ्रष्टाचार है, दूषित वातावरण है तो विद्यार्थी अपने संगठनों में से तो भ्रष्टाचार को हटाने का प्रयास करें। यह जानती हूँ कि यह मार्ग खतरे से खाली नहीं है। छुरे भोंके जायेंगे। यहाँ की करुण कहानी भी मैंने सुनी है। जो वाहर होता है वह यहाँ भी होगा, लेकिन इसका प्रतिकार करने के लिए जिनकी दृष्टि विधायक है, जिनके चित्त में विश्वविद्यालय के लिए, मानवीय मूल्यों के लिए एक दर्द है, वे संगठित होकर प्रतिकार या विरोध का वातावरण पैदा कर सकते हैं। वैसा संगठन यदि नहीं वना तो वस कमेटियाँ वनेंगी, योजनायें वनेंगी, काम कुछ न होगा। कमेटी और योजनाओं की कमी नहीं है, कमी है ऐसे मानवों की जिनके दिल में दर्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो, कसक हो। ऐसे व्यक्ति इकट्टे नहीं होते और इकट्ठे होते हैं तो उनका संगठन टिकता नहीं, ठहरता नहीं।

सत्ता के महत्त्वाकांक्षी, सम्पत्ति के महत्त्वाकांक्षी और लालची इकट्ठे होते हैं, दुर्जनों के, गुण्डों के संगठन टिक जाते हैं, ठहर जाते हैं, क्योंकि सत्ता को बाँट लेना है, संपत्ति को बाँट लेना है। लेकिन जहाँ बाँटने को कुछ भी नहीं वहाँ? सुभाष बोस ने आजाद हिन्द फौज से कहा था "मेरे पास आप को देने के लिए आश्वासन के रूप में कुछ नहीं हैं। आपका पसीना गिरेगा, लहू गिरेगा, भारत माता की आजादी के लिए, लेकिन बदले में आप को क्या मिलेगा? पायेंगे आप नहीं, आजादी पायगा भारतवर्ष। आप को तो देना होगा, पसीना, आँसू, लहू। मैं कुछ नहीं दे सकता।" यह कहा था।

मैं समझती हूँ कि इस देश के ही नहीं, संसार भर के युवक जब तक नहीं समझेंगे तब तक कुछ नहीं होगा। राजनैतिक, आर्थिक, क्षेत्र में जो कहीं बँधे नहीं हैं, ऐसे युवक वर्ग जिनके कोई निहित स्वार्थ नहीं हैं, यथास्थिति बनाये रखने में जिनका कोई लाभ नहीं है, ऐसे युवकों में क्रान्ति की आकांक्षा नहीं है। बुझे, अधबुझे दीपक जैसे हम चलते हैं। कभी हलकी सी इच्छा होती है कि कुछ करें, चार दिन की बात हो गई, तो फिर पाँचवें दिन कौन करे? एक जो प्रबल आकांक्षा होती है, वह हमारे पास नहीं हैं। टिकने वाली गंभीरता, प्रयोजन की प्रामाणिकता, शब्दों की सच्चाई, कर्म में अध्यावसाय, मैत्री में सहयोग, यह सारा का सारा आज समाज के जीवन में अनुपस्थित है। और वह आपको, हमको पैदा करना है।

इसलिए कहती हूँ कि कौन है जिसे दर्द है, कौन है जो चोट खा जाता है, तिलमिला जाता है और कुछ करना चाहता है? गौतम बुद्ध ने आखिर क्या देखा था? सुख में, आराम में पला था। दुःख दर्द कभी नहीं देखा था। रथ में बैठ कर बाहर घूमने गया। देखा किसी वृद्ध को।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह क्या है ? वार्धक्य है। मुझे भी वार्धक्य आयेगा। किसी व्याधि-ग्रस्त को देखा। यह शरीर भी तो व्याधि-ग्रस्त होगा। किसी मृत शरीर को देखा। यह शरीर भी तो ऐसे ही मृत होने वाला है। यह बोध होते ही रथ लौटा लिया और प्रासाद के सब सुख और आराम उसके लिए निरर्थक हो गये। उसे लगा कि इसका कारण खोजना चाहिए, इसका कुछ निराकरण होना चाहिए । "सर्वम् दुःखम्" यदि है, तो इसके परे कोई आनन्द का झरना है या नहीं। जी तिलमिला उठा तो वह सुरक्षा, वह सुख-सुविधा किस प्रकार उसके लिए निरर्थक हो गई, मजा कैसे किर-किरा हो गया ? और वह निकल पड़ा ! इस प्रकार आज की जो परिस्थिति है, संघर्ष, हिंसा, तनाव, अव्यवस्था का जो वातावरण है वह हमारा मजा किरकिरा कर देता है क्या ? थोड़ी देर तो सभी बात कर लेंगे। छात्र हों, शिक्षक हों, या अधिकारी हों। सभी कहेंगे बहुत बुरा हुआ, बहुत बुरा हुआ। और फिर वही पान खाना, सिनेमा देखना, होटल में जाना। "चलो भाई ऐसा तो होता ही रहता है, बीस साल से होता आया है अब क्या बदलने वाला है"? यानी दुःख भी ठहरता नहीं।

हमें थोड़ी देर के लिए मानसिक उत्तेजना होती है या बुद्धि क्षुब्ध हो उठती है। लेकिन हम उस उत्तेजना या क्षुब्धता को अपनी समग्रता के भीतर समाने नहीं देते। वह समा जाये तो गहरा विषाद पैदा हो। यह दो चार मिनट के लिए छटपटाहट होती है, उसे हम भीतर उतरने ही नहीं देते ताकि वह हमारी जड़ों में जाकर स्पर्श करे, कुछ हिलाये और निराकरण का रास्ता खोजे बिना हमसे रहा न जाय। इस प्रकार की एक आर्तता, आकांक्षा देश को, समाज को, जीवन को बदलने की जब तक नहीं उठेगी, तब तक केवल योजनायें बनेंगी। मकान और पैसा दिया भी जाय तो भी हम बहुत कुछ कर पायेंगे ऐसी बात नहीं।

अब तक मुझे जो तीन महत्त्व के विषय रखने थे वे रखे गये। अब थोड़ी गहराई में, थोड़े विस्तार में आप को ले जाना चाहती हूँ। कल यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बात रखी थी कि जीवन के वाह्य अंग और जीवन के अंतरंग दोनों का एक साथ विचार करना है। दोनों में से किसी एक को छोड़कर नहीं चल सकता। वाह्य अङ्ग जीवन के सामुदायिक सम्बन्धों में अभिव्यक्त होता है। उसका विश्लेषण आप लोगों ने किया, डिग्रियाँ लेकर बाहर निकलते हैं तो नौकरियाँ नहीं मिलतीं और नौकरियाँ होती हैं तो सिफारिश के बिना नहीं मिलतीं। सब पूरा का पूरा चक्कर है। इसका वर्णन आप ने किया।

राजनैतिक अव्यवस्था, आर्थिक अव्यवस्था का काफी वर्णन हुआ। मान लीजिए ऐसी अव्यवस्था नहीं है। ऐसे भी तो देश हैं, अमेरिका, कैनेडा, अस्ट्रेलिया। वहाँ नौकरियों की तो कमी नहीं है। वहाँ जो लड़के पढ़ाई छोड़-छोड़ कर भाग रहे हैं, सो नौकरियों के कारण नहीं। अभी आस्ट्रेलिया में छः सप्ताह बिताकर आ रही हूँ। वहाँ सिडनी, मेलवर्न, केनवरा इत्यादि शहरों में प्रायः १५० युवक व्यक्तिगत भेंट के लिए आए। उनमें से प्रायः १७-१८ ऐसे थे जो दो-दो महीने में एक-एक नौकरी छोड़ते रहे। मन नहीं लगता, नौकरी अच्छी नहीं लगती। तो फिर सरकार से बेकारी का भत्ता लेकर एल० एस० डी० या मरियाना (गाँजा) लेते रहते हैं, भत्ते का अधिकांश तो इन मादक द्रव्यों में खर्च हो जाता है और शेष में से रूखा-सूखा कुछ खाकर गुजर कर लेते हैं। किसी ने मोटर वेच दी तो किसी ने फ्लैट वेच दिया।

वहाँ वहिरंग जीवन में ऐसी अव्यवस्था नहीं जैसी कि भारत में या एशिया अफ्रीका के अन्य गरीब देशों में है, लेकिन अव्यवस्था तो फिर भी है और वह है जीवन-मूल्यों की अव्यवस्था। नौकरियाँ वहाँ सुलभ हैं, यंत्र-विज्ञान चरम सीमा पर पहुँच चुका है, सुख-सुविधाओं की इतनी प्रचुरता है कि देखकर मनुष्य ऊब जाय। मोटर खरीदना, वेचना टेलीवीजन खरीदना, वेचना, लेना-देना, सब इतनी मामूली बातें हैं जैसे कि वे पेंसिल जैसी छोटी-मोटी चीजें हों। यंत्र-विज्ञान द्वारा उत्पन्न

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विपुलता के वातावरण में रहते-रहते, बड़े शहरों में रहते-रहते उन लोगों ने देख लिया है कि मनुष्य यंत्रवत् बन रहा है। युवकों में तो संवेदनशीलता बड़ी उत्कट, बड़ी गहरी होती है न। उन्होंने समझ लिया है कि पैसा कमाना तो यंत्र के साथ रहकर, जीना है तो यंत्र के साथ रहकर।

मोटर का 'स्पीडोमैनिया' (रफ्तार का नशा) चार दिन मजा देता है। यौन सम्बन्धों के साथ खेलकर देख लिया, प्रचुरता विपुलता के साथ खेलकर देख लिया। लेकिन कहीं उनको मजा नहीं आ रहा है। व्यक्ति का अभिक्रम (Initiative) स्वाधीनता वहाँ नहीं है। जीवन के किसी क्षेत्र में नहीं है। कौन-सी नौकरी करें यह चुनने में तो व्यक्ति को स्वाधीनता है, लेकिन जहाँ नौकरी करने गये कि वह अपने हाथ में नहीं रहता। जैसे अमेरिका में मुट्ठी भर संघों (Corporations) के हाथ में व्यापार है। उद्योगपतियों के हाथ में नहीं, छोटी-मोटी संस्थाओं के हाथ में भी नहीं। थोड़े से कारपोरेशन बने हैं, फिर मिलिटरी के गिने-चुने अधिकारी और ह्वाइट-हाउस में बैठनेवाले इने-गिने लोग, इन्हीं के हाथ में सब कुछ चला गया है।

यह जो जीवन का केन्द्रीकरण होता चला गया है, इसके कारण व्यक्ति की स्वाधीनता जो लोकतंत्रवादी देश हैं, उनमें और जो समाजवादी देश हैं उनमें भी समाप्त हो गई है। वहाँ का युवक-वर्ग यह पहचान गया है। इसलिए आन्तरिक अव्यवस्था आ गई है कि क्या करना है यह सब लेकर? जीवन—मूल्यों की अव्यवस्था जहाँ आ गई है, वहाँ भीतर संघर्ष चलने ही वाला है। उस अव्यवस्था की जड़ कहाँ है? संक्षेप में कहना है कि जड़ यहाँ है कि मनुष्य ने शारीरिक मानसिक सुख-सुविधा के साधनों को इतना महत्त्व दिया है कि उसकी अपनी जो सत्ता है जो शरीर और मन से अलग तो नहीं लेकिन गुणात्मक दृष्टि से उनसे भिन्न है, ऐसी जो उसकी सत्ता है, उसकी पहचान नहीं है। उस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्ता को मैं 'भगवत्ता' कहती हूँ। मानव शरीर दिव्यता का बीज है, शरीर, मन और भावना के आवरण हटाने के बाद भी जो शेष रह जाता है उसकी पहचान नहीं और अंश को अंशी समझकर जो जीवन का मल्यांकन हुआ, प्राथमिकताओं का जो क्रम निश्चित हुआ और तदनुसार ज्ञान, विज्ञान, यंत्र-विज्ञान को लगाया गया, अव्यवस्था की जड़ तो वहाँ है।

व्यक्तिगत और सामुदायिक जीवन का अधिष्ठान, मानवीय सम्बन्धों का अधिष्ठान, उन सम्बन्धों के प्रयोजक मूल्य, इनमें कहीं गड़बड़ है और जबतक यह गड़बड़ नहीं हटाई जायगी तब तक मेरे देखे, अव्यवस्था को दूर करना असम्भव है। तो क्या पश्चिम के युवक-वर्ग की भाँति इस देश का युवक-वर्ग यह देखने, सोचने, समझने की कोशिश करेगा कि पिछले सौ दो सौ वर्षों में योरोप अमेरिका और अन्य देशों में जो औद्योगिक क्रान्ति आई और तदनुसार औद्योगीकरण का जो ढाँचा बनाया गया और जिस ढंग से पैसे की प्रतिष्ठा हुई, उसमें कहीं गड़बड़ी है? पश्चिम में जो आर्थिक राजनैतिक दर्शन बना और उस जीवन-दर्शन के आधार पर जो औद्योगीकरण का ढाँचा बना, उसमें कहाँ गड़बड़ है यह समझना युवा-वर्ग के लिए बहुत आवश्यक है। सारे देश के युवकों को इकट्ठे होकर सरकार के लिए यह चुनौती देनी पड़ेगी कि जिस यंत्र-विज्ञान के चरम विकास में से मानवीय मूल्यों का कोई बोध नहीं हो सका, संतुलन तक मनुष्य नहीं पहुँच सका उसकी हमें नकल नहीं करनी है।

किसी ने यहां कहा था कि हम आर्थिक स्पर्धा में कैसे चलेंगे। किसकी आर्थिक स्पर्धा में चलना है भाई? इंग्लैण्ड के साथ? फ्रांस के साथ? उपनिवेश (colonies) बना-बना के जो साम्राज्यवादी (Imperialist) देश बने, जिन्होंने दूसरी देशों की जनता का लहू चूस-चूस कर वहां से कच्चा माल लेकर सम्पत्ति बनाई है, उनके साथ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साम्राज्यवादी उपनिवेशवाद (Imperialist Colonialism) के बल पर जिनकी सम्पत्ति बनी है उनके साथ स्पर्धा करेंगे? अमेरिका के साथ स्पर्धा करेंगे, जिसकी विदेशी सहायता लोगों को बड़ी मोहक लगती है? लगता है कि कितनी मदद देते हैं। जरूर देते हैं, लेकिन जहाँ-जहाँ अमेरिका की मदद गई वहां-वहां लोगों का भला हुआ या बुरा यह आप ही देख लीजिए। कोरिया, वियतनाम में क्या हुआ? भूखे-नंगे लोगों के हाथ में जब बिना परिश्रम के पैसा आने लगता है तब आपसी झगड़े और अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार का वातावरण बनने लगता है। किस प्रकार सम्पन्न देश अपनी मुद्रा का प्रचलन रखते हैं, इसमें आज मैं जा नहीं सकती। किस प्रकार औद्योगिक संस्थान मनोवैज्ञानिकों को नियुक्त कर के इनसे भावी उत्पादन के बारे में परामर्श लेते हैं, किस प्रकार उपभोक्ताओं के विभिन्न वर्गों के मनोविज्ञान का सूक्ष्म अध्ययन करके उत्पादन का परिमाण निश्चित किया जाता है, यह सब लम्बी कहानी है। ऐसे देशों की आर्थिक स्पर्धा में हमें उतरना है क्या?

जिन्हें विश्वविद्यालयों में पढ़ने-पढ़ाने का अवसर मिलता है, विशेष रूप से उन्हें इस विषय पर मुखर होना होगा, और वाचिक शक्ति का निर्माण करना होगा, जिससे आर्थिक और राजनैतिक जीवन के नये ढाँचे की खोज और विकास इस देश में हो सके।

बेलजियम में एक अर्थशास्त्री मेरे मित्र हैं। उन्होंने एक ग्रन्थ लिखा है जिसमें यह कहा है कि जब तक वित्त के ढाँचे को हटाकर दूसरा रास्ता नहीं खोला जायगा तब तक शोषण का अन्त नहीं हो सकता। आप जानते हैं कि समाजवाद में, साम्यवाद में कुछ सूत्र चलाये गये थे। जैसे, प्रत्येक से उसकी शक्ति के अनुसार लिया जाय, और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार दिया जाय। इन सूत्रों का आज समाजवादी देशों में क्या हाल है, यह देखने की बात है। अध्ययन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिए यह एक अच्छा विषय है कि साम्यवादी देशों में विचार-धारा का विकास किस प्रकार हुआ और उसके परिणाम क्या हुए। तो, उनका कहना है कि उत्पादक परिश्रम के साथ पैसे को जोड़ना ही गलत है। जब तक यह चलता रहेगा तब तक शोषण का, हिंसा का चक्कर चला ही करेगा।

जिन विषयों की चर्चा हम लोग कर रहे हैं, उन पर विचार-विमर्श कोई एक बैठक में तो हो नहीं सकता। आप लोगों के कोई अभ्यास-मण्डल हों या वैसे मण्डल बनाने की प्रेरणा मिलती हो, तो आप लोग देखेंगे कि एशिया और अफ्रीका के युवकों के सामने यह बड़ी भारी चुनौती है कि समग्रता की क्रान्ति का, दृष्टिकोण की क्रान्ति का, समस्याओं के विश्लेषण और शाब्दिक अभिव्यक्ति में क्रान्ति का मार्ग उन्हें निकालना है और अपने-अपने देश के मानव-बल, पशु-बल, प्राकृतिक सम्पदा और सांस्कृतिक विरासत के संदर्भ में समस्याओं के हल खोजना उनका काम है। यह कहने से तो नहीं चलेगा कि इधर अशांति है तो उधर से भी हिप्पी आते हैं। व्यक्तियों के आप ने दोष बताये। उससे मैं सहमत हूँ। लेकिन व्यक्तियों के दोषों से भी अधिक गहराई में, बुनियाद में दोष है। औद्योगीकरण का ढाँचा बदलना पड़ेगा। विज्ञान और यंत्र-विज्ञान का नये ढंग से विनियोग करना होगा। आणविक शक्ति का, स्वयं चालित यंत्रों का विनियोग कहाँ तक कैसे किया जाय, यह सब कुछ गंभीरता से सोचने की बातें हैं।

मौलिक चुनौती है जीवन-मूल्यों के परिवर्तन की। आर्थिक मूल्य, राजनैतिक मूल्य—सभी क्षेत्रों में मूल्यों को बदलना हैं और हम अपनी छोटी-छोटी इकाइयों में छोटे-छोटे संगठनों में यदि मूल्यों को नहीं बदलेंगे तो आगे क्या होगा। यहाँ तो अवसर है। अभी परिवार की जिम्मेदारी नहीं, आर्थिक, राजनैतिक यथास्थिति बनाये रखने में अभी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निहित स्वार्थ नहीं, ऐसे समय में यदि युवा वर्ग अपने संगठनों में क्रांतिकारी मूल्यों को ला सकें, तभी तो समझा जायगा कि कुछ हो सकता है।

एक अन्तिम मुद्दा। मनुष्य ने शरीर का, मन का परिचय पाया है। शरीर की माँगों में और मन द्वारा खड़ी की गई इच्छाओं में कोई सामंजस्य है या नहीं, इन दोनों में कोई संगति है या नहीं, इसे देखना चाहिए। इसे चाहें तो 'इच्छा-दर्शन' कहें किन्तु आवश्यकता और इच्छा का सम्वन्ध समझना ही चाहिए। यहाँ दमन, पीड़न, संयम की वात नहीं कह रही हूँ। कल परसों भी थोड़ा सा निर्देश किया था कि मन यंत्रवत् क्रिया करता है। उसकी व्यवहार की पद्धतियाँ वनी हुई हैं। उसे समझकर फिर उस चेतना की खोज करनी पड़ेगी जो उससे सर्वथा भिन्न है।

मन एक वैज्ञानिक यंत्र है। वैज्ञानिक ढंग से उसका उपयोग करना जब तक नहीं सीखेंगे, तवतक संघर्ष, हिंसा का अंत आने वाला नहीं है। यह तो कहने की जरूरत नहीं है कि जिसे मन-वुद्धि कहते हैं वह यंत्र है। मस्तिष्क में रक्त-गोलक पड़े हैं, उनमें ज्ञान और अनुभूतियों का संग्रह रसायनों के रूप में पड़ा रहता है। ज्ञान का सम्पादन, अनुभूतियों का अर्जन, क्रोध का आना, ईर्ष्या का उठना ये सभी यांत्रिक क्रियायें हैं। "मेरा गुस्सा, मेरी ईर्ष्या, मेरी पसन्दगी, मेरी नापसन्दगी"—इनको इतना महत्त्व देकर जो हम संघर्ष में, हिंसा में उतरते हैं, इसका वास्तव में तो कोई आधार नहीं है, वड़ा बचपना है यह सब। क्रोध एक प्रकार का प्रतिरक्षा का यंत्र (Defence Mechanism) है। आज या कल किसी ने सुन्दर मुद्दा उठाया था पशुओं के जीवन को लेकर। पशु मारता भी है तो हिंसा नहीं करता। हिंसा के लिए हेतु चाहिए। मनुष्य हिंसा करता है। लेकिन बाघ या सिंह को दूसरे पशु को मार कर खाने की आवश्यकता है तो उसमें हेतु नहीं है। हिंसा और संघर्ष प्रतिरक्षा के यंत्र के ही अवयव हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सुरक्षा की आकांक्षा ही भय है और क्रोध, घृणा, ईर्ष्या इत्यादि से बना हुआ प्रतिरक्षा-यंत्र मनुष्य में पशु की नैसर्गिक या मूल-प्रवृत्ति का अवशेष है। वह अवशेष मनुष्य में पड़ा हुआ है। मनुष्य की चेतना में ये जो पाशविक वृत्तियाँ पड़ी हुई हैं, उन्हें समझना होगा। भय का उपयोग है, क्योंकि उससे एक प्रकार की सावधानता पैदा होती है। अँधेरे में अनजाने प्रदेश में जाना हो तो मनुष्य सावधानता से जायगा। सुरक्षा की आकांक्षा मनुष्य के जैव (Biological) ढाँचे में निहित है, वह तो ठीक है और वहीं तक उसका उपयोग भी है। गड़बड़ तब होती है जब मनुष्य इस पाशविक सहज वृत्ति के अवशेष को मानसिक क्षेत्र में ले जाता है। तभी हिंसा पैदा होती है।

जब हम अपने मस्तिष्क, बुद्धि, मन नाम के यंत्र से परिचय पायेंगे, जब उसकी रचना और रसायन को समझेंगे, तो बिना क्रोध के, बिना ईर्ष्या के बुद्धि और मन का उपयोग करने की क्षमता हममें पैदा होगी। मेरी समझ में नहीं आता कि क्रोध आने पर मनुष्य को लज्जा या संकोच क्यों नहीं होता। दिन में दस बार क्रोध आता है। जरा मन के खिलाफ हुआ कि क्रोध आया, कुछ मुँह से निकल गया या नजर ऐसी निकल गई कि दूसरे के दिल में तीर की तरह लग जाय। वाणी का सन्तुलन जाता है, व्यवहार का जाता है। यह क्या पागलपन नहीं है ? दिन में कितने क्षण इस प्रकार के व्यवहार में जाते हैं, इसे यदि हम सात दिन तक देखें तो दंग रह जायेंगे।

सत्ता की आकांक्षा, स्वामित्व की, स्वत्व की कामना, दूसरे पर प्रभुत्व की लालसा—यह क्या मनुष्य का स्वभाव है ? मैं यह कहना चाहती हूँ कि यह स्वभाव मनुष्य की समग्रता का नहीं है। जिस शरीर का परिचय हुआ है, जिस मन का कुछ परिचय हुआ है, उसका वह किसी हद तक स्वभाव है। विभिन्न जातियों में, विभिन्न धर्मों में शरीर और मन का विशेष पद्धतियों में संस्कार हुआ है, किन्तु मानव की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चेतना उतने में ही सीमित नहीं है। शरीर, मन, बुद्धि—इतने में मनुष्यत्व समाप्त नहीं होता। मनुष्यत्व और कहीं है। उसकी खोज करनी होगी। तव कहीं मन, बुद्धि का वैज्ञानिक उपयोग करने की क्षमता आयेगी।

मस्तिष्क के परे जो कुछ है उसकी खोज को मैं आत्म-साक्षात्कार कहती हूँ। पिछली वार एक वात कही थी। संक्षेप दुहरा हूँ कि वलगेरिया में Suggestology and Suggestopaedia के नाम से एक संस्था चलती है और उसमें उन लोगों ने शिक्षरण की गति १६ गुणा वढ़ा कर वताई है। मस्तिष्क के परे चेतना से सम्बन्ध स्थापित करके यह किया है। उनकी पुस्तक अमेरिका में छपी है। उसमें शिक्षरण पर कुछ अध्याय हैं जो पढ़ने लायक हैं। मनुष्य को अपनी समग्रता का परिचय नहीं है। रूस में स्थूल शरीर के भीतर के दो तीन शरीरों के चित्र लिये गये हैं, दूर-संवेदन (Telepathy) के वेग (Velocity) को नाप लिया गया है, मशीनों में अंकित कर लिया गया है। पृथ्वी और चन्द्रमा के वीच सम्पर्क के द्रुततम साधनके रूप में दूर संवेदन (Telepathy) का उपयोग करने वाले हैं और हम यहाँ बैठ कर कहते हैं कि क्रोध और ईर्ष्या तो मनुष्य का स्वभाव ही है।

मन की मर्यादाओं को अपनी मर्यादा मानकर मनुष्य निराश, हतबल होकर बैठा है। विश्वविद्यालयों में मन से परे की चेतना का अभ्यास नियत पाठ्यक्रम से वाहर हो सकता है। अभ्यास-क्रम में तो जब उसे दाखिल करेंगे तब होगा। मेरी तो बड़ी इच्छा है कि इस दिशा में प्रयत्न होने चाहिए, प्राथमिक शिक्षरण के स्तर से ही मन से परिचय पाना और यांत्रिक पद्धति से परे जो चेतना का क्षेत्र है उसकी खोज करने के लिए पाठ्यक्रम से बाहर रहकर ही सही, प्रयास होना चाहिए। यह कैसे हो सकता है, यह आज का हमारा विषय नहीं है।

संघर्ष और हिंसा का अन्त मन की भूमिका पर से आना सम्भव नहीं। इसका अर्थ यह नहीं कि तात्कालिक उपाय न सोचे जाँय। वह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सब तो करना चाहिए लेकिन अन्तिम निराकरण की दृष्टि से मानव में परिपक्वता लानी है, उसके लिए मन की मर्यादा को समझकर उसके परे जो चेतना है, वहाँ प्रतिष्ठित होना पड़ेगा। संस्कारित (Conditioned) मस्तिष्क के परे चेतना के आयाम में जब मानव प्रतिष्ठित होगा तब वह अद्वैत, निर्द्वन्द के आयाम में जी सकेगा, जिसे प्रेम कहते हैं। तब उसके लिए आश्रय-विषय (Subject-object) संबन्ध का द्वन्द्व नहीं रहेगा और उसका दर्शन अद्वैत के आयाम में से उठेगा और उसका प्रतिसाद (Response) अद्वैत की सहजता में से उठेगा। तब उसका दर्शन, श्रवण, व्यवहार बदलेगा और मानव में एक नयी शक्ति का जन्म होगा। पशु की चेतना में से मानव की चेतना में आये हैं, अर्थात् सादी चेतना में से जटिल (Complex) चेतना का प्रादुर्भाव हुआ है, वैसे ही मानसिक उत्क्रान्ति में से एक नयी चेतना का जन्म मानव में ही होने वाला है।

आज के युवक बड़े भाग्यशाली हैं क्योंकि उनके चारों ओर चुनौतियाँ हैं। कहीं नजर नहीं घुमा सकते कि जहाँ चुनौतियाँ न हों। पुराने ढर्रे, ढाँचे ढह रहे हैं, जीवन-पद्धतियाँ लुढ़क रही हैं, उन्हें कैसा भी सहारा देकर खड़ी करें तो खड़ी होने वाली नहीं हैं; अध्यात्मिक सम्प्रदायों में से खड़ी होने वाली नही हैं, आध्यात्मिक सम्प्रदायों में से जितने भी अवैज्ञानिक होंगे, वे सब ताश के महल की तरह ढह रहे हैं। यह एक बड़ा शुभ अवसर है। इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में युवावस्था में रहना जिनके भाग्य में होगा, वे बड़े भाग्यशाली होंगे। १८५७ से १९४७ तक इस देश में जो चार-पाँच पीढ़ियाँ गुजरीं, उनके मन में जैसे यह आकांक्षा थी कि देश को कैसे आजाद करें; वैसे ही आज के युवकों के मन में यह आकांक्षा होनी चाहिए कि जहाँ उनका अपना जीवन है, जहाँ वे बहुसंख्या में है, वहाँ संघर्ष, हिंसा का अन्त नहीं तो उसे न्यूनतम मात्रा में लाने के लिए वे सभी विधायक उपायों को काम में लायेंगे। छात्रों का 'फ़ोरम' हो या छात्रों और अधिकारियों के बीच सेतु जैसा कोई

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'फोरम' बने जिस पर आकर समस्याओं का विश्लेषण हो और नयी चेतना को खोलने का प्रयास हो।

तो, आज पहले जो दो बातें रक्खीं, वे अरुचिकर प्रतीत होंगी, उन पर सोचें और अगली बार जब कभी मिलना होगा तब आगे बात होगी। मैं स्वयं यहाँ जल्दी न आ पाऊँ, तो आप लोग जो अनुवर्ती (follow-up) काम करेंगे उसकी तरफ मेरी एक आँख रहेगी। वे दो बातें यह थी कि विश्वविद्यालयीन जीवन में पदवी को शिक्षण के साथ न जोड़ें और दूसरे जो फीस ली जाती है उसका आधा हिस्सा नकद पैसे के रूप में लिया जाय और आधा परिश्रम के रूप में। इसका यह आशय नहीं कि गांव के चमार के ढंग से परिश्रम होना चाहिए। लेकिन जो एक वातावरण बना है कि शिक्षकों का पृथक् वर्ग है और छात्रों का पृथक, यह जो बिखरा हुआ वातावरण है, जिसमें सह-अस्तित्व (Co-existence) तो है लेकिन सहजीवन नहीं, परस्पर अपनापन नहीं, परस्पर विरोधी बन कर हम खड़े हैं, और अपने स्वार्थों को एक दूसरे से अलग समझ रहे हैं, इन सब बातों के प्रतिकार के लिए साथ परिश्रम करना बहुत आवश्यक है। यह काम तो एक प्रतीक के रूप में होगा। फिर भी एक घण्टे से कम किसी के लिए नहीं होना चाहिए। उसके बिना न छात्रों में जिम्मेदारी आयेगी और न शिक्षकों में सहजीवन। आज तो लड़कों को क्या, मां-बाप का पैसा आया, दिया। जिम्मेवारी की मनः-स्थिति पैदा करना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता हैं। उसके लिए जितने संकेत पैदा करने पड़ें करने चाहिएँ।

तीसरी बात यह कही थी कि विश्वविद्यालयीन जीवन में राजनैतिक दलों का हस्तक्षेप नहीं होगा। इसके लिए छात्र, शिक्षक और अधिकारी मिल-जुल कर निगरानी समितियां बनायें। आज तो यह कहा जाता है विश्वविद्यालय अपराधियों के अड्डे बन गये हैं। इतना कहने से ही तो नहीं हो जायगा। इसे दूर कोई नहीं करेगा क्या? कुछ तो करना पड़ेगा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निगरानी-समितियां सजग रहें तो यह हो नहीं सकता कि हिंसा भड़कने वाली हो और किसी को पता न चले। समय पर खबर देने वाली उनकी टुकड़ियाँ हों। और सब के मन में यह दृढ़ निश्चय हो कि विश्वविद्यालय के प्राङ्गण में हम हिंसा नहीं होने देंगे। इन लोगों को कोई मारेगा, पीटेगा नहीं ऐसी बात तो नहीं। लहू तो गिरेगा ही और गिराना पड़ेगा। बलिदान के बिना आज तक कभी परिवर्तन नहीं आया। अधः पतन की चरम सीमा तक जब पहुँच चुके हैं तब फिर उठने के लिए बलिदान तो देना ही होगा। लेकिन किसी को दर्द हो कि कुछ करना है, ऐसा लगे कि मिल कर कुछ करें, तभी कुछ हो सकता है।

छात्र अपने संगठनों में यह निश्चय करें कि शांति से सभ्यता से आन्दोलन चलायेंगे। यह तीसरी बात कही थी।

यदि मुट्ठी भर युवकों में भी कुछ करने की लगन, आर्त्तता आ जाय तो एक मस्तिष्क दूसरे को प्रेरित करेगा और कुछ हो सकेगा।

यहाँ हमारे मिल कर बैठने से ही सब समस्यायें हल हो जायेंगी ऐसी बात नहीं, लेकिन आप लोगों के चरणों में मैंने अपनी हाजिरी तो दे दी, इसका सन्तोष है।

—o—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

:6:

PRIVILEGES AND RESPONSIBILITIES RESULTING FROM SCIENTIFIC AND TECHNOLOGICAL DEVELOPMENT

विज्ञान तथा यन्त्र-विज्ञान के विकास के फलस्वरूप मानव को उपलब्ध सुविधाएं और उत्तरदायित्व

Wednesday, 22nd. March

Morning Session—8 A. M.

Number of Papers—Three

1. Sri S. N. Mahendra—M. Sc. Elect. Eng.
2. Sri V.V. Suryanarayana—M. Sc. Elect. Eng.
3. श्री हरिकेश बहादुर—M. Sc. Chem. Eng.

• **Participants in Discussion**

Prof. Y. S. R. K. Sarma, Blaine Hurie, Rajiv Ranjan Singh, Mahendra B. Gabhawala.

विमलाजी का प्रवचन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चयनिका

हर, सुविधा अपनी जिम्मेवारी साथ ले कर आती है। उस सुविधा को बरतने का उत्तरदायित्व यदि हम न उठायें तो उसे सुलभ कराने के पीछे समाज का पूरा परिश्रम बेकार साबित होता है।

× × ×

दैनिक जीवन में सुविधाओं के सम्यक् विनियोग की दृष्टि और वृत्ति यदि जागृत नहीं होगी तो बड़ी चीजों के उपयोग की बातों से कुछ हासिल नहीं होगा।

× × ×

केवल किताबों में लिखी जानकारी से काम नहीं चलता। दायित्व हो, हृदय में प्रेम हो, ज्ञान का क्रियात्मक विनियोग करने की लगन हो तो कैसे काम नहीं होगा। ?

× × ×

यन्त्र विज्ञान का उपयोग करना हो तो चित का स्वास्थ्य, सन्तुलन पहले हासिल करें। नहीं तो यह विज्ञान की शक्ति पागल बना देगी।

× × ×

ज्ञान, विज्ञान, यन्त्र पृथ्वी को जीतने के लिये नहीं हैं, उसके साथ संवाद साधन के लिये हैं।

× × ×

इस परिसंवाद का यही उपयोग है कि मुट्ठी भर छात्रों के सामने यह स्पष्ट हो जाय कि समस्यायें उतनी सीधी नहीं हैं, जितनी कि वे समझते हैं।

—विमलाजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ABSTRACT

Paper I

S. N. Mahendra

When Man was a child it behaved like a child, it lived liked a child, it enjoyed like a child. Now man has groun up. He is able to understand and enjoy the world more than what he could do when he was a child. The modern scientific and technological researches and developments have taken Man to a height from which he can look at life in greater detail and wider area. After being elevated to such a height Man has been charged npon to observe life, live accordingly and behave in society in a manner which is demanded by the modern facilities that are at his command. If Man does not behave in a proper manner and neglects his responsibilities he is a criminal. In every development and research it has been the aim of man to conquer the Nature and make her his slave. If the researches and developments kept on duty to enslave Nature are not properly controlled and dealt with, they in turn may be seen to join hands with Nature and plan a coup to replace Man from supremacy of the earth. Is Man prepared and ready to face that day ? Will this give him satisfaction and pleasure?

Happy are those from whom nothing is expcted, for they have nothing to bother and nothing to worry about. This in itself corresponds to the zero stage or inactive stage of man. The man at such a stage is not only incapable of doing adything but is also not expecting anything such as wealth, fame or honour from society.

The very step of man towards any privilege or responsibility of society lesds to the birth of the other. I shall express this feeling of mine in the form of a poem :

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Privileges and responsibilities are so mueh together
That it is difficult for one to separate one from the other.

Each is the shadow of the other
Each exists so long as is the other.

Both are so distant apart
And have so different hearts
Both have so similar births
But yet possess different tastes.

To love one and hate the other
To rnn for one and avoid the other
This is what gives unbalance in life
This is what leads to self-strife.

Go look into the past
Or the existing present
Frustration and sorrow exists
Because of the unbalance.

These lines not only convey one's feelings, but also contain sufficient truth in them. I shall not go into their analysis unless desired but shall try to supplement the analysis by certain examples which we see and experience now and then around us.

We must make note of one thing in the very beginning. The mind of man must become more and more mature with the advancements and researches in the field of science and technology. If the society, of which man is a constituent, is to have any advancement at all, then the development in Man's mind must be much faster than that in technology. The existence

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

of computers in the present day society would have been more useful and advantageous if the mind of man had developed to such an extent that it could function with the same speed and accuracy as the computer, if not faster than that. In fact, it is day by day becoming a a device for which everyone is trying his best to make use of the properties bestowed upon him—"the computers" by those people who must have realized the incompetency of human beings during their time and at a much lower level in the future. If you seriously think over the facilities that can be had from a computer you will certainly realize that we ourselves are becoming more and more irresponsible and incompetent towards our responsibilities and problems respectively. What is the need of a computer ? The answer is that a businessman flourishes more in his business if he is capable of doing all the business himself without the help of the servants employed, the servants being employed only to speed up the work.

Suppose Mr. X has employed a servant to do a piece of work. Here Mr. X will have to keep an eye on him alone. Now, say Mr. Y increases the number of servants to one hundred. Hence, an eye on one hundred is a "must" as before, to get the same amount of man-hour work. Mr. Y has done nothing more than what Mr. X had done earlier. except that he has been able to obtain more bulk of work. However. the work obtained per man-hour is still the same at the maximum, provided no trouble starts due to unions and strikes. Hence, Mr. Y is at the same time required to utilize more of his brain to see that no trouble starts. The privilege of obtaining

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

more amount of work results in the responsibility of taking care against strikes. However, if Mr. Y succeeds in creating a sense of competition and providing incentives to the workers so as to increase the work obtained per man-hour as compared to Mr. X, then this state of man will be said to be a progress faster than science and technology.

At present developments in social life and responsibilities are not as fast as science and technology. This is one of the reasons of the ills in society. India was and is facing a severe population problem. The government of India ran for its solution in the latter fifties and early sixties. Means of birth control and family planning had started pouring in from all sides. But unfortunately the way it was brought in public was extremely annoying. The politicians by nature believe that nothing can be done without propaganda. The result was that their movement towards solving of this problem, did not yied many constructive results, but it did succeed in demoralizing the society. The government of India and scientists concerned were privileged to have had thought about such remedies but unfortunately they didn't realize their responsibility while implementing them.

Similar is the case of abortion which Indian government wants to legalize. This, I am sure. will demoralize and degrade the society to a still greater depth if it is not properly brought into practice. The result will be that the government will go for some other alternative, and so on and so forth, but will not succeed in solving this problem of propulation. We must remember that :

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पाप से पाप नहीं धुलता है। यदि पाप किया है तो प्रायश्चित्त करना होगा।

Now I shall take the example of progress in transportation and travelling speed. With the advent of the concept of time, researches have been made in order to have faster speed of transportation and travel. Speed has increased to an enormous value—and side by side more and more sophisticated controls have also been incorporated. Had this not been done, travelling would have become very dangerous and risky. This will be termed as progress. But do you think that a man driving a cycle and another driving a scooter are equally carefree? The gain in time, as a result of high speed, has resulted in responsibility to be more careful while driving.

Let us now consider the evolution of weapons and the responsibility resulting thereby. In the stone age man used weapons made of stone and in the metal age those of metal. Advancements have been made and man has entered deep into the nuclear age. At present Man has nuclear weapons, and he is capable of destroying the entire life en earth within no time.

We all know that man uses weapons and tools when he finds that the power in him is not sufficient enough to face the problems facing him. Moreover, the use of weapons comes into play after he is not able to resist his anger. The capacity in man to resist his anger from being converted into action, i. e., a blow, must increase with the development of weapons that he uses. A blow in the Stone Age with a stone weapon may have only broken the head; a blow in the metal age may cause a

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

deeper injury ; a blow by a gun may cause the death of the victim, and blow by a nuclear weapon may destroy a city, country, or even total life. The point to note is that the cause is common in all the cases which results in the use of weapons but the damage caused to man or the target concerned has completely varied. Can man today behave in a manner similar to the man in the Stone Age ? Can he safely react to the anger of his without thinking pros and cons, as he could do in the Stone Age? A slap from a child and a grown-up man to the same mother has entirely different meaning, sense and effect.

In this way one may be able to consider a number of cases such as discoveries in medicine, biology, nuclear energy, automation where the gains made by humanity are not going to be as much as the curses and loss of life if they are not properly implemented. Let us be more clear that a country or a nation is more afraid of harm from those who are great and have the capacity of doing great deeds than a commoner. Hence, those who possess such a virtue should see that it does not become a vice. They should apply more of their virtue in seeing that they don't go astray, than trying to do something for the society or world. They should know that they are applying a force and a force is a 'vector quantity' which acts strictly in the direction in which it is applied. So mere magnitude of force is not sufficient; its direction should also be proper.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Paper II *V. V. Suryanarayana*

ABSTRACT

Are we really being privileged by the advancements in Science and Technology ? If we are, as it seems to us without knowing the ultimate results of our ever increasing enchroachments on Nature in our quest for more and more pleasure, let us think out our responsibilities as well, so as to be really happy.

[This paper was not presented.—Editor]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निबन्ध सं० ३ हरिकेश बहादुर

सारांश

मानवीय-जीवन को वैभवशाली और समृद्ध बनाने में विज्ञान और यंत्र विज्ञान का आज के युग में विशेष महत्त्व है। विज्ञान ने हमारे जीवन में अभूतपूर्व क्रांति उत्पन्न कर दी है। विज्ञान की वर्तमान अवस्था ने सम्पूर्ण मानव चेतना को झकझोर दिया है तथा प्राचीन मान्यतायें तेजी से विलीन होती जा रही हैं और नवीन मान्यतायें एवं मूल्य हमारे जीवन के अविभाज्य अंग बनते जा रहे हैं। किन्तु शाश्वत सत्य प्रत्येक युग के लिये समान और स्थायी होता है। हमें इसी तथ्य को स्वीकार करना है और अखिल मानवजाति की समृद्धि और उसके विकास के लिये विज्ञान एवं यंत्र विज्ञान का अपनी समस्त शक्ति द्वारा प्रवीणता के साथ सदुपयोग करना है जिससे विनाश की सभी संभावनायें नष्ट हो जायें तथा उत्थान और समृद्धि का मार्ग आलोकित हो सके।

[यह निबन्ध प्रस्तुत नहीं किया गया था। —संपादिका]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

DISCUSSION

Prof. Y. S. R. K. Sarma.

The scientists add to human knowledge by way of research, but the utilisation of that knowledge lies in the hands of Governments or governmental agencies which are controlled by politicians. The scientist who first discovered nuclear energy repented over having done so when his discovery was used for making atom bombs. Scientists have carried on mass campaignes against misuse of their discoveries.

Blaine Hurie.

Unfortunately. there have been many scientists who have not repented over making such discoveries as have been misused. In fact, the group of scientists working at the project of the atom bomb did know what they were going to produce and to what use it could be put. The basic proplem is that there is a big gap between our thinking and doing. Science has separated thinking from doing because someone discovers something and someone else has the power to use it. This process of thinking and doing has to be unified before knowledge can be balanced.

[ब्लेन ह्यूरी के द्वारा उठाये गये मुद्दे के विशदीकरण में विमलाजी ने जो कुछ कहा, उसका सारांश नीचे उद्धृत है—संपादिका]

सोचने और करने के अन्तर को विज्ञान ने प्रतिष्ठित कर दिया है, यह बड़े महत्त्व का मुद्दा अभी रखा गया। हम क्या करना चाहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, या क्या करना ठीक समझते हैं और क्या करते हैं, इनमें अन्तर रहता है।

वैज्ञानिक आविष्कार करने वाला एक और उसे उपयोग में लाने वाला दूसरा—यह भी अन्तर रहता है। उपयोग की बात सोचने वाला राजनैतिक नेता तो अपने स्वार्थ से शोषण की बात सोचता है। वैज्ञानिक की सम्मति उसे कभी मिल भी जाती है, किन्तु प्रायः वैज्ञानिक की सम्मति के विना उपयोग का निर्णय किया जाता है।

राजीव रंजन सिंह

विज्ञान की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि अब तक आप्तवचन के प्रामाण्य पर जिन क्षेत्रों में बात चलती थी, उनमें भी, आंशिक रूप से ही सही, विज्ञान ने बुद्धिगम्यता ला दी है, उन्हें भी प्रत्यक्ष जाँच के क्षेत्र में ला दिया है।

प्रकृति पर विजय प्राप्त करना विज्ञान का ध्येय नहीं रहना चाहिए, अपितु उसका परिचय पाकर उससे तादात्म्य स्थापित करना ही प्रयोजन होना चाहिए। अपने भीतर झाँकना, अपने में सबको और सब में अपने को देख सकना—यह क्षमता ही विज्ञान की सबसे बड़ी देन हो सकती है।

महेन्द्र गाभावाला

विज्ञान का अभिशाप तो यह है कि उसका विध्वंसात्मक उपयोग किया जाता है। किन्तु उससे भी अधिक चिन्तनीय बात है मानव के मूल्य में ह्रास और उसके स्थान पर मशीन के मूल्य की स्थापना। मशीन को साधन न मान कर साध्य मानने की प्रवृत्ति बहुत खतरनाक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विमलाजी का प्रवचन

मुझे आशा थी कि इस विषय पर सबसे अधिक उत्साह युवकों में रहेगा, किन्तु मालूम पड़ता है कि शायद इस विषय पर चिन्तन किया ही न हो कभी। भारतीय मानस ही नहीं, पूरा पौर्वात्य (पूर्वी देशों का) मानस, उनमें से भी Tropical देशों का मानस तत्त्वज्ञान, दर्शन में बहुत रुचि रखता है, विज्ञान (Science) यन्त्र-विज्ञान (Technology) में हमारा मानस कम चलता है। यहाँ विज्ञान शब्द मैं भगवद्गीता के विज्ञान शब्द के अर्थ में नहीं ले रही हूँ, विज्ञान से मेरा अभिप्राय है Pure and Applied science अवश्य ही पिछले दशक में यहाँ भी विज्ञान के लिये अभिरुचि कुछ बढ़ी है। पिछले दस-पन्द्रह वर्षों में भिन्न-भिन्न विज्ञान क्षेत्रों में अधिकारी जितने युवक इस देश ने पैदा किये हैं और वे अन्तरराष्ट्रीय जगत् में काम करने लगे हैं, उसे देख कर आशा बँधती है कि इस विषय में भी यहाँ का युवक-वर्ग सोचेगा।

प्रश्न होता है कि विज्ञान और यन्त्रविज्ञान से जो सुविधायें उपलब्ध हैं, तो हर सुविधा अपनी जिम्मेदारी साथ लेकर आती है। उस सुविधा को बरतने का उत्तरदायित्व यदि हम न उठायें तो वह सुविधा पैदा करने वाली जो सरकार, व्यक्ति या व्यक्ति–समूह हैं, उन का श्रम और देश का अर्थ, देश तथा व्यक्तियों का समय सब बेकार साबित होता है। यह ठीक है कि विज्ञान ने कुछ दृष्टि दी है, कुछ बन्धन काटे हैं। आंशिक ही क्यों न हो, कुछ सत्य-तथ्य के दर्शन कराये हैं। यह तो सब ठीक है, मैं उसमें नहीं जा रही हूँ। विज्ञान से उपलब्ध सुविधाओं का सम्यक् उपयोग आज के तथाकथित विकसित देशों में नहीं हो रहा है। सुविधायें उपलब्ध होने के बाद, उन के साथ संबन्ध होने के लिये चित्त का एक परिष्कार, परिमार्जन चाहिये, जीवन की एक दृष्टि चाहिये। मनुष्य जीवन किसलिये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, उसकी कृतार्थता, सार्थकता कहाँ है इसका बोध चाहिये । वह बोध न होने के कारण जहाँ सुविधा खींच कर ले जाये, उसी दिशा में, वहाँ-वहाँ जीवन भी गया है ।

अब जैसे टेलीविज़न है, वह अपने आप में एक अच्छी चीज है; विज्ञान का एक बड़ा चमत्कार है, लेकिन कई देशों में वह इतना अधिक उपलब्ध है कि हर घर में ही नहीं, हर कमरे में टी.वी. सेट् है । केवल सादा, काला-सफेद नहीं, रंगीन चाहिये, तो वह भी है । बड़ा कौतुक होता है उसे देखने में कि कैसे हजारों मील की दूरी पर यह ध्वनि व आलोक तरङ्गों का परावर्तन (conversion) सम्भव होता है । यह जो कार्य यन्त्र के मार्फत किया है ऐसी ही परावर्तन की शक्ति जिन के चित्त में होती है, उनका जीवन कैसे बनता होगा ? ये यन्त्र जैसे समय व देश (time and space) के व्यवधान को काट पाते हैं वैसे क्या मनुष्य अपने चित्त से नहीं काट सकता ? यदि काटता है तो कैसे ? एक देश में ही नहीं Satelites की मार्फत एक देश का दृश्य दूसरे देशों में भी दिखाते हैं । वायुयान को देखिये, तीन-तीन मंजिल के वायुयान हैं, ऐसी-ऐसी कितनी उपलब्धियाँ हैं । लेकिन उनका पूरा सही उपयोग नहीं है । टेलीविजन का उपयोग करते हैं व्यापार में, या विज्ञापनों में, भावनायें भड़काने में, काम-वृत्ति को उत्तेजित करने में । मानव जाति के लिए इसका शिक्षणात्मक, सांस्कृतिक, विकासात्मक कुछ उपयोग हो इस दिशा में कोई कुछ नहीं करता ।

यह दोष विज्ञान का नहीं । उपलब्ध सुविधाओं का सम्यक् विनियोग व्यष्टि और समष्टि के लिये करने की दृष्टि नहीं है । अपने देश में रेडियो-ट्रांजिस्टर हैं । उनका भी दुरुपयोग टी० वी० के समान ही है । कहीं पर्वत-प्रदेश में घूमने भी जायें तो हाथों में ट्रांजिस्टर लेकर चलते हैं । उगके शोर में ही परस्पर बातचीत भी कर लेंगे । वनश्री या प्राकृतिक रम्य दृश्य देखने बैठे हैं, पर १००-१५० ट्रांजिस्टर एक साथ बज रहे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं और उन्हें सुनने में किसी का ध्यान भी नहीं है। ऐसे ही बाईसिकल या स्कूटर है, अन्तर काटने के लिये उनका उपयोग है कि ४-५ मील जाना है तो कम समय और कम शक्ति खर्च करके हम जा सकें। पर आधा फलांग जाने के लिये भी साइकिल पर चढ़ते हैं। चलने की जो चरणों की शक्ति है, जो चारुता है उनकी, जो गरिमा है उसका कोई भान नहीं। यहाँ के साइकिल के स्तर पर ही अमेरिका में मोटर है। उसका भी वही अनावश्यक उपयोग। यही स्थिति अणुबम तक है। मैं तो छोटी-छोटी बात करती हूँ, दैनिक जीवन में जहाँ हम जीते हैं वहाँ उसके सम्यक् विनियोग की दृष्टि व वृत्ति जागृत नहीं होगी तो बड़ी चीजों के उपयोग की बातों से कुछ हासिल नहीं होगा।

यह उत्तरदायित्व हर व्यक्ति का है। आपको और मुझको बहुत बड़ा काम करना है। विज्ञान और यन्त्र-विज्ञान से मिली सुविधाओं को इस देश के लाखों देहातों में पहुँचाना है: उन देहातों में विज्ञान यन्त्र-विज्ञान का क्या स्वरूप होगा, किस क्रम से, किस सीमा तक इसे वहाँ ले जायेंगे यह सब सोचना है। औद्योगिक क्रान्ति के बिना विकासोन्मुख देशों का काम चलेगा नहीं, लेकिन वह क्रान्ति कैसे लाई जाय यह देखना है। थोड़ी ही अवधि में क्रेताओं की वस्तु-क्रय-शक्ति बढ़ानी है और उसके लिये वस्तुओं की उपज भी बहुतायत से बढ़ानी है। किस ढंग से बढ़ाएँ? इस ओर कुछ दृष्टि गांधीजी की थी, उन्होंने कुछ करना चाहा था पर वह आगे चला नहीं, क्योंकि सूत कातने वाले की जो मजदूरी २० साल पहले थी वह आज भी बहुत बढ़ नहीं पाई, वह चरखे का विज्ञान ठिठक गया। अब एक तकली के बदले आठ तकली यदि कातनेवाले और बुनकर की शक्ति बिजली के सहयोग (पावर) से बढ़ाई होती तो शायद आज खादी-ग्रामोद्योग तथा विभिन्न कपड़ा-मिलों का जो एक विडम्बनामय सह-अस्तित्व किसी प्रकार चलता है वह न रहता, कोई रास्ता निकल आता। लेकिन किसी ने सोचा नहीं। केवल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आलोचना करके रह जाते हैं लोग। तो मैं सोचती हूँ कि जिस युवावर्ग को विश्वविद्यालयों में पढ़ने का मौका मिलता है, वे सोचें कि वस्त्र-निर्माण, कृषि, ग्रामों का पुनर्निर्माण आदि एवं अन्य प्रकार की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विज्ञान एवं यन्त्रविज्ञान का सम्यक् विनियोग कैसे किया जा सकता है। इसे आप सब सोचें ऐसी कल्पना मन में है।

व्यक्ति और समाज के विकास का दायित्व हर व्यक्ति के चित्त में हो। विकास केवल शैक्षणिक या आर्थिक ही नहीं, सांस्कृतिक विकास को भी दृष्टि में रखते हुए विज्ञान का उपयोग कैसे करना है यह एक दिशा हुई। विज्ञान से प्राप्त सुविधाओं में व्यक्ति और समाज का धन, समय, श्रम का व्यय हुआ होता है, तो उस वस्तु का सम्यक् उपयोग हो, दुरुपयोग न हो यह व्यक्तिगत एवं सामुदायिक जीवन में देखना है। इस देश में न देहातों की कोई अच्छी योजना है, गाँव कैसे बनें, कुएँ कितने व कैसे हों, जमीन का रक्षण (conservation) कैसे हो, नदियों के बाँध कैसे बनें, जमीन के कटाव की कैसे रोकथाम की जाए—इत्यादि पर विधायक चिन्तन करें। इस सबकी आवश्यकता का हार्दिक अनुभव न करने से, इनके प्रति अपने दायित्व की भावना न होने से, बस किताबों में जो पढ़ा उतना ही प्रत्यक्ष में सम्भव है यह सोचने से मनुष्य उदासीन हो जाता है, कोई काम नहीं कर सकता। विज्ञान या यन्त्रविज्ञान के ग्रन्थ आप हिन्दी में पढ़ें या अंग्रेजी में, वह तो जिन देशों में उनका जन्म हुआ है, वहीं की परिस्थिति के सन्दर्भ में लिखा व पढ़ाया जाता है। यहाँ की परिस्थितियों में, कार्य में उसे उतारने के लिये चाहिए दायित्व का अनुभव।

१९५८ की बात है। आसाम में ब्रह्मपुत्र के उत्तर, उत्तर लखीमपुर जिले में भूदान व ग्रामविकास कार्य में जाना हुआ था। वहाँ सुवर्णश्री

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम की एक नदी थी जो प्रतिवर्ष १५-२० गाँवों को तबाह करती थी। उस क्षेत्र में हथकरघे का उद्योग खूब चलता था जिसमें बिजली के सहयोग से अत्यधिक लाभ व विकास सम्भव था, किन्तु उस 'सुबनसरी' क्षेत्र के ग्राम बिलकुल उपेक्षित पड़े थे क्योंकि इंजीनियरों के कथनानुसार उस नदी पर बाँध बन ही नहीं सकता था। किन्तु मैंने इसे अस्वीकार किया और गाँववालों के साथ उसी नदी के किनारे १८ मील चलते-चलते आखिर एक स्थान ऐसा ढूंढ लिया गया जहाँ किसी तरह नदी पर काबू पाना संभव था; वहीं गाँव वालों के साथ रहकर तीन महीने में कच्चा बाँध बना ही लिया गया। बाद में सरकार ने उसे पक्का किया। तो, कहना यही है कि केवल किताबों में लिखे से ही काम नहीं चलता। दायित्व हो, प्रेम हो हृदय में, जहाँ चाहिये वहाँ ज्ञान का क्रियात्मक विनियोग करने की लगन हो तो काम कैसे नहीं होगा। भाई—"ढाई आखर प्रेम के पढ़े सो पण्डित होय"। मनुष्य की शक्ति में श्रद्धा हो और परिस्थिति पर काबू पाने की लगन हो, दायित्व का भान हो तो फिर सम्यक् विनियोग होगा विज्ञान और यन्त्र-विज्ञान का। जो सुविधा दूसरों को मिली है वह हमारे देश के श्रमिकों को क्यों न मिले?

पहला दायित्व यह है कि देश की भूखी नंगी जनता के पास विज्ञान और यन्त्र से प्राप्त सुविधाओं को ले जाना है। जैसे मिशनरी जाते थे न! वैसे ही मैं चाहती हूँ कि सुशिक्षित युवक यन्त्र तथा विज्ञान के मिशनरी बनकर उन क्षेत्रों में जायें जो निरक्षरता, भूख और गरीबी से ग्रस्त व त्रस्त हैं। वहाँ प्रकाश लेकर जाना होगा। किताबों से वह प्रकाश नहीं मिलेगा। इज़राइल के लोगों को (ज्यूस् को) यह कहा गया था कि वहाँ रेगिस्तान में कुछ नहीं बन सकता। किन्तु उन्होंने उसे अपनी जन्मभूमि, अपना घर माना, और जब योरोप से भगाये गये तो शरण लेकर वहीं बैठे और आज वह रेगिस्तान ऐसा लहलहाता है कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूरे मध्य-पूर्व में वैसा कहीं नहीं है। १९५९ में युगोस्लाविया गई थी। वहाँ के विश्वविद्यालयों में जाना और मिलना हुआ। द्वितीय महायुद्ध के बाद ऑस्ट्रियन सरकार तथा रूस व जर्मनी के द्वारा वहाँ जो तबाही हुई थी, उसे ठीक करने के लिये यहाँ के नवयुवकों ने जो अथक परिश्रम किया है वह देखा। वे लोग प्रति सप्ताह की शनि-रवि की छुट्टियों तथा सभी प्रकार की छुट्टियों का एक दिन भी नहीं छोड़ते। स्कूल के बच्चों से लेकर विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों तक ने मिलकर जो रास्ते बनाये हैं, राष्ट्र-निर्माण के लिए युवक-शिविर चलाये हैं वे देखते ही बनते थे। वे सब कोई इंजिनियरिंग कॉलेज के तो नहीं थे, पर सभी के मन में एक लगन थी, अपने देश को यन्त्र तथा विज्ञान की हर सुविधा से समृद्ध करने की।

हम यदि चाहें कि सरकार ही देश भर में विज्ञान और यन्त्र को पहुँचाये, तो इस गरीब देश में यह बहुत कठिन काम होगा। पिछले २५ वर्षों में कितना सा हो सका है? कुछ किया है, ५० हजार गाँवों में बिजली गई, विनोबाजी के सहयोग से कोई ५०-६० हजार गाँवों में कुएँ बने। ग्रामों की अर्थयोजना के पुनर्निर्माण (Reconstruction of rural economy) के प्रयास हुए। भूदान व ग्राम-विकास के लिये उड़ीसा, कोल्हापुर, केरल, काश्मीर आदि स्थानों पर काम करते समय हमें पता लगा कि यहाँ तो यन्त्र-विज्ञान को लाना ही होगा। सैद्धान्तिक सवाल तो बहुत हो चुके कि विज्ञान का उपयोग कैसा और कहाँ तक होना चाहिये, विध्वंसात्मक उपयोग नहीं होना चाहिये इत्यादि। सिद्धान्त पर तो हम सभी सहमत हो जायेंगे, लेकिन उससे होगा क्या? आप कहेंगे कि बहन जहाँ-तहाँ से लाकर जिम्मेदारी हमारे ही ऊपर डालती है, कोई भी विषय रखें उसके सामने। बात सही है आप की; पर फिर किससे बात करूँ? तो, देश की परिस्थितियाँ—जनसंख्या और भूमि का अनुपात (Land-man ratio), देश की सांस्कृतिक सम्पदा, प्राकृतिक सम्पदा (Availability of natural resources), प्रभूत मानवीय शक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा पशुओं से प्राप्त प्रभूत शक्ति—ये सब कैसे समस्या न बनकर सुधार, समुन्नति के साधन बनें, इन सब पर विचार करके आप कोई एक निर्देश-सूत्र बनायें एवं उसे कार्यान्वित कर सकें तो मैं समझती हूँ कि बहुत कुछ हो सकेगा।

ऐसी कल्पना करती हूँ कि विधान सभा, लोक सभा आदि के सामने युवकों के सुझाव जायेंगे कि ये-ये समस्यायें हैं देश के सामने, इनके लिये विज्ञान और यन्त्रविज्ञान का उपयोग करना है, उसमें कृषि की दृष्टि से इतना हो सकता है, इंजीनियरिंग की दृष्टि से इतना, भूमि-सुधार के लिये इतना किया जा सकता है। इन सबका देश के इतिहास तथा वर्तमान स्थितियों के सन्दर्भ में चिन्तन करके कोई योजना बनायें। जैसे योजना आयोग बैठते हैं, वैसे ही हमारे युवकों के 'योजना आयोग' ऐच्छिक रूप से बैठें। अपने-अपने राज्यों में पृथक्-पृथक् समितियाँ बना लें। हिन्दुस्तान के कितने ही राज्यों से लड़के यहाँ आये होंगे। वे छुट्टियों में एक-एक जिला ही ले लें, उस ज़िले की समस्याओं का अध्ययन करें और सोचें व देखें कि वहाँ चिकित्सा की दृष्टि से, कृषि, अर्थशास्त्र इत्यादि अपने-अपने विभिन्न विषयों की दृष्टि से क्या-क्या करने की आवश्यकता है, किस ढंग से यन्त्र तथा विज्ञान को वहाँ ले जा कर समस्यायें हल की जा सकती हैं, बेरोजगारी कैसे कम की जा सकती है—इसकी ऐसी योजनायें बनायें जिन्हें शीघ्र कार्यान्वित किया जा सके—तो कुछ काम हो सकता है। ऐसे विधायक चिन्तन व कार्यों में छुट्टियों का समय लगायें तो देश का तो बहुत कुछ काम हो ही सकता है, साथ ही आप के अपने अध्ययन व ज्ञान का क्रियात्मक विकास आप नौकरी धन्धे में जब करेंगे तब करेंगे, लेकिन पहले उसका शिक्षणात्मक प्रयोग इस कार्य में हो जायेगा।

ऐसे कितने ही सुझाव मैं आपको दे सकती हूं आप के ज्ञान के बाह्य विनियोग के बारे में, लेकिन उसमें जाऊँगी नहीं। 'जो कोई समझे सैन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को, वाको कहियो बैन ।' जो 'सैन-वैन समझे नहीं' उससे तो बात नहीं की जा सकती । तो हम समझते हैं कि इतने 'सैन' से आप समझ जायेंगे और इतने 'वैन' से आगे जो करना है खुद कर लेंगे ।

अब आन्तरिक दायित्व की बात करूँ । विज्ञान अपने आप में एक शक्ति है । समझ की परिशुद्धि, वैज्ञानिक आविष्कार अपने आप में वड़ी शक्ति है । इस शक्ति का उपयोग करने के लिये चित्त का सन्तुलन, चित्त का स्वास्थ्य, भीतर की शान्ति व स्थिरता अनिवार्य रूप से आवश्यक है । चित्त के सन्तुलन और स्वास्थ्य के विना विज्ञान व यन्त्रविज्ञान से प्राप्त अनन्त शक्ति का सही उपयोग हो नहीं सकता । भारतीय एवं पौर्वात्य लोग अतीन्द्रिय एवं अतिभौतिक शक्ति से उन्मत्त हैं तो विश्व के पश्चिमी भाग के लोग यन्त्रविज्ञान व विज्ञान की शक्ति से उन्मत्त हैं । क्योंकि दोनों ही ओर चित्त स्वस्थ व सन्तुलित नहीं है ।

यदि बुद्धि स्वच्छ हो जाए, जो वस्तु या विषय के सूक्ष्मतम ज्ञातव्य तथ्यों को पकड़ सके, तो भारत व एशिया के युवक ज्यों-ज्यों यन्त्रविज्ञान के रहस्यों को पकड़ेंगे, वैसे-वैसे आगे बढ़ेंगे । इनके मस्तिष्क विज्ञान के लिये वड़ी उपजाऊ भूमि हैं । एशिया-अफ्रीका के नवयुवक यन्त्र विज्ञान के विषय में 'गोरों' (योरोपियन युवकों) से कहीं आगे बढ़ने वाले हैं । अगले दस-पन्द्रह वर्षों में ही आप देखियेगा । और गोरों की अपेक्षा इन 'काले' कहलाने वालों की संख्या विश्व में बहुत ज्यादा है । तो गोरों को १५० साल में जो कुछ मिला वह इन्हें अगले १०-१५ साल में ही मिलने वाला है । उनका तो १५० साल में वहुत कुछ सामाजिक, आर्थिक शैक्षणिक, राजनैतिक, कुछ सांस्कृतिक भी विकास हुआ, पर हमारे यहाँ उस विकास के विना ही, निरक्षरता के साथ ही वही 'औटोमशीन' और आणविक शक्ति तथा यन्त्र विज्ञान के सभी विकसित रूप आयेंगे तो कैसी दुरवस्था होगी यह चिन्तनीय है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी अशिक्षित ट्रक-चालक को देखिये जो मैट्रिक भी नहीं पढ़ा है और उसके हाथ में है इतना बड़ा ट्रक या टैक्सी। शराब के नशे में धुत होकर कैसे अंधाधुन्ध वेग से चलते हैं। वे यह नहीं सोच पाते कि ऐसे नशे में ट्रक चलायेंगे तो दुर्घटना होगी, १० आदमियों की जान जायेगी खुद अपनी भी जान जायेगी और १ ट्रक बनाने में जो देश का इतना पैसा लगा उसका क्या होगा? यह सोचने का, दायित्व का, भान वहाँ नहीं है। तो, गोरों के हाथ में यन्त्र रहने से इतना अनर्थ है, जब कि वे शिक्षित तो हैं केवल सांस्कृतिक दृष्टि से अपरिपक्व, अविकसित हैं, तो अब जो असंख्य अशिक्षितों के हाथ में वह आ रहा है तो कैसी दुर्गति होगी यह सोचने का विषय है।

इसलिये मैं कहती हूँ कि यन्त्रविज्ञान का उपयोग करना हो तो चित्त का स्वास्थ्य, सन्तुलन पहले हासिल करें। नहीं तो यह विज्ञान की शक्ति पागल बना देगी। बैलगाड़ी, हाथी, घोड़ा चलाने वाले का तो उस गति के साथ एक संवाद बन जाता है, पर मोटर का चालन-चक्र (Steering wheel) हाथ में आते ही पल भर में ३०-४०-५० मील भागने का जो नशा आता है, वह वेग का नशा शराब के नशे के समान ही है। 'वेग' का नशा हो जाता है। फिर आगे की मोटर को पीछे छोड़ने का, प्रतिद्वन्द्विता का नशा आता है। यन्त्र की शक्ति का नशा मनुष्य को आ जाता है। किसी भी शक्ति का उपयोग करने के लिये जो प्रौढ़ता चाहिये, प्रगल्भता चाहिये, वह आज नहीं है, यही संसार में विज्ञान और यन्त्रविज्ञान के गलत उपयोग का एक बहुत बड़ा कारण है।

अब चिन्तन के लिये दूसरा मुद्दा लें। यह सन्तुलन कैसे आवे?

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥
कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०८ उपनिषदों के मूर्धन्य ईशावास्योपनिषद् में कहा है कि यह सारा जगत् ईश्वर का निवास है। आप की या विज्ञान की भाषा में कहें तो जहाँ भी स्पर्श करें, कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ ऊर्जा न हो। उस ऊर्जा (energy) के साथ हमारा संवाद हो। ज्ञान, विज्ञान, यन्त्र पृथ्वी को जीतने के लिये नहीं, उस के साथ हमारा संवाद साधने के लिये हैं। यह अधिष्ठान हो जीवन का, तो चित्त की स्वस्थता व सन्तुलन उसमें से आप ही सम्पन्न हो जायेगा।

रूमानिया में एक नारी हैं जिन्होंने पृथ्वी, आकाश आदि भूतों के साथ अपना संबन्ध जोड़ा है और कहती हैं कि इन तत्त्वों को 'जीतने' की वातें वड़ी क्रूर व पुरानी हैं। Inter Continental Psychic Research Conferences में उनके प्रदर्शन हुए, वे वैठें और चश्मे की ओर देखें तो दूर मेज पर रखा चश्मा अपने-आप उनकी आँखों पर लग जाता, ब्रेड का टुकड़ा खुद ही उठ कर उन के मुँह में चला जाता। वे कहती हैं कि पदार्थ (matter) उनसे सहयोग करता है। वह काल को देखती हैं तो एक साथ एक क्षण में हजार साल की अवधि उन्हें दीखती है, काल में हमारा कल्पित आगे-पीछे या भूत-भविष्य का क्रम उनके लिये निरर्थक है। एक ही साथ ५०० वर्ष पीछे और ५०० वर्ष आगे का वृत्तान्त देखती है। और क्या-क्या हुआ व होने होने वाला है वता देती है। उसकी वातों की आँखों देखी वैज्ञानिक प्रामाणिकता २५ वर्ष तक वताने वाले लोग हैं। उस नारी के सामने आज पूर्वी व पश्चिमी योरोप के मानस-तत्त्वज्ञ और वैज्ञानिक हैरान हैं। ऐसी सत्य कथायें कितनी कहूँ? जिसे हम जड़ द्रव्य कहते हैं उसी (matter) के साथ भी संवन्ध, संवाद हो सकता है सहयोग लिया जा सकता है, इस का उदाहरण भर था यह। तो ज्ञानेश्वर महाराज ने दीवार को चला लिया, इसे दन्तकथा मानने की जरूरत नहीं रही आज। 'ईशावास्यमिदं' का अर्थ वताने के लिये यह कहानी कही।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जगत् में जो कुछ भी है उसे केवल 'गतिशील' कहना अनावश्यक है क्योंकि गतिरहित तो कुछ भी नहीं रह सकता इसे विज्ञान सिद्ध कर चुका है। कुछ गति अव्यक्त है, कुछ व्यक्त। व्यक्त के साथ हमारा सम्बन्ध है तो अव्यक्त के साथ भी है। इन सम्बन्धों में विसंवाद न हो इस दृष्टि से व्यक्त में व्यवहार, विनियोग करेंगे—यह एक नई दृष्टि आ जाती है। यानी विज्ञान व वन्त्र विज्ञान के सही विनियोग के लिये भी दृष्टि अध्यात्म दे सकता है। [अध्यात्म शब्द का रूढ़िगत गलत अर्थ न लें। अन्धविश्वास या खोखली परम्पराओं से मेरा मतलब नहीं। मैं विज्ञान-प्रेमी व्यक्ति हूँ, और जो वैज्ञानिक जाँच में नहीं आता उसे अध्यात्म मानती नहीं। हाँ, उस जाँच के लिए विज्ञान में जहाँ कमी होगी उसका भी संकेत करके चलती हूँ।]

चित्त सन्तुलित हो, स्वस्थ हो तो विज्ञान की शक्ति मदोन्मत्त नहीं करेगी। सत्ता और शक्ति के मद से ही तो सारी गड़बड़ी पैदा होती है—राजनीति में अर्थनीति में एवं अन्य सभी क्षेत्रों में। इसी से शोषण बढ़ता है। उस शक्ति का उपयोग करने की ताकत (stemina) नहीं है चित्त में। अस्वस्थ, बलहीन चित्त कैसे विज्ञान का उपयोग करेगा ? विज्ञान ने कुछ नहीं बिगाड़ा, लेकिन मनुष्य के पास साधन या पात्रता नहीं है उसके सम्यक् उपयोग की। इसलिये जीवन व चित्त का सन्तुलन कैसे पैदा हो, शिक्षण के साथ-साध सन्तुलित, स्वस्थ चित्त वाले व्यक्ति कैसे तैयार हों इसकी ओर ध्यान नहीं जाता शिक्षण संस्थाओं का और उसके लिये कोई सुनिश्चित योजना नहीं बनाते तो बिचारे जो छात्र बाहर निकलेंगे डिग्री लेकर, वे आर्थिक विपन्नता से सन्त्रस्त, सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये लालायित रहते हुए कैसे समायोजना करेंगे जीवन के साथ। ऐसे अस्वस्थ असन्तुलित लोगों के हाथ में यन्त्र आयेंगे तो दुरुपयोग ही तो होगा। शास्त्र हाथ में आये तो शस्त्र बने, कोई भी उपकरण आवे तो अस्त्र बने, सभी कुछ को लेकर वे लड़ाई पर उतर आते हैं। भीतर की लड़ाई ही बाहर प्रक्षेपित होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

[यहाँ भाषण समाप्ति की ओर था, इसी बीच किसी विद्यार्थी ने 'सैन' की स्पष्टता चाहते हुए चर्चा पुनः छेड़ दी, उसके प्रत्युत्तर में जो कुछ कहा गया वह संक्षेप में प्रस्तुत है—संपादिका ।]

जिनके लिए हमारे मन में असन्तोष है, वे समस्याएँ बहुत सादी नहीं हैं। संघर्ष है. हिंसा है, अव्यवस्था है, इसके लिये शिक्षक, अधिकारी कुछ नहीं करते, सरकार यह नहीं करती—ऐसे अति साधारण रूप में कह डालने की ये समस्यायें नहीं हैं। मेरी समझ में इस परिसंवाद का यदि कुछ उपयोग है तो वह यही कि इस विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों में से १५-२० के सामने भी यह स्पष्ट हो जाय कि समस्यायें जितनी सीधी तुम समझते हो, उतनी हैं नहीं। हर एक पर गहराई से चिन्तन करोगे तो उनके जो अनेक घटक हैं वे सामने आयेंगे। उनके लिए निष्काम काम करने वाले छात्र हों, शिक्षक हों। जिनके हृदय में कसक हो इस दुरवस्था के लिए ऐसे लोग मिलकर कुछ विधायक काम नहीं करेंगे तो छोटे-छोटे आन्दोलनों से कुछ नहीं होने का। २५-३० भी व्यक्तियों के हृदय में कोई रचनात्मक विचार पैदा हों, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों एवं उन क्षेत्रों में प्राप्त हो सकने वाली विज्ञान-प्रदत्त सुविधाओं को लेकर पृथक्-पृथक् विचार हों तो परिसंवाद सार्थक हो जाय।

मेरा इशारा यहाँ है कि मनुष्य आज मनुष्य नहीं है। वह अपने तन-मन से भी पूरी तरह परिचित नहीं। भीतर से वह छिन्न-विच्छिन्न है। अपनी समग्रता का बोध नहीं, अपने अधिष्ठान का परिचय नहीं। तन-मन से आगे जो उसका आत्मा है, जो अपनी सत्ता है, जो विश्वसत्ता से उसी प्रकार पृथक् नहीं जैसे सूर्य से किरणें, उससे तो परिचय नहीं है। विश्वचेतना ही व्यक्ति-चेतना का मूल स्रोत है—'ऊर्ध्वमूलमधःशाखम्'। किन्तु उससे स्वयं को पृथक् मानकर साढ़े तीन हाथ के इस शरीर में सड़ा रहे हैं। इसकी घुटन को अपनी मान कर बेकार की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आहें भरते हैं और दीन-हीन बनते हैं—यह सहन नहीं होता. इसीलिये हम आते हैं यह बताने कि भाई ! मानव चेतना का विश्व-चेतना से फ़र्क यदि है तो सूर्य और रश्मि जितना ही, कोई गुणात्मक, सत्तात्मक अन्तर नहीं। यह बोध हो जाय तो एक आत्मविश्वास, आत्म-प्रेरणा का संचार मनुष्य में होगा। फिर वह अपने को बलहीन, दीन-हीन नहीं समझेगा। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'।

समस्यायें विकट हैं, अन्धकार घना है, यह मान लिया। पर इस मानने से तो काम नहीं चलेगा। छोटा सा भी दीपक लेकर कदम आगे बढ़ाना ही होगा, जहाँ तक शक्ति हो। ऐसे अन्धकार में से भी लोग निकलते ही आये हैं अब तक। और मुझे विश्वास है कि हिन्दुस्तान का युवकवर्ग भी इसमें से निकलेगा। युवकों में से ही देश का ऐसा नेतृत्व खड़ा होगा जिसकी कल्पना भी राजनीतिक पक्ष कर न पायेंगे। तो, मैं यही प्राण फूंकने आती हूँ कि उठो, तुम क्या कर रहे हो। इन परिस्थितियों को रहने दो अपनी जगह, तुम खुद उठो और देखो कि क्या करना है। तुम्हारा अधिष्ठान बड़ा सबल है। कहीं से मार्ग-दर्शन मिलनेवाला नहीं, अपने में से ही पैदा करो। चाहती हूँ कि छोटी-छोटी बातों में लड़ने-झगड़ने वाले ये युवक पहचानें तो कि हम सिंह के बच्चे हैं, यह दीनता-हीनता छोड़ें। जब तक यह अधिष्ठान, आधार जागृत नहीं है तो यन्त्र दीजिये, विज्ञान दीजिये, अमृतकुम्भ दीजिये तो भी उसका उपयोग नहीं है।

मैं यहाँ आई, कई घण्टे अपने युवक मित्रों के साथ बैठना, उनकी बातें सुनना, कुछ अपनी कहना हुआ। यदि अपने शब्दों द्वारा इन्हें प्रेरित कर सकूं अपनी संस्कृति से प्राप्त सम्पदा पहचानने के लिये, अपने भीतर झांक कर देखने के लिये, अपने मूल अधिष्ठान तक पहुँचने के लिये और वहाँ चट्टान की तरह सुदृढ़ होने के लिये, तो आना सार्थक होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

:7:

CONCLUDING SESSION

उपसंहार सभा

Wednesday, 22nd March, 1972

Evening Session—5.30 P.M.

1. Concluding Address by Sri Rohit Mehta

२. विमलाजी का उपसंहार-प्रवचन

Unreported Items

1. Observations by—Prof. Y.S.R.K. Sarma, Sri R.C. Chowdhury, Prof. V. V. Chalam, Dr. Umesh Prasad, Sri S.N. Mahendra.

2. Thanks by—Dr. Premlata Sharma.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Highlights

A mind that has come to a conclusion is a stale mind. A dynamic situation cannot be approached from a static standpoint.

× × ×

It is clear thinking that will release the necessary energy by which it will be possible for us to act rightly. And the purpose of this camp must be to enable us to come to a clarity of thinking.

× × ×

When we want to move, it is the discovery of direction, that matters. In a camp like this, we want to find out the direction.

× × ×

The uncorrupted society can be brought into existence only by an incorruptible individual.

—Rohitji

× × ×

जीवन सीखने के लिये है और अन्तिम क्षण तक जिसका सीखना समाप्त नहीं होता, वही जीवित है। सीख वही सकता है जो आपत्ति और विपत्ति को अवसर बनाता है अपने भीतर की शक्ति को व्यक्त करने के लिये।

—विमलाजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

CONCLUDING ADDRESS

(*Sri Rohit Mehta*)

I am sure I am expressing the feelings of all of us when I say that we are immensely grateful to Vimala Bahan for the guidance that she has given in the course of this first Student Camp. It has been the first of its kind in the Banaras Hindu University, but perhaps it has been the first of its kind in all the universities of India. Vimalaji, in the course of five days, has spoken on various subjects. She has thrown much light on every topic that has been discussed. And she has certainly given us much provocation for thought. If we are serious about the subject we have taken up for discussion during this Camp I would only request Vimalaji as Dr. Shrimaliji said on the very first day, that she should make Banaras Hindu University as her headquarters, because the B. H. U. from one stand-point is a problem university; and if we can settle matters here, then the matters in all the Indian unive-rsities can be easily settled. And therefore this is a laboratory.

I have been connected with the Banaras Hindu University very intimately at least for the last fifteen years. I have talked with the Vice-chancellors, I have talked with teachers, I have talked with student-leaders, and I feel that the disturbance which prevails in this university is a very healthy sign. I am not afraid

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

of it. It is a very healthy sign, provided the rovolt that is seething can be given a direction. And Vimalaji is certainly one of those who can give us a direction in the midst of this seething revolt that we find in the Banaras Hindu University. And so I am sure she will come here to conduct another camp, also a camp of teachers and it should be possible for us to have a combined camp of teachers and students so that we can sort out things, we can discuss matters, not superficially but at a very deep level. And thereby not only settle the problems facing this university, but settle the problems facing universities all over this country.

As we come to this concluding session, the one question that must arise in our mind is—has this Camp been able to achieve the purpose for which it was organized ? Have we achieved the purpose ? What was the purpose ? What is the achievment ? Have we settled the problems of the university ? Can we say tomorrow morning that the university has no problems or that we have the capacity to deal with the problems that face this university? Are we in that position ? Let me point out that this was not the purpose. The purpose of this camp was completely different. And I feel that we have moved in the direction of fulfilling that purpose. H. G. Wells, an eminent thinker, has said in one of his books that the greatest problem of humanity is that humanity doesn't know what its problem is. We really do not know what our problem is. And we are trying to settle the problem without

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

knowing what it is. The result has been that all our efforts have been fragmented efforts, not a total effort, a mere patchwork. Change the constitution of the students' union, have students' representation here, there and everywhere, establish this particular code, have certain meeting—these are only patchwork. They have their value, but by mere patchwork approach, we cannot really solve the problems that face us.

We must understand that any problem or anything can be examined correctly in its own perspective. You know, when you look at a picture if that picture has no perspective, then you feel that it is a dead picture. It is perspective that gives life to a picture. Similary it is perspective which gives life to a problem. And if we want to deal with problems, we must deal with live problems, not dead problems. And the livingness of the problem arises from the perspective in which it is examined. The perspective of this problem is very vast. Don't think that the problems of the Banaras Hindu University are the peculiar problems of this university. Yes, there are peculiar expressions, there are particular manifestations, but the problem is one, a very vast problem. And this problem has to be examined in a two-fold perspective. What can be done immediately, what is the immediate problem? And what is the wider problem? It is only as we see the wider and the immediate that perhaps we will be able to have a clearer understanding as to what we are faced with. And so to me it seems that if as a result of this Camp, you and I are in a position to

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

formulate our problems a little better, then the purpose of the Camp is achieved.

We have not reached any conclusions. I would say thank God we have not reached any conclusions. Because a mind that has come to a conclusion is a stale mind; it is a closed mind. It is not an open mind, it is a closed mind. And therefore although while we may need to come to tentative conclusions, if we come to a fixed conclusion, that "I know this is the solution, I can go out like a missionary and solve the problem", then I am afraid it will not be a right approach. Because the problem is dynamic, intensely dynamic, and a dynamic situation cannot be approached from a static standpoint. The difficulty that we see all over the world is that the dynamism of life is thought to be understood from a static standpoint. And therefore I would say that if as a result of these five or six days we are in a little better position to formulate our problems, not solve the problems, but formulate the problems, then I believe it would be regarded, and it must be regarded as a great achievement of this Camp. Have we been able to come to that point? To formulate our problems with more clarity? The formulation has yet to go on, but at least a little more clarity has come with regard to the problems that face us.

As I said, the problems are both immediate and ultimate. The solution that we seek is the immediate solution and the ultimate solution. Yesterday some

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

participants said that we are concerned with immediate measures. The idea is that the immediate measures and the ultimate measures are two different things. We seem to be thinking that there are two solutions to the problem, one is the immediate solution and the other is the ultimate solution. Please, let us be clear in our minds; there are no two solutions. There is only one solution. And that is the ultimate solution. But that ultimate solution, in order to go towards it, there mut be a first step towards it, the first step towards the ultimate solution is the immediate measure. The immediate measures must be of that nature that they must be able to take us in the direction of the ultimate solution of the problem.

There was a great leader in China, in fact one might call him the father of the Chinese republic, Dr. Sun Yat-Sen. He created the first revolutionary China in 1911. And Sun yat-Sen said in one of his writings that it is easy to act, it is difficult to think. Let us understand; it is easy to act. You can go tomorrow and say, we are going to fight the other group of students. We are going to have battle against them. It's easy to act. But here in this camp we are not so very much eager to act; we do want to act, but not just act without first of all clarifying our thinking process. If our thinking is clear, then action will emerge automatically, spontaneously. Then nobody will have to tell us please do this or do that. It is a clear thinking that will release the necessary energy by which it will be possible for us to act and act rightly. And so the purpose of this camp must be to enable us to come to a

18

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

clarity of thinking. And I suggest that it has been possible for us to come to a certain amount of clarity with regard to these problems.

You have discussed in the course of this camp four topics. I am deliberately saying four and not five. Because the fifth topic was self-realization, which was not your problem. And therefore I was not surprised when Vimalaji said she was a little disappointed when that problem was discussed. It was not your problem. It was an unreal problem and since it was an unreal problem, there was bound to be a certain amount of confusion. I am not suggesting that self-realization is an unreal problem. But you have not yet come to it. It has not yet become a pressing problem. It is not going to give you sleepless nights; it is not going to tell you that you must settle this problem of self-realization, but the other problems might give you sleepless nights. Self-realization, you will come to it, but you know the problem of self-realization is a very easy problem.

There is a story in the life of Lord Buddha. Lord Buddha was seated in front of a vast congregation. He was just about to address that congregation. In the meanwhile someone in the audience stood up and said to Lord Buddha, "Tathagata (because that was how he was addressed) please give a discourse on how to be liberated." Lord Buddha smiled and asked that man to sit down. He said—"all right I will give a discourse. You want me to speak on the subject, how

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

to be liberated. But before I start my discourse, I want to ask a question to each one of you. And my question is, you want to know to be liberated. My question is: who binds you ? If you are aware as to who binds you, the liberation is here and now." And therefore self-realization is not a problem in itself: the problem is to become aware of our own limitations, the bondage in which we are working. And so if you become aware of the limitations, the restrictions, the bondage, then the problem of self-realization will take care of itself. It will come. It is not a matter of effort; self-realization is not to be striven after. It is not something which has to be produced as a result of effort; it comes quietly, it comes so quietly that one is not even aware of it. And so all that one has to do is to become aware of where one is bound. And that is why your four other topics were real, the fifth was unreal. And so let us not bother about self-realization.

Our problem is freedom and authority. Our problem is frustration. Our problem is violence and lawlessness. Our problem is technology, science, and the implications of the society that has come into existence under its impact. These are the four topics, vast topics. From one standpoint they are different, but from another standpoint, there is one problem. These four are only the manifestations of that one problem. They are not isolated, one from the other; they are inter-related. And if we can see the inter-relationships of these four topics, then perhaps a little clearer understanding will come to us.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Frustration. I put it first because frustration is the biggest problem of the young man today in India. But it is not merely in India. I do not know whether you have seen that remarkable book which has recently come out by Charles Reisch belonging to the Faculty of Law at one of the American universities, a very fine book. The title of book is "The Greening of America", which means the maturing of America. America has not become mature; it is still maturing. And if you read that book, you will find that the author has given a penetrating analysis into the life of the American civilization. And he has dealt with each aspect and with each department. And at one place in that book he says that people seem to be thinking that the American civilization is a law-abiding civilization. He says probably there is no country in the world where there is so much lawlessness as it is in the Uuited States of America. Remember, here he is presenting the problem of the American civilization, and there you see the modern age coming to its stage of intense tension. And out of that tension you see revolt after revolt.

All over the world there is a sense of revolt. You ask a young man, "you are revolting for what ?" He may say, "I don't know, I want to revolt." Because there is such suffocation that he wants to revolt and you see the sense of revolt, sometimes meaningless revolt in the type of painting, in the type of music, in the songs, in the literature that is coming up, in the hippie phenomenon that you see here, particularly in its greatest form in Banaras. I wonder if you have talked

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

to the hippies as I have talked. Remember these hippies are not abnormal people. They do not come from conditions of poverty; they come from rich families; they have had their education in universities; they have thought about matters. I asked one of them "why have you come to Banaras of all places ?" And he came from America. The reply that he gave was most significant. He said, "because we want to go as far away from the American civilization as possible. And Banaras seemed to be the farthest point from the American civilization. That is why we have come here. The farthest point, because we are fed up with the clvilization in which we have been brought up. The civilization has given all the comforts; it can give more comfort, but while giving more comfort it has taken something away from us. We miss something in our lives. We do not know what it is, but something is certainly missing; we are in search of that." I do not know whether they will find it in Banaras. Most probably they won't find it in Banaras.

But the fact of the matter is that here is a phenomenon which needs to be studied. And remember the hippies of the western countries have come with a life problem. When the Indian young people begin to imitate the hippies, then that imitation is something which is jarring, because here the hippie phenomenon is without a life problem. They have come wiih a life problem, they say we have a life problem; we want to run away from the American civilization, from a civilization of science and technology,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

because it has taken away something from us which we want, because without it our life is intensely unhappy. So that there is a phenomenon, a phenomenon of revolt which takes its expression in a diversity of forms. But there is this phenomenon. What you see in the Banaras Hindu University is an expression of that phenomenon. Don't consider your problems in isolation. They have to be considered partly in isolation, because of the expression of diversity, but the mere expression of diversity will not give you a clear understanding. The expression of diversity has to be seen in the wider background of a sense of revolt. There is tremendous frustration.

Only the other day I was talking to Shrimaliji. Because somehow I have been connected, for the last fifteen years very intimately with the problems of this university, I said to Shrimaliji that we must break one illusion under which we seem to be working. He said "what is that illusion" ? I said "let us first of all realize that most of the young people who come to the university do not come in order to learn". He said, "is that a fact" ? I said, yes, they do not come to learn; they come to acquire degrees, because you have created a society which demands degrees. If the government could delink the services and the degrees about which Vimala Bahin made a reference yesterday, if the delinking of the services and the degrees could be made, then you may find that an entirely new atmosphere comes into being. You know, last year in this state of Uttar Pradesh, nearly one

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

million students appeared at the high school examination. This year there may be more. But out of those one million students, only one lakh and forty thousand could find admission to the university. The rest failed, but more than those who failed, there came students who passed only in third division. And you know the person who passes in third division is far more unfortunate than the person who fails. Because a third divisioner can't find admission anywhere. So what a collossal loss today ! Nobody wants to consider this that out of one million students, if one or two lakhs can find admission, what is wrong with it ? The wrong is that we have never regarded our education from top to bottom.

Take the Kothari Report, it has become a bible for the educators of India today. If you go through the Kothari report, a big volume, very good so far as details are concerned, but give me one chapter in that volume of the report which deals with our philosophy of education. Our philosophy of education has not been formulated. In America, they have formulated. When the Britishers were in India, they did formulate that philosophy; they knew what they wanted to do. We don't know what we want to do out of our educational institutions. We go on, multiplying, multiplying, multiplying. You know in England, after passing secondary examination only 22% of students go to university. In America, only 43% of students go to university. Here in India, 90% of students want to go to university. Why ? Because they do not know what else to do. Large number of

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

students come to universities because they have to come.

The secondary education is so incomplete; the primary education is so incomplete. Why not have an opening after secrndary education? So that those who come to the universities, they will be such students who have the aptitudes and the necessary equipment. If you can do this which is a very simple matter, much of the disturbance in our universities could be eliminated. When I told this to Dr. Shrimali that most of the students do not come to learn, I reminded him of the slogan which the students of this university had started two years ago. When the Chief Minister of Uttar Pradesh issued an ordinance that the membership of the student unions should be voluntary, there was a great agitation among the students. And I do not know whether you remember the slogan that was circulated here in this university which was "compulsory membership in the students' union, voluntary attendance in classes." This was the slogan. You know today in this university there is voluntary attendance in classes. Something most remarkable. But this university has come to this voluntary attendance of classes and compulsory membership in the students' union. Why? Because the desire, the urge to learn is not at all there. And the one thing which our educational process has done is that the students enter with an urge to enquire, and they go out with the urge to enquire completely extinguished. This is

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

the achievement so far as our educational worth is concerned.

I am asking you, young people—"who is going to change this education? You want those sitting in Parliament, they have no time. You want those who sit in the Assemblies, they have no time. It is no use saying that the politicians must not enter the university. Remember, when the outside politician does not enter, the inside politicians will be more active. It is not a question of the outer or inner politicians; we don't want the political approach at all. Today, why does the politician come? And the leaders of the political parties, they are my great friends. I know why they come. They say "why should we not go? After all we want to fish in troubled waters. The university is giving us a very convenient platform." And therefore if you don't want the politicians to come, don't go on asking them not to come, you create those conditions where they won't come. If it is not troubled waters, they are not going to come. And therefore to keep out the politicians is in your hands. And therefore, who is going to give this new lead in education? You must give. You must think out what is the education we want. What are the subjects you want to teach? Do you understand the significance of the subjects which you learn? Hardly. Because the educational process is so completely examination-oriented that there is no learning what-so-ever.

We may talk of the job-oriented education. It is a

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

new catching phrase that has come today in our education. I have no objection to the job-orientation. But supposing, you create job-oriented education. Are you going to take the jo bs that are available. You are not going to. Ask a 'pan-wallah' in Banaras. The 'pan-wallah' earns, (I am particularly drawing your attention to that famous pan wallah in Luksa, I am not exaggerating) four to five hundred rupees a day. That is his income. But I who have passed the university examination, can I do that? I am not saying that you should start a 'pan-shop'. What I am saying is that before we start into the job-oriented education, we will have to bring about a revolution in values. Unless the revolution in values comes, job-orientation is not going to solve our problems. And the change in social values is an immense problem in this country. And it is in this that I suggest that you the young people* should take a lead. Vimalaji has rightly said that universities have become islands, completely cut off from the life of society in general.

You younger people are not sufficiently dissatisfied. From dissatisfaction to discontent is a long journey and you have to take it. That is the foremost prerequisite of a real revolution.* The revolution in the technological and scientific level has taken place. The

* Due to failure of electricity no recording could be made between the marked portion (* *) for nearly ten minutes. That portion has been summarised from memory.—Editor.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

revolution of the mind must now come into existence. And which can be the centre ? Obviously the university. If in the University we cannot create those revolutionaries who have broken the barriers of the old mind, and who have created a new mind, not merely who have created a new mind, but are in the process of creating newer minds, if we cannot give that facility in the university, objective and subjective, then the university must fail. University has failed, but I do not think that the situation is so hopeless. It can still be retrieved if there can be sufficient understanding of the nature of the crisis on the part of the students and sufficient understanding of the nature of the crisis on the part of the teachers, if the teachers and the students can meet, not in order to solve the immediate problems. The moment you talk of immediate problems, you will differ. I am not saying that the immediate solution is not needed, but the immediate solution as I said in the very beginning, must not be such as goes contrary to the ultimate solution.

Very often people say, we must move, we must move. We are in an age that specializes in speed. We must move and move and move. Very good. And somebody says please pause. Find out in which direction you want to go. Is the person who talks of direction an impractical person ? He is the most practical person. And, therefore, here in this camp and in similar camps, we want to find out the direction; the speed is there. Science will give us more speed. Technology will give us more speed.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

But with this speed, where do we want to go ? It is the discovery, the finding of the direction that matters. And he who talks of direction is the most practical man. You can't say that "because I do not know the right direction I will go on moving in the wrong direction. To go on moving in the wrong direction because I do not know the right direction is not a practical thing. It is not a scientific attitude. The scientific attitude is, if I do not know the right direction, I am going to find out. And I will say to you people, that please maintain the scientific attitude. Up to the last maintain a scientific attitude. We live in a scientific age; we can't go back; develop a scientific attitude.

But you know what a scientific attitude is ? If I ask you, you will say yes not to accept anything blindly. Don't accept anything blindly, even if it comes from the highest source, whether it is the Gita or Upanishads or Patanjala Yogasutras, or wherever it may be. But remember this is half the statement The scientific statement is not only not to accept anything blindly, but also not to reject anything. Don't reject anything blindly. And in our fervour of science today, we are rejecting so many things blindly. He who does not accept anything blindly and does not reject anything blindly, has a mind that is in a state of enquiry = "Jijñāsā" That is a free mind. The free mind is not a committed mind; the free mind is not a mind which has come to a conclusion; the free mind which does not act from the acquired knowledge;

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

the free mind which is learning. The acquisition of knowledge and learning are two different things. We may acquire knowledge, but remember you can acquire knowledge only with regard to those things which are non-psychological. Our problem is a psychological problem, the problem of relations. In psychological problems, you cannot act from the basis of knowledge because the knowledge of yesterday is not valid today in psychology, because we live in that life which is in constant flux.

One Sufi says it very beautifully that you cannot cross the same river twice. When you have crossed, and again you want to cross it, it is not the same river, because fresh waters have come into that river. If that is the case with regard to the physical river, much more so is the case with the river of life. Where fresh waters come from moment to moment, how can you respond to that life from the basis of knowledge which is of yesterday ? And therefore it is not the mind that has acquired knowledge. You may acquire knowledge about building bridges. You may acquire knowledge about mechanical things. But when we come to the psychological problem of life which is the main problem, the problem of happiness, the problem of sorrow, the problem of frustration, these are psychological problems, you can't act from the basis of knowledge. Then how do we act ? The mind must be so sensitive, so pliable, so flexible, not committed anywhere, not to any conclusion whatsoever. If from our universities we can produce such minds, then what

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

more do we want ? And if our universities cannot produce such minds, then of what use are these universities ? The universities must produce these free minds.

We want, all of us want, a society which is absolutely uncorrupt. We all want. We see corruption rampid everywhere. We want uncorrupted society. But remember the uncorrupted society can be brought into existence only by the incorruptible individual. Not uncorrupt individual, because the uncorrupt individual may become corrupt to-morrow, but incorruptible individuals. The incorruptible individual will alone be able to bring into existence an uncorrupted society. I say uncorrupt society, because society will get corrupt. It is the very process of society to get corrupt. But if there is this band of incorruptible individuals, then those incorruptible individuals will see to it that society does not get corrupted, and when it gets corrupted, they will destroy that society, and create a new society. We want to see that in our universities, there come into existence these incorruptible individuals. And the incoruptible individual is that individual whose mind is free, unfettered, uncommitted, not committed to any conclusion, a mind that is in endless enquiry, a mind that has not arrived, a mind that does not want to arrive. How can you arrive? You can arrive in regard to something that is static. How can we arrive in regard to something that is in the state of flux, the mind that does not arrive, and remember this

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

demands a tremendous strength, a tremendous courage. To settle down in conclusion is easy; that is what everybody does. But you, young people, I would say if you have attended Vimala Bahin's camps then this is what is expected of you that you shall be able to move in that direction where there is a free mind.

And remember a free mind has no problem of authority; a free mind never gets frustrated; a free mind does not indulge in violence or lawlessness; a free mind utilizes the power that can be given by science and technology. I would say at the next camp, let us discuss more of this free mind. How to come to it ? What are the implications of free mind ? Because this is the crux of the matter. If this could be understood, then the rest of the problem would automatically get solved. There is need for discipline or as Vimala Bahin said, there is need for order. Without order, what can we do ? But we have been used to consider order in terms of a system. There must be first a system, and in terms of that system, the order must come into existence. Can you visualize order without a system ? It is order without a system which is the natural order. Spontaneous order, that is the discipline which is effortless discipline.

You know how the river flows. When the river flows, in the very flowing of the river, the river, creates its own discipline. The two banks are the discipline of the river. But you can't say first of all,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

I shall establish a bank. And then order the river to flow. The river may not flow there. The river creates its own discipline, in the very flowing. Similarly the very living of the free mind creates a discipline, is bound to create a discipline. It is the controlled, the unfree mind, the mind that is caught by conclusions (they may be very lofty conclusions), it is the mind which has come to a conclusion which is the disorderly mind. It is bound to create disorder. A free mind in the very action of itself, in very living of itself, will create a discipline. You might say these are things which are so very far away. We have to go there. But just because they are far away, are you going to turn your backs to those things and say that we will walk in the opposite direction ? In order to go far, we must begin near. Let us begin near. But our beginning must not be contrary to where we want to go. This is where we want to go. A free mind, uncommitted, pliable, flexible, dynamic. Dynamic and yet not committed. Because it is only that mind which can deal with the immensly dynamic situation that we see today created by science and technology. Are we free ? Do we want to move in that direction ? We must take the first step. And as the first step, I would suggest that those of you who have participated in this camp form a sort of a study-circle. Let us meet. I am prepared to help in whatever manner I can. Meet once a week, once a fortnight, once a month. Just meet. Let it be a permanent thing: so that next time when Vimala Bahin comes we not be where we are today; we will have moved further, in our thinking, so

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

that she can take us still further into the deeper understanding of those problems. So as a result of this camp we can have a 'cell', to use the communist terminology. If we can have a 'cell' and if there could be such cells in all the hostels of this university, and if there could be such cells in all the universities of India, then remember through these cells tremendous work can be done.

We live in the nuclear age, isn't it ? The small atom, so small it can't even be seen, and yet the energy stored in that atom, when it is released, what it can do we have seen, in the course of the last twenty years. What cannot happen when the energy caught in our consciousness is released ? We can bring about tremendous transformation. Why can we not have these cells ? When we work on the releasing of this energy, which is confined within the limits of consciousness, if we can do that then a great revolution will have come into existence. And you will be the torchbearers of the revolution. Don't be satisfied with mere reforms. Reforms may be necessary. It is a part of the thing. Don't settle down in reform. Don't think that because you have brought about some organizational changes, you have solved the problem. They may be necessary, they are necessary. But they are necessary on our onward journey. Don't settle down there. Move further. Move further.

The other day someone was talking about the Gurus, when you were discussing the unreal problem of self-realization. You were talking of the Gurus, what is

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

the role of the Guru ? The Buddha described the true role of a Guru. The Buddha said that Buddhas are only the fingers pointing the way. They only point the finger, they say this is the road. They are like the road-signs. If you want to go to Mirzapur from Banaras, there are road-signs. If you want to go to Patna, or Calcutta, there is a road-sign. But you can't settle down at the road-sign. You cannot say "Oh road-sign ! please give me Patna, please give me Calcutta. You can't cling to it. The road-sign says you can move from here. That is the role of the Guru. The Guru says move from here. And it is in this sense that Vimala Bahin has given us the direction, the finger pointing the way. If we move, let us move. And when she comes next time, (I am sure she will come very soon, she must come very soon. Because this is her headquarters, she must come, because she has started the work and that work must be carried to its fulfilment) we will be able to show to her that during this period, we have thought about these problems, we have removed certain cobwebs from our thinking, we are able to see a little more clearly, and that is all that is necessary. He who can see clearly, in that very clear perception he is bound to see the solution of the baffling problems of life.

These are vast problems, one can go on talking. As we bring this concluding session to a close after Vimala Bahin's talk, once again I want to express our sense of gratitude to her for all the guidance she has given, and we want to assure her that the work that she has started is not going to stop. This is only the

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

conclusion of the camp, not the conclusion of the work which we have started. In fact, this is the beginning, this is the inauguration. There is a co-existence of conclusion and inauguration, the conclusion of the camp and the inauguration of the work that has to be done. I am sure that all of you, the participants, are eager to carry on the work. Let us have small study-circles. Lat us discuss thoroughly all these problems, so that we may be able to move in the direction of that free mind, of that incorruptible individual, who alone will be able to establish that uncorrupted society. I would say if this can happen, then this camp has succeeded immensely. And I am sure that something is bound to happen and that is why we feel that a beginning has been made in the right direction.

We will move, according to our capacity, but we are not going to move in the wrong direction, that much is certain. We want to see this direction more and more clearly. Then as one sees the Mount Everest, the Mount Everest itself inspires. It is the Mount Everest, the very perception which creates, releases the energy. And so if we can clearly preceive, then the perception will release the energy. And with that energy we shall be able to move forward to the creation of an uncorrupt society because the incorruptible individual has come into existence.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विमलाजी का उपसंहार--प्रवचन

श्री रोहितजी का अत्यन्त मौलिक, मार्मिक, सौष्ठवपूर्ण और विशद प्रवचन सुनने के बाद यहाँ बोलना अरसिकता लगती है। उनके शब्दों के पीछे अनुभव है, उनके जीवन की एक तपस्या है। निरी मृत विद्वत्ता नहीं है। कुछ जीवन के स्पन्दन हैं। और जीवन-तुषार जब वाणी में से निकलते हैं तो एक अनोखा आनन्द आता है। आप भाग्यशाली हैं कि आदरणीय रोहितजी ने कह दिया कि आप लोग कार्य करो तो साथ देने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ। प्रभु की बड़ी कृपा है कि उनकी उपस्थिति से आप लाभ उठा सकते हैं।

जैसा कि श्री रोहितजी ने कहा कि समस्या का आकलन (Formulation) यदि ठीक हो जाय तो सवाल के हल उसी में से खुलते-खिलते जाते हैं। उनकी उपस्थिति का पूरा लाभ आप लोग उठायें, प्रश्न पूछें, उन्हें छेड़ें, सतायें, उन्होंने जो असंतोष का स्तोत्र गाया है, तो आप अपने दिव्य असंतोष का मजा थोड़ा उनको भी चखा दें।

इस बार परिसंवाद हुआ, सही अर्थ में शिविर नहीं हो सका। शिविर में साथ रहने का अधिष्ठान होना चाहिए। सात दिन का शिविर हो, साथ रहें, साथ खायें पियें। साथ रहने में जो एक-दूसरे के जीवन में से संक्रान्त होता है, उसे संक्रान्त करने में वाणी पंगु है। शब्द अधूरे हैं, कमजोर हैं। इस पर मेरा काफी जोर रहता है हर देश में कि यदि मेरे पास आना है तो आरम्भ भले प्रवचनमाला से करें, लेकिन फिर सहजीवन शिविर होना चाहिये। तो, आगे कभी सोचा जाय तो ऐसे शिविर की ही बात सोचें, जिसमें आप लोग साथ रह सकें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरी बात, इतने बड़े विश्वविद्यालय में १०० छात्र रह सकें इतना बड़ा शिविर होना चाहिये। यह संकोच या भय न होना चाहिये कि इतना बड़ा शिविर होगा तो व्यवस्था कैसे रहेगी, शान्ति कैसे रहेगी। चुनौतियों को जो निमन्त्रण देकर बुलाते नहीं हैं, उनकी पुरुषार्थ की शक्ति कभी बढ़ती नहीं है। चुनौतियों का आह्वान करो, स्वागत करो, एवं सही ढंग से उनसे मिलो। समग्र और सम्यक् विकास के लिये चुनौतियों का स्वागत मीठी मुस्कान से करना चाहिये। तो कम से कम १०० छात्र हों, २५-३० अध्यापक हों। इस पैमाने पर करने का सोचें।

तीसरी बात यह कि उसमें शामिल होने वाले प्रत्येक व्यक्ति, वे छात्र हों या अध्यापक, उस शिविर की तैयारी में, संचालन में, और व्यवस्था में कुछ-न-कुछ योगदान अवश्य करें। परिश्रम का ऐसा विभाजन होना चाहिये कि सदस्यता केवल बौद्धिक या वाचिक न हो। और फिर शिविर में सब कार्य स्वयं व साथ-साथ करें, अनौपचारिक रूप से बातचीत करें, प्रश्न पूछें, भोजन करें। सहजीवन में हम एक दूसरे के प्रति खुल जाते हैं, उठने-बैठने, थाली मांजने, रसोई बनाने आदि में हम एक दूसरे को जितना देख सकते हैं, परस्पर जीवन से जितना सीख सकते हैं, उतना दो-तीन घण्टे केवल साथ बैठकर बड़ी सभ्यता से बात करने में तो सम्भव नहीं। गांधीजी की बड़ी खूबी थी कि देशभर में उन्होंने रचनात्मक कार्य करने के केन्द्र, आश्रम बनाये। उनमें देश-भर के, सभी दिशाओं व प्रदेशों से आने वाले कार्यकर्ता एक-दूसरे केन्द्रों में आते, साथ रहते, तरह-तरह के कार्य करते; कार्य कितना हुआ यह वहाँ गौण था, लेकिन आसेतु-हिमाचल सभी भारत-निवासियों में, एक-दूसरे के हम हैं यह श्रद्धा, भावना, और साथ-साथ कार्य करने की जो शक्ति उन्होंने जागृत की, वह उनके बाद २० वर्षों में किसी भी नेता या संगठन में आ नहीं पाई। मैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चार दिन से कहती आई हूँ कि चुनौतियाँ बड़ी हैं, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवन में, उनके लिये मानव-जीवन में अधिष्ठान, बुद्धि में समझ और साथ काम करने की मैत्री-भावना का संचार—यह सब करना होगा। यह करने की दृष्टि से शिविर का वातावरण, स्थान, शिविर के संचालन की पद्धति—इसमें आप थोड़ी और गहराई में उतरेंगे ऐसी प्रार्थना, विनय मैं रखती हूँ।

चौथी बात। शिविर में ऐसे विषय रखने हों जैसे इस बार आप ने रखे थे, जो विज्ञान, यन्त्र-विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि से सम्बद्ध हों तो उन-उन विषयों के शिक्षकों में से कोई यहाँ आये, किसी भी विश्वविद्यालय के हो सकते हैं, उस-उस विषय के ज्ञाता हों जो चर्चा को सही ढंग से प्रेरित करें, फिर उनसे प्रश्न पूछे जायें, वे जवाब दें। जैसे यहाँ श्रोरोहित जी पाँच दिन हमारे साथ आ कर बैठे, थोड़ी-थोड़ी चर्चायें भी सुनीं, जिससे उन्होंने एक दृष्टि, एक मार्गदर्शन आप को और हम को दिया। वह नहीं कर पाते यदि चर्चा सुनते नहीं। जो त्रुटियाँ हैं वे कैसे ध्यान में आतीं? ऐसे शिविरों में जहाँ विशेष विषयों से सम्बद्ध समस्याओं के बारे में बात की जाये वहाँ उसके विशेषज्ञों का साथ बैठना बहुत जरूरी है, जो सवाल उठने पर उसके बारे में कुछ राय, कुछ सुझाव दे सकें, गलतियों को रोक सकें।

पाँचवीं बात यह है कि आप ने कुछ करने की बात कही। अध्ययन-मण्डल चलेंगे, यह सब तो ठीक है, लेकिन आप ने यहाँ २५ या ५० विद्यार्थियों ने भाग लिया। इन २५ के द्वारा कम-से-कम ७५ या १०० तक वह बोध पहुँचना चाहिए जो उन्हें इस से प्राप्त हुआ हो। इसके पीछे जो दृष्टिकोण था, हेतु था, उसकी बात कहें। प्रचार करने को नहीं कहती, प्रचार की वृत्ति मैं रखती नहीं हूँ। प्रचार कभी शिक्षण का साधन नहीं बनता। किसी के मत-परिवर्तन के लिये प्रचार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का उपयोग है। इसका संवाद दूसरों तक पहुँचायेंगे तो आगे मिलने वाले लड़के तरह-तरह के सवाल उठायेंगे कि इससे क्या होता है, क्या उपयोग है इसका, इत्यादि कुछ विधायक कुछ विध्वंसक सवाल होंगे तो उनके उत्तर आप के भीतर से उठते हैं कि नहीं,, उससे भी कुछ अन्दाज आयेगा इस शिविर की उपयोगिता का।

अभी तो यहाँ बैठे आनन्द लगता ही है, किन्तु मैं तब मानूँगी यदि इन पांच दिनों के साथ के प्रभाव से कुछ विधायक, रचनात्मक वृत्ति प्रेरित हुई हो आप में, उसकी सही-गलत आलोचना सुनने व सही उत्तर देने की शक्ति जागी हो। यह यदि हुआ है तो मान लेना चाहिये कि पाँच दिन पहले जहाँ थे, उससे कुछ आगे बढ़े हैं। नहीं तो यहाँ हम लम्बी-लम्बी बातें करें क्रोध के बारे में, ईर्ष्या व सन्तुलन के बारे में और जहाँ प्रतिदिन के जीवन में गये तो फिर क्रोध भी करें, सन्तुलन बिगाड़ें, उपेक्षा या घृणा का भाव भी आया तो फिर मानना होगा कि ५ दिन बैठे तो थे, लेकिन वह तो जैसे बाहर से भीग गये, भीतर से भीगना रह गया।

चित्त की जो अवस्था व्यवहार में प्रतिबिम्बित नहीं होती, वह अवस्था नहीं। अध्यात्म हो, ज्ञान हो, समझ हो, जो व्यवहार में अभिव्यक्त नहीं होता, उसकी सच्चाई नहीं है, जीवन में एक क्षणिक अनुभूति, क्षणिक वृत्ति मात्र उसे मानना होगा, जिसका विकास नहीं हुआ। मेरा यही मानना है एवं जीवन में यही करती आई हूँ कि जो वस्तु व्यवहार में उतरी, उतनी ही उसकी अपने जीवन में सत्ता है। व्यवहार से बाहर केवल भावना या ज्ञान में उसकी सत्ता समझना आत्मवंचना है। वह नहीं रहनी चाहिये।

एक बहुत बड़ी हिदायत या सूचना आप के पास छोड़ जाना चाहती हूँ। ठीक कहा था रोहितजी ने कि विश्वविद्यालयों में ऐसे शिविर होने चाहिये। उन्होंने कहा कि शिक्षकों का, अभिभावकों का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और नेताओं का भी शिक्षण हो। बात सुनने में अटपटी लगती है, पर बहुत ठीक है कि युवक-वर्ग के नेतृत्व में यदि इस देश के लिए वैचारिक, मानसिक नेतृत्व, दिशादर्शन का नेतृत्व नहीं उठेगा तो फिर और कहीं से वह उठने वाला नहीं है।

मुझे पुनः यहाँ आने में प्रसन्नता होगी, यदि छात्र कुछ अभिक्रम रखते हैं, कुछ काम करते हैं तो एक बहन के नाते, समय मिला तो कभी इस प्राङ्गण में पुनः आऊँगी। आप ने काम शुरू कर दिया तो आना ही होगा। हमारे आदरणीय श्रीमालीजी ने कहा यहाँ Head-quartrs रखें। काशी हिन्दूविश्वविद्यालय तो मेरे लिये Heart-quarters है Headquarters नहीं। मैं सच कहती हूँ, कोई भावुक (emotional) व्यक्ति मैं हूँ नहीं, यह आप ने देख ही लिया है। लेकिन इस स्थान के लिये मेरे हृदय में श्रद्धा है। कोई भी बुलावे और मुझे जरा सी भी अनुकूलता मिले तो मैं चली आऊँगी, इसमें जरा-सी भी शंका नहीं है।

मैं सुझाना चाहती हूँ कि ऐसा कोई परिसंवाद हो कि यह विश्वविद्यालय बनाया किसने ? कैसे बना ? जब से बनाया तब से इसका विकास कैसे हुआ ? शिक्षण की दृष्टि से, छात्रों की दृष्टि से कैसा विकास हुआ ? शिक्षक व छात्रों के सम्बन्ध कैसे रहे ? इसके विकास में कौन-सी कठिनाइयाँ आईं ? सांस्कृतिक तथा शिक्षण-संस्था के रूप में का० हि० वि० का इतिहास और विकास, शासन में कठिनाई, अधिकारी, शिक्षक व छात्रों के मध्य के सम्बन्ध और उसकी कठिनाइयाँ—ऐसे कोई विषय लेकर परिसंवाद करें, शिविर करें ऐसी इच्छा है। कहाँ से यह शुरू हुआ था और कहाँ जाना है ? महामना मालवीयजी तथा भगवती ऐनी बेसेन्ट ने किस श्रद्धा, किस जीवनदर्शन को दृष्टि में रखते हुए इसका निर्माण किया।

भिखारियों के राजा कहलाये मालवीयजी। इतने परिश्रम से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो यह स्थान बना इसका ५० वर्षों का इतिहास पढ़िये; इन वर्षों में जो यात्रा हुई उसे देखिये। इस स्थान के इतिहास और विकास पर शिक्षक बोलें। और छात्र बोलें वर्तमान स्थिति पर और आगे इसका भविष्य क्या, कैसे बनाया जा सकता है इस पर छात्र व शिक्षक दोनों बोलें, सुझाव देंगे और दायित्व कौन उठायेगा इस पर विचार करेंगे। सोमस्कन्दन्जी ने बड़े परिश्रम से विश्वविद्यालय के इतिहास पर एक ग्रन्थ लिखा है। उसे देख गई हूँ। अधिक नहीं तो १२०० शिक्षक तो होंगे यहाँ, जो शिक्षण में नहीं हैं उन्हें मिला कर दो-तीन हजार कर्मचारी होंगे, १२ हजार छात्र होंगे। एक बहुत बड़ा समुदाय है। किन्तु जैसा कि रोहित भाई ने कहा था कि दिशा-निर्देश नहीं है। इसीलिये एक-एक दिशा में एक-एक कदम चलते रहना तो गति का भ्रम पैदा करना है। ऐसे स्थान में विचार होगा तो बोलने के लिये नहीं, पर सुनने के लिये जरूर आऊँगी। रोहित जी ने कहा कि प्रयोगशाला है यह, यहाँ यदि सवाल हल हो सकते हैं, यहाँ यदि विश्वविद्यालयों में से जिस मुक्त चित्त का, मुक्त मानस का निर्माण होना चाहिये—वह हो सका, उस दिशा में कदम उठ सके तो देश के बाकी विश्वविद्यालयों को कुछ न कुछ दिशा इससे मिलेगी, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं।

हो सकता है आप में से बहुत से इस वर्ष अपना शिक्षण पूरा कर के चले भी जायेंगे। अगली बार जब आऊँगी तो आप में से कुछ यहाँ होंगे, कुछ नहीं भी होंगे। लेकिन जो बाहर चले जायें, वे नौकरी प्राप्त होते ही, गृहस्थाश्रम उपलब्ध करते ही भूल न जायें कि जीवन सीखने के लिये है, और अन्तिम क्षण तक सीखना जिसका समाप्त नहीं होता, वही जीवित है। जिसका सीखना समाप्त हो गया, वह जीता नहीं, वह अगतिरोध, निष्क्रियता में पड़ा हुआ है। तो, हर पल के जीवन से सीखेंगे, जिस स्थान पर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिनके साथ काम करना पड़ा उनसे सीखेंगे। तो, जो यहाँ से चले जायेंगे उनमें सीखने की शक्ति और प्रेरणा जीवित रहे, यह शुभ-कामना कहो, आशिष कहो, जो भी कहो मेरा है।

सीख कौन सकता है, जो आपत्ति और विपत्ति को अवसर बनाता है, अपने भीतर की शक्ति के व्यक्त करने के लिए। आपत्ति को, पुरुषार्थ की चुनौती जो मानता है वही सीख सकता है। यानी किसी भी चुनौती को संकट मानना या उससे भयभीत होना—यह वृत्ति न रखें।

और एक बात कहूँ कि जितने मानवीय सम्बन्ध हैं, वे साधना के अवसर हैं। आत्मसाक्षात्कार बड़ा शब्द है, लेकिन जो जीवन जीना चाहते हैं उन्हें आत्मसाक्षात्कार के विषय में सोचना ही पड़ेगा। क्योंकि उसके बिना जीवन का कोई अधिष्ठान नहीं, आधार नहीं। किन्तु उसके लिए कोई ऋषि-मुनियों के आश्रम, हिमालय की गुफायें ही आवश्यक नहीं। जहाँ आपको परिस्थिति-वश जाना पड़ेगा वहाँ जितने भी मानव-सम्बन्ध हैं, उन्हें आत्मसाक्षात्कार, आत्मपरीक्षण के अवसर बना लें। तब कोई भी मानवीय सम्बन्ध बांधेगा नहीं, मुक्ति देगा। एक बड़ी कला है कि सम्बन्धों को बांधने न दें। सम्बन्धों में से आत्मसंशोधन, आत्मबोध हो। और उस सम्बन्ध में से जो आत्मबोध-भरा प्रतिसाद उठता है तो 'चित्तशुद्धयर्थं कर्माणि'। उस सम्बन्ध में जो कर्म होते हैं उनसे चित्तशुद्धि होती है, बन्धनापादक नहीं होते वे कर्म।

जीना है तो काम तो हर एक को करना ही पड़ेगा। बी० ए० पास करने के बाद मेरे पास इतना पैसा नहीं था कि आगे की पढ़ाई चालू रख सकूँ, तो दो वर्ष तक एक विद्यालय चलाया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ट्यूशन की, तब कहीं दिन में केवल एक वार भोजन करने व शिक्षा का खर्च चलाने लायक पैसा जमा करके आगे पढ़ना आरम्भ किया। तो आप यह न समझें कि आर्थिक विपत्तियाँ आपको ही आ रही हैं, या यह आज की ही परिस्थिति है। ऐसा नहीं। जो कोई सत्यनिष्ठा को छोड़ना नहीं चाहता, स्वाधीनता से जीना चाहता है, किसी सुख-सुविधा के सामने अपनी सत्यनिष्ठा और स्वाधीनता को बेचना नहीं चाहता, उस व्यक्ति को आज के समाज में परिश्रम करना ही पड़ता है।

सत्य को पहचानना, सत्य में प्रतिष्ठित होना, उसे जीवन में उतारना और भ्रष्टाचार से भरे समाज में भी स्वयं अभ्रष्ट बने रहना—यह जीवन-शिक्षण है। मैंने जो कहा कि सीखना बन्द न हो, इसका यह मतलव नहीं कि ग्रन्थ लेकर ही बैठे रहें। अब तक किताबों से पढ़ते थे, कक्षा में बैठकर पढ़ते थे, अब आप जहाँ जायँ, आपका कदम जहाँ पड़े, वहाँ आँख खोलना और कान से सुनना. वहीं अध्ययन-कक्षा होगी। जीवन के प्रत्येक सन्दर्भ में से शिक्षण होता है। ऐसे ही मैं सीखी हूँ, नहीं तो कहाँ अर्थशास्त्र, राजनीति, यन्त्रविज्ञान, कृषि आदि विषय? इन सबको मैं क्या समझूँ और बोलूँ? लेकिन जीवन खूब सिखाता है, बस आँख खुली रखें, कान खुले रखें और भीतर कोई अवरोध न हो तो जीवन का आनन्द लूट सकेंगे। जीवन का आनन्द संग्रह और परिग्रह में नहीं है। परिग्रह भौतिक वस्तुओं का होता है, ज्ञान और अनुभूतियों का भी होता है, परिग्रह में आनन्द नहीं।

प्रतिक्षण आने वाले प्रति-सम्बन्ध में जिसका संतुलन पल भर के लिये भी टूटता नहीं, चित्त का प्रसाद पलभर के लिये बुझता नहीं है, वह जी गया, वह सफल हो गया, उसकी मानवता कृतार्थ हो गई क्योंकि जीवन की गति के साथ अपनी गति वह मिला सका, रुका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं, ठिठका नहीं। न उसे सन्मान ने रोका, न अपमान ने, सुख-दुःख, मान-अपमान में से वह बादशाह की शान से गुजरता चला जाता है। सुख आया, मुस्कान आयी, दुःख आया, आँसू आये, झरने दिये, आँसू की कैसी लज्जा, मुस्कान का कैसा अहंकार ? दोनों को समान आदर से जी लिया और आगे बढ़े। पीछे मुड़ कर बीते हुए क्षण को पकड़ने की, स्मृतियों को पकड़ने की जरा भी वासना नहीं होगी। जो पिछली स्मृतियों को पकड़ते हैं, और उन्हीं को उलटते-पलटते बैठते हैं, उनके जीवन में सड़ाँद आती है।

ऐसे सहजीवन शिविरों की पूरी सफलता तब है यदि नित्य जीवन का झरना फूट पड़े। जितना हम वाणी से सीखते हैं, उससे कहीं अधिक साथ रहने से सीखा जाता है। अर्जुन ने केवल स्थितप्रज्ञ की भाषा नहीं पूछी, वह कैसे चलता है, कैसे बैठता-उठता है क्या करता है—'स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव। स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ॥" हम स्थितप्रज्ञ कहाँ ढूंढेंगे ? एक दूसरे के जीवन से सीखेंगे। "परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।"

जिन व्यक्तियों ने इस शिविर के ज़िये काम किया होगा। उन्हें धन्यवाद तो क्या देने हैं ? उनके प्रति मैं आनन्द और कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ और प्रेमपूर्वक प्रणाम करते हुए आप सब से विदा चाहती हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

: ८ :

परिशिष्ट

विमलाजी का गीता-प्रवचन

रविवार, १९ मार्च, १९७२

प्रातः ८॥ बजे

मालवीय भवन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चयनिका

साँवरे नटवर के चरणचिह्न आज यत्र-तत्र-सर्वत्र दिखाई पड़ रहे हैं।

× × × ×

जमाने की करवट के अनेक लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं। युगपरिवर्तन घटनाओं द्वारा ही बोला करता है।

× × × ×

बड़ी भारी भूल हुई है कि हमने अपनी धरती में, पश्चिम के राजनैतिक और आर्थिक आदर्शों, विचार-पद्धतियों की कलम लगाने की कोशिश की।

× × × ×

'हिन्दू' विश्वविद्यालय की स्थापना के पीछे एनी बेसेण्ट या मालवीय जी का कोई साम्प्रदायिक ध्येय नहीं था।

× × × ×

'स्थितप्रज्ञ' अर्थात् जिसकी प्रज्ञा आत्मा में स्थित हो गई है; अचल हो गई है, ऐसा नहीं।

× × × ×

बुद्धि तो निष्कर्षों के, संस्कारों के माध्यम से पदार्थों को देखती है, इसलिये बुद्धि के चिमटे से सत्य को पकड़ा नहीं जा सकता।

× × × ×

'काम' का निषेध नहीं, वह तो सृष्टि का बीज है। उसके सम्यक् परिस्फुटन में तो भगवत्ता का विलास है।

× × × ×

वासुदेव का विग्रह तो समस्त विश्व है और मन्दिर सर्वभूत हैं। प्रतीक में निहित सत्य जब दृष्टि से ओझल हो जाता है, तब प्रतीक निष्प्राण और खोखला रह जाता है।

—विमलाजी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विमलाजी का गीता प्रवचन

(दुर्भाग्य से इस प्रवचन का टेप-रिकार्ड नहीं हो पाया था, अतः स्मृति के आधार पर इसे लिखा गया है—सम्पा०)

गत वर्ष 'अर्जुन-विषाद-योग' पर कुछ निवेदन किया था कि विषाद कैसे योग बन सकता है। इस बार जब पुनः गीता पर बोलने के लिए कहा गया, तो सोचा कि दूसरे अध्याय में कहे गये 'स्थित-प्रज्ञ' पर कुछ निवेदन किया जाय। किन्तु उसके बारे में कुछ बोलने से पहले यह कहना चाहती हूँ कि गत दस-एक महीनों में पृथ्वी के अनेक देश-प्रदेशों में जो घूमना हुआ उसमें यह दिखाई दिया कि योगेश्वर कृष्ण के चरण चिह्न यत्र-तत्र सर्वत्र अवतरित हो रहे हैं। चाहे वह अमेरिका के 'हरे कृष्ण' आन्दोलन वाले चार हजार युवक-युवतियाँ हों, या आस्ट्रेलिया में कृष्ण मन्दिर बनाने वाले हों, या बर्मिंघम में सर्व-धर्मों का सम्मिलित मन्दिर स्थापित करने वाले हों—गीता के प्रवक्ता साँवरे नटवर के नन्हें सुकोमल चरण आज यत्र-तत्र सर्वत्र दिखाई पड़ रहे हैं।

अन्याय के विरोध में जहाँ-जहाँ पीड़ित जनता डट कर खड़ी हो रही है वहाँ-वहाँ योगेश्वर कृष्ण के सुदर्शन चक्र की गति-शीलता दिखाई दे रही है। वियतनाम की भूखी-नंगी, जनता का अन्याय के विरोध में अडिग प्रतिकार, बंगला देश की भूखी-नंगी, पीड़ित जनता का अन्याय के विरोध में खड़े हो जाना, ये और ऐसी अनेक घटनायें इस बात के लक्षण हैं कि योगेश्वर कृष्ण का सुदर्शन चक्र गतिशील हो गया है।

जिस भारत को भिखारी देश कहा जाता है आज २५ वर्षों से, उसकी एक नारी में इतनी शक्ति आ जाना कि अमेरिका-चीन जैसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

महा शक्तियों से टक्कर लेकर, पड़ोसी देश की मदद के लिए खड़ी हो जाय, और १० महीने तक पाकिस्तान की जेल में रहने पर भी शेख़ मुजीब का जीवित रह पाना, उन्हें मार डालने में किसी का समर्थ न हो पाना, ये सब लक्षण हैं, सुदर्शन चक्र की गति के। इसीलिए कहती हूं कि साँवरे नटवर के चरणचिह्न यत्र-तत्र सर्वत्र दिखाई पड़ रहे हैं।

आप लोग दृष्टान्त को पूरे तौर पर घटित मत कीजिएगा, क्योंकि दृष्टान्त हमेशा एकदेशीय होता है। किन्तु कृष्ण अवतार के पहले नौ-दस वर्षों में भी मथुरा के लोगों को कहाँ पता चला था कि अवतार हो चुका है।

सन् १८५७ के वाद इस देश में वहुत महान् घटनायें हुईं। १८७० के आसपास रामकृष्ण परमहंस ने महान् प्रयोग किया कि मनुष्य निरक्षर होते हुए भी एक ही जीवन में सभी धर्मों के पथ से चरम सत्य को अपने शरीरमें कैसे अनुभव कर सकता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण उन्होंने अपने जीवन में खड़ा किया। उसके वाद स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, विपिनचन्द्र पाल, केशवचन्द्र सेन, इत्यादि को लेकर जैसे एक वड़ी लहर इस देश में आई थी, वैसा ही कुछ १९७० के वाद भी घटित होते मैं देख रही हूँ। याद आता है उस रूसी महिला मैडम व्लैवेट्स्की का भारत में आना और यहाँ अडियार में थियासफी का केन्द्र वनाना। क्या-क्या विलक्षण घटनाएँ उस युग में घटी थीं। वैसा ही कुछ १९७० के वाद भी घटित होने के उपक्रम स्पष्ट देख रही हूँ।

भौतिक उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँचे देशों में हरिनाम संकीर्तन, न्याय की आवाज के आगे वड़े-वड़े सत्ताधारियों का अपने आपको असमर्थ पाना, सभी वड़ी सत्ताओं के विरुद्ध एक छोटे से देश को जन्म और जीवन देने का साहस और शक्ति नारी में आना, निक्सन का चीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में चले जाना जब कि कुछ वर्ष पूर्व चीनी प्रतिनिधि से हाथ मिलाने में भी अमेरिकी दुविधा का बोध करते थे ये सब जमाने की करवट के लक्षण हैं। युग-परिवर्तन ऐसी ही घटनाओं द्वारा बोला करता है। घटनायें ही उसकी वाणी हैं। लेकिन इसमें हम भारतवासी अपना कुछ गौरव न समझें। गौरव के योग्य हमारा कोई पुरुषार्थ नहीं है।

अभी आस्ट्रेलिया से आ रही हूँ। वहाँ पर्थ विश्वविद्यालय में एन्थ्रोपोलोजी (नृतत्त्व-विज्ञान) की विभागाध्यक्षा विदुषी महिला की मैं अतिथि थी। उन्होंने एक पुस्तक लिखी है—"Australian Training and the South East Asian Young Students." 'आस्ट्रेलिया का प्रशिक्षण और दक्षिण पूर्व एशिया के युवा विद्यार्थी'। उसमें उन्होंने यह कहा है कि एशिया के विद्यार्थी अपनी संस्कृति की जड़ें जमने से पहले ही बाहर चले जाते है, तो उनकी आँख वहाँ की तड़क-भड़क से चौंधिया जाती हैं, वे भटक जाते हैं। वे महिला वहाँ जाने वाले एशियायी विद्यार्थियों की निदेशिका हैं, और उन्होंने इस बात पर गहरी चिन्ता व्यक्त की है कि विद्यार्थियों को बाहर पढ़ने के लिये भेजा जाता है, किन्तु उनमें अपनी संस्कृति की जड़ें जमाने का कोई यत्न नहीं किया जाता। उक्त महिला ने अपनी अन्य पुस्तकों में आस्ट्रेलिया की प्राचीन संस्कृति के इतिहास में भारत के साथ घनिष्ठ सम्बन्धों की सप्रमाण स्थापना की है।

औद्योगिक क्रान्ति के बाद योरोप, अमेरिका, रूस आदि में प्रायः २०० वर्षों में जो कुछ हुआ, उनके अनुभव से कुछ सीखना तो दूर रहा, भारत ने चाहा कि हम २०-२५ वर्षों में वह कर लेंगे जो वहाँ २०० वर्षों में हुआ। बड़ी भारी भूल हुई है कि हमने अपनी धरती में पश्चिम के राजनैतिक और आर्थिक आदर्शों, विचार-पद्धतियों की कलम लगाने की कोशिश की। उत्पादन के लिये मुनाफे को प्रेरक मानना, स्पर्धा को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वांछनीय समझना, मानवीय मूल्यों के ह्रास की स्वीकृति—यह सब कुछ ह ने जैसा का तैसा ले लिया। आज तो हमारे युवा वर्ग के सामने यह बड़ी चुनौती है, कि वे ऐसा मार्ग ढूंढे जिससे विज्ञान और यन्त्र-विज्ञान का उपयोग हमारी अपनी जीवन-पद्धति के अनुरूप हो। विज्ञान और यन्त्र-विज्ञान के विकास की ओर से आँखें मूँद लेना आज किसी के लिये सम्भव नहीं है। किन्तु उसका जिस ढंग से पश्चिम में उपयोग हुआ है, वही क्या एकमेव मार्ग है? इस प्रश्न क समाध न ढूँढना हमारे युवा वर्ग के सामने आह्वान है।

इस विश्वविद्यालय के प्रति मेरा पक्षपात है, ऐसा मित्रों का कहना है। बात सत्य है। इसलिये मैं बुलाहट होते ही उपस्थित हो जाती हूं। इस प्रांगण में प्रवेश करते ही मुझे दीखतीं हैं ऐनीबेसेन्ट, मुझे दीखते हैं महामना मालवीयजी। हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के पीछे उन लोगों का कोई साम्प्रदायिक ध्येय नहीं था। वास्तव में उनका उद्देश्य क्या था यह समझना इस विश्वविद्यालय के सभी सदस्यों के लिये आवश्यक है। अस्तु।

स्थित-प्रज्ञ की बात करने से पहले यह कहना चाहती हूं कि उस शब्द का यह अर्थ नहीं है कि जिसकी प्रज्ञा अचल (Static) हो गई हो वह स्थित-प्रज्ञ है। अपितु जिसकी प्रज्ञा आत्मा में स्थित हो गई है, वह वास्तव में स्थितप्रज्ञ है। 'प्रज्ञा' यानी प्र+ज्ञा = प्रकृष्ट रूप से पदार्थों का ज्ञान कराने वाली। बुद्धि और प्रज्ञा में अन्तर है। बुद्धि से पदार्थ का सीधा सम्पर्क होता ही नहीं, वह तो निष्कर्षों के, संस्कारों के माध्यम से पदार्थ को देखती है। इसलिये बुद्धि के चिमटे से सत्य को नहीं पकड़ा जा सकता। 'प्रज्ञा' द्वारा ही पदार्थ से सीधा सम्बन्ध हो सकता है।

'स्थितप्रज्ञस्य का भाषा" से लेकर 'एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ' तक के श्लोकों में स्थितप्रज्ञ का वर्णन है। उसका विषय से 'संग' नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता। इन्द्रिय-विषय-संबंध में सोना एवं आत्म सम्बन्ध में जागना यह उसका शील है।

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

विषय के संग से ही "काम" उत्पन्न होता है। वास्तव में काम कोई बुरी वस्तु नहीं है। उसका निषेध नहीं। उसके सम्यक् परिस्फुटन में तो भगवत्ता का विलास है। 'सोऽकामयत' 'स एकाकी न रेमे' इस प्रकार सृष्टि का बीज तो वही है। किन्तु उसमें समग्रता की दृष्टि न हो, एकदेशिता हो तो वह कैद बन जाता है, बन्धनों में जकड़ जाता है। स्थितप्रज्ञ का विषय से संग नहीं होता, इसलिये उसे बन्धन-कारक काम भी नहीं होता।

'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि'—यह कहने वाला कौन है? वसुदेव का बेटा? सर्वभूतव्यापकता जिसमें है, वह वासुदेव है—

वासनाद् वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम्।
सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥

'बसो मेरे नैनन में नन्दलाल" भजन अभी गाया गया। नन्दलाल को नयनों में बसाना क्या है? भगवान् परमात्मा किसी की मन-बुद्धि का विषय नहीं बनते क्योंकि वे सर्व-व्यापक हैं। दृश्य बनने के लिये एकदेशिता यानी देश काल, आकार की सीमितता चाहिये। समस्त विश्व में उनके दर्शन न हों तो मन्दिर में दर्शन का कोई मूल्य नहीं। मन्दिर में प्रतिष्ठित विग्रह की पूजा-अर्चा तो प्रतीक है। वासुदेव का विग्रह तो समस्त विश्व है और मन्दिर सर्व-भूत हैं। प्रतीक में निहित सत्य जब दृष्टि से ओझल हो जाता है, तब प्रतीक निष्प्राण और खोखला रह जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"बभूत" बरसाना, बीमारियाँ ठीक करना चमत्कार दिखाना, अतीन्द्रिय अनुभूतियों का उपभोग करना—इन सबका अध्यात्म से कोई वास्ता नहीं है। अध्यात्म है जीवन का परिवर्तन, मानवीय संबंधों का आमूलाग्र परिवर्तन। समग्र जीवन में सुव्यवस्था, सुरुचि रखना प्रभुदर्शन है।

मन के मौन में प्रवेश होने तक मनुष्य का अपना पुरुषार्थ या प्रयत्न रहता है। उसके बाद प्रभु की कृपा, करुणा सब सँभाल लेती है। यह कृपा का मार्ग है।

मैंने भगवद्गीता का विधिवत् अध्ययन नहीं किया है, किन्तु "भगवद्गीता किंचिदधीता गंगाजल-लवकणिका पीता।"

अन्त में मैं पुनः एक बार योगेश्वर कृष्ण के सुदर्शन चक्र की गतिशीलता और साँवरे नटवर के सुकोमल चरण-चिह्न के यत्र-तत्र सर्वत्र अवतरण का जो दर्शन हो रहा है, उसे निवेदित करके आज्ञा चाहती हूँ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi